देवकुमार-ग्रन्थमाला का पञ्चम पुष्प

प्रशस्ति-संग्रह



संपादक :

पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण



प्रकाशक :

निर्मलकुमार जैन, मंत्री

जैन-सिद्धान्त-भवन

आरा

वि० सं० १९९९

प्रथम संस्करण ५००

मुद्रक
श्री सरस्वती प्रिंटिङ्ग-वर्क्स लि०, आरा

जुलाई, १९४२

Introductory note on

Prasastisangraha

The work entitled "Prasastisangraha" is a good Descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts bearing Nos. from 196 to 263 and 54 to 78—about 54 mss. in all - in the Jaina Siddhāntabhavana, Arrah. I have no information as to the total number of manuscripts in the Library, the number that have already been catalogued and that remain yet to be examined. From the Prasastisangraha in hand, however, I find that the method of cataloguing follows the plan usually adopted in such works and furnishes information on the name of the works and the authors, the subject matter, the bulk, kind, and condition of the manuscripts, the language and the scripts and the chronology of the authors, besides giving quotations from the beginning, the middle and end of the works.

The Prasastis found in almost all the works noticed in this Catalogue are fully taken advantage of in determining the dates of the authors. The dates range from Simhasuri's Lokatatvavibhāga A. D. 458 to works composed in the 18th century A. D The following are some of the important works deserving study : –

Nidānamuktavali Serial No. 5, Kalyānakāraka of Ugrādityāchārya Ser. No. 17 and Sārasangraha Ser. No. 39. all medical works.

Reference to Kākatiya Pratāparudra in Vidyānuvādānga No. 204, to Manvagandagopāla a feudatory of the Kākatiyas in 1299 A.D., to Virapāndya (A D. 1457) in Bhavyānanda, No. 216, attributed the Pandya king himself, and to the Ganga-king Devarāja in Gitavitarāga No. 227, a lyrical poetical work of the type of the well known Gitagovinda of Jayadeva A D 1180, are of great importance to Indian historians.

The work is well done and the authors deserve credit for it. It is hoped that Pandit K. Bhujabali Shāstri to whom the credit of bringing out the above work is mainly due will continue the work and complete the work of cataloguing all the manuscripts contained in the Library of the Digambara Jainas in Arrah.

A. Shamasastry.

संपादक की ओर से

भूतकाल से वर्तमानकाल का घनिष्ठ संबंध है। अतएव भूतकाल का यथोचित ज्ञान हुए बिना वर्तमान अवस्था का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। खासकर वर्तमान रीति-रिवाज, रहन-सहन, धर्म-कर्म, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान आदि प्रतिदिन के कार्यों पर प्राचीनता की ऐसी छाप लगी हुई है कि भूतकाल से पृथक् वर्तमान का कोई मतलब ही नहीं होता। वर्तमान समय में भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं होता। प्रो० मैक्समूलर,[1] डॉ० फ्लीट[2] आदि इतिहास-विशारदों का मत है कि प्राचीन भारतीय सदा पारलौकिक विषयों के ही चिन्तन में लगे रहते थे; उनका ऐहिक सुख तथा उससे संबंध रखनेवाली विद्याओं के साथ कोई संबंध नहीं था; इसीलिये उन्होंने इतिहास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उपर्युक्त विद्वानों का यह कथन सर्वथा निर्मूल नहीं है। फिर भी प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतवासी इतिहास-विज्ञान से भले प्रकार परिचित थे। वे अपनी घटनाओं को उल्लिखित एवं क्रमबद्ध करते थे। इतिहास को वे इतना महत्त्व देते थे कि उसे पाँचवाँ वेद समझते थे।[3] राजा लोग अपनी दैनिक दिनचर्या में इतिहास-श्रवण को भी महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे।[4] प्राचीन विद्याओं में इतिहास की भी गिनती थी।[5] इन सब प्रमाणों का अवलोकन कर ही प्रो० विल्सन,[6] कर्नल टॉड[7] और श्रीयुत स्टाइन[8] आदि अनेक यूरोपीय ऐतिहासिक विद्वानों ने प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक विवेचना एवं प्राचीन साहित्य में इतिहास की सत्ता को स्वीकार किया है।

अस्तु; प्राचीन साहित्य, विदेशियों के यात्रा-विवरण, शिलालेख और ताम्रपत्र, सिक्के,मूर्ति और मंदिर आदि सामग्रियों के समान प्रतिमालेख एवं ग्रन्थप्रशस्तियाँ भी इतिहास-निर्माण के बहुमूल्य साधन हैं। खासकर जैन ग्रन्थों के मंगलाचरण और प्रशस्तियों से इतिहास का कितना घनिष्ठ संबंध है, इस बात को एक जैनेतर विद्वान् के मुख से ही सुन लेना अधिक अच्छा होगा।

१—The History of Ancient Sanskrit Literature, P. 9.

२—Imperial Gazeteer of India, vol. II, P. 3.

३—कौटिलीय-अर्थशास्त्र १।३, छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

४—कौटिलीय-अर्थशास्त्र, १।५।

५—छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

६—Vishnu Purana. Introduction. ७—Annual of Rajasthan, Introduction.

८—Rajatarangini, Introduction.

"जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से बडे काम की चीजें हैं। कुछ ही ग्रन्थ ऐसे होंगे, जिनके मगलाचरण में अपने पूर्व कवियों के नाम अथवा कृतियों का उल्लेख नहीं किया गया हो तथा प्रशस्तियों में अपनी गुरुपरपरा और तत्कालीन राजवश का परिचय नहीं दिये गये हों। यही तक नहीं, बल्कि प्रशस्तियों के नीचे जो धर्मप्राण जैनी स्त्री-पुरुष उस ग्रथ की प्रतिलिपि करवाकर किसी मदिर में प्रदान किये रहते हैं, उनकी वश-परपरा का भी उल्लेख बहुत मिलता है। ऐसी दशा में इतिहास प्रणेता अन्वेषकों के लिए जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियाँ कितने काम की चीजें हैं, इस बात का पता सहज ही में लग सकता है। बडे दु ख की बात है कि भारत के इतिहास-लेखक ने पारसी, अरबी आदि अन्यान्य सप्रदाय के साहित्य एव इतिहास का अनुशीलन करने का कष्ट तो उठाया, किन्तु भारतीय साहित्य तथा इतिहास के सर्वश्रेष्ठ साधन जो जैन ग्रन्थ हैं उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि जैन ग्रन्थों के प्रकाश में नहीं आने एव जैन शास्त्र भाण्डाराधिपतियों की लापरवाही के कारण अन्यान्य ऐतिहासिक विद्वान् जैन ग्रन्थों में भरे पडे ऐतिहासिक साधनों से लाभ नहीं उठा सके।"[1]

'जैन सिद्धान्त भवन' में सगृहीत अप्रकाशित जैन सस्कृत एव प्राकृत ग्रन्थों में उपलब्ध मगलाचरण एव प्रशस्तियों के प्रकाशन-द्वारा यावच्छक्य ऐतिहासिक साधन सचित कर देना ही इस 'प्रशस्ति-सग्रह' के प्रकाशन का एकमात्र उद्देश है। क्योंकि एकाएक सभी जैन ग्रन्थों को प्रकाशित कर देना शक्य नहीं है। हाँ, एक बात है कि 'प्रशस्ति-सग्रह'-गत प्रशस्तियों में दिगम्बर-शाखा की प्रशस्तियाँ ही सम्मिलित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि 'जैन सिद्धान्त भवन' एक दिगम्बरीय सस्था है और यहाँ के सगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों में दिगम्बर-शाखा के ग्रन्थ ही अत्यधिक मात्रा में है।

प्रस्तुत 'प्रशस्ति-सग्रह' सर्वप्रथम यहीं से प्रकाशित होनेवाले 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' नामक अनुसधान-सबधी त्रैमासिक पत्र में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशित होते ही स्वर्गीय महामहोपाध्याय, रायबहादुर, प्राक्तन विमर्श-विचक्षण श्रीमान् आर० नरसिंहाचार्य, एम ए भूतपूर्व डाइरेक्टर ऑफ आर्किऑलॉजी, मैसूर,[2] श्रीमान् प्रो० बी० शेष गिरिराव, एम.ए., पी-एच डी, महाराज कॉलेज, विजयनगर,[3] सरस्वती, विद्याभूषण, काव्यतीर्थ श्रीमान्

1—'जैन सिद्धान्त-भास्कर' भाग २ पृष्ठ १०२।

२—" 'प्रशस्ति-संग्रह' अत्यन्त उपयोगी है। इस सग्रह से अप्रकाशित ग्रन्थों का [illegible] बहुत कुछ हो जाता है। पाठक इसके लिये आपके उपकृत हैं।"

३—' जैन अप्रकाशित ग्रन्थों का पूरा परिचय दे एवं उनपर विस्तृत टिप्पणी प्रकाशित कर जैन-संस्कृति की सच्ची सेवा कर रहे हैं।"

शरच्चन्द्र घोषाल, एम.ए., बी.एल., कूचविहार[1] एवं काव्यतीर्थ श्रीमान् चिन्ताहरण चक्रवर्ती, एम.ए., कलकत्ता[2] आदि सुविख्यात जैनेतर विद्वानों ने इस कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर मेरे उत्साह को बढ़ाया। फलस्वरूप 'प्रशस्ति-संग्रह' का यह प्रथम भाग पुस्तकाकार में आप पाठकों के समक्ष उपस्थित है। मैं मानता हूँ कि इसमें एक-दो त्रुटियाँ रह गयी हैं। एक तो अल्पज्ञों से त्रुटियों का होना सर्वथा स्वाभाविक है, दूसरा यह प्रथम प्रयास है। इसके द्वितीय भाग को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने के संबंध में मैं अभी से चिन्तित हूँ।

अस्तु, श्वेताम्बर-समाज में प्रशस्तियों का एक संग्रह अहमदाबाद से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। सुना है कि दूसरा संग्रह श्रीजिनविजयजी-द्वारा सम्पादित होकर 'सिंघी ग्रन्थमाला' की ओर से दो भागों में शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। दिगम्बर-समाज में तो यही एक संग्रह पहलेपहल प्रकाश में आ रहा है। जिस प्रकार 'जैन-सिद्धान्त-भवन' दिगम्बर-समाज में एक उच्चकोटि की आदर्श संस्था है, उसी प्रकार उसका यह पुनीत कार्य भी औरों के लिए मार्गदर्शक बना रहेगा। अब विज्ञ पाठकों का ध्यान मैं 'प्रशस्ति-संग्रह' की एक-दो आवश्यक बातों की ओर आकर्षित करता हूँ।

इसमें शुरू से कुछ दूर तक (पृष्ठ १ से २४ तक) 'प्रारम्भिक भाग' के स्थान पर 'मंगलाचरण' ही लिखा जाता रहा; परन्तु जब आगे चलकर कुछ रचनाओं में 'मंगलाचरण' का सर्वथा अभाव पाया गया, तब इस 'मंगलाचरण' के स्थान पर 'प्रारम्भिक भाग' ही लिखना उचित समझा गया, जो कि अन्त तक जारी रहा। इसी प्रकार आगे चलकर (पृष्ठ १ से २४ तक) विवश हो 'प्रशस्ति' के स्थान पर 'अन्तिम भाग' लिखना पड़ा, क्योंकि सब प्रतियों में प्रशस्तियाँ उपलब्ध नहीं हुईं। दूसरी बात है कि जहाँ जैसा उचित समझा गया है—कहीं-कहीं ग्रंथ का परिचय और कहीं-कहीं ग्रन्थकर्त्ता का परिचय विस्तृत कर दिया गया है; क्योंकि जहाँ ग्रन्थ का विषय अधिक गम्भीर था, वहाँ उसे स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा गया।

श्रुतकीर्त्ति-रचित 'हरिवंशपुराण' की प्रशस्तियों में उसका रचना-स्थान जेरहट कहा गया है। उस जेरहट को मैंने मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ़ अनुमान किया था। परन्तु श्रीयुत दशरथ शर्मा, एम.ए, बीकानेर की राय से वह जेरहट उक्त मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ़ न होकर मालवे की पुरानी राजधानी मांडू है, जो किसी समय धारा नगरी से कुछ दूरी पर स्थित था और इस समय प्रायः निर्जन पड़ा हुआ है।[3] इसी प्रकार

१—"विशेषतः मुझे आपका 'प्रशस्ति-संग्रह' बहुत पसन्द आया। वह अबतक के अज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों का विशद परिचय दे रहा है।"

२—"प्राचीन ग्रन्थों की सविस्तर सूची पूरी संपादित हो जाने पर बहुत काम की चीज होगी।"

३—देखें 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' भाग ७, किरण १।

पहले मैंने समझा था[1] कि 'श्रीपुराण' भट्टारक सकलकीर्तिजी की रचना है। इस समझ के दो कारण थे—पहला जनश्रुति, दूसरा सकलकीर्ति की कृतियों में भी 'आदिपुराण' नामक ग्रंथ का पाया जाना। फिर भी 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण आदि को देखकर मुझे अवश्य संदेह हुआ था। इसलिये 'प्रशस्ति-संग्रह' के अन्तर्गत उक्त ग्रंथ के परिचय में मैंने स्पष्ट लिख दिया था कि इस ग्रंथ के रचयिता का प्रकृत पता लगाने के लिये भगव जिनसेन एवं सकलकीर्ति के आदिपुराणों को तुलनात्मक दृष्टि से अवश्य देखना चाहिये। सकलकीर्ति का 'आदिपुराण' मेरे सामने नहीं था, इसलिये उस समय मैं उसमे इस 'श्रीपुराण' का मिलान करने में असमर्थ रहा। साथ ही साथ प्रशस्ति-संग्रहान्तर्गत सभी ग्रंथों को आमूलाग्र देखने का अवकाश मिलता भी नहीं था। खैर, पीछे प० नेमिराजजी शास्त्री, मैसूर के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'श्रीपुराण' में जिनसेन-कृत 'आदिपुराण' के श्लोक ही संगृहीत हैं, जिनके द्वारा श्रीऋषभदेव की संक्षिप्त जीवनीमात्र संकलित है। फिर भी पता नहीं लगा कि इसके संग्रहकर्त्ता कौन हैं।

अन्त में मैं अर्थशास्त्रविशारद, विद्यालंकार, महामहोपाध्याय डॉ० आर० शामशास्त्रीजी, बी ए, पी-एच डी, निवृत्त मैसूर प्राच्यकोषागाराध्यक्ष एवं शासनविमर्शशास्त्राध्यक्ष को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर शीघ्र ही इसके लिये एक पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तावना लिख भेजने की कृपा की।

बहुभाग प्रशस्तियों के संग्रह एवं संशोधन में मेरे भूतपूर्व सहकारी काव्यपुराणतीर्थ श्रीमान् प० हरनाथजी द्विवेदी एवं अनुक्रमणिका तैयार करने में न्याय ज्योतिषतीर्थ श्रीयुत प० नेमिचन्द्रजी से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। अत उन्हें भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आषाढ शु० १५ वीर स० २४६८ —के० भुजबली शास्त्री

१—'प्रशस्ति-संग्रह' पृष्ठ ११७—१२०।

इस 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित ग्रन्थों की वर्णानुक्रम सूची

पहले मैंने समझा था[1] कि 'श्रीपुराण' भट्टारक सकलकीर्तिजी की रचना है। इस समझ के दो कारण थे—पहला जनश्रुति, दूसरा सकलकीर्ति की कृतियों में भी 'आदिपुराण' नामक ग्रंथ का पाया जाना। फिर भी 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण आदि को देखकर मुझे अवश्य संदेह हुआ था। इसीलिये 'प्रशस्ति-संग्रह' के अन्तर्गत उक्त ग्रंथ के परिचय में मैंने स्पष्ट लिख दिया था कि इस ग्रंथ के रचयिता का सही पता लगाने के लिये भगवज्जिनसेन एवं सकलकीर्ति के आदिपुराणों को तुलनात्मक दृष्टि से अवश्य देखना चाहिये। सकलकीर्ति का 'आदिपुराण' मेरे सामने नहीं था, इसलिये उस समय मैं उससे इस 'श्रीपुराण' का मिलान करने में असमर्थ रहा। साथ ही साथ प्रशस्ति-संग्रहान्तर्गत सभी ग्रंथों को आमूलाग्र देखने का अवकाश मिलता भी नहीं था। खैर, पीछे पं० नेमिराजजी शास्त्री, मैसूर के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'श्रीपुराण' में जिनसेन-कृत 'आदिपुराण' के श्लोक ही संगृहीत हैं, जिनके द्वारा श्रीऋषभदेव की संक्षिप्त जीवनीमात्र संकलित है। फिर भी पता नहीं लगा कि इसके संग्रहकर्त्ता कौन हैं।

अन्त में मैं अर्थशास्त्रविशारद, विद्यालंकार, महामहोपाध्याय डॉ० आर० शामशास्त्रीजी, बी. ए., पी एच डी, निवृत्त मैसूर प्राच्यकोशागाराध्यक्ष एवं शासनविमर्शशालाध्यक्ष को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर शीघ्र ही इसके लिये एक पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तावना लिख भेजने की कृपा की।

बहुभाग प्रशस्तियों के संग्रह एवं संशोधन में मेरे भूतपूर्व सहकारी काव्यपुराणतीर्थ श्रीमान् पं० हरनाथजी द्विवेदी एवं अनुक्रमणिका तैयार करने में न्याय ज्योतिषतीर्थ श्रीयुत पं० नेमिचन्द्रजी से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। अतः उन्हें भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आषाढ शु० १५ वीर सं० २४६८ —के० भुजबली शास्त्री

१—'प्रशस्ति-संग्रह' पृष्ठ ११७—१२०।

प्रशस्ति-संग्रह



(१) ग्रन्थ नं० $\frac{१९६}{ख}$

न्याय-मणिदीपिका

कर्ता—

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ३ इन्च | चौड़ाई ७ इन्च | पत्रसंख्या १९६

मंगलाचरण

श्रीवर्द्धमानमकलङ्कमनन्तवीर्यमाणिक्यनन्दियतिभाषितशास्त्रवृत्तिम् ।
भक्त्या प्रभेन्दुरचितालघुवृत्तिदृष्ट्या नत्वा यथाविधि वृणोमि लघुप्रपञ्चम् ॥

मदज्ञानमरुन्नीतं मलमत्र यदि स्थितम् ।
तन्निष्काश्योर्मिवत्सन्तः प्रवर्त्तन्तामिहाब्धिवत् ॥२॥

इह हि खलु सकलकलङ्कविकलकेवलावलोकनविमललोचनावलोकितलोकालोकपरमगुरुवीरजिनेश्वररुचिरमुखसरसीरुहसमुत्पन्नसरस्वतीसरसानवरतस्मरणावलोकनसल्लापदत्तचित्तवृत्तिः सकलराजाधिराजपरमेश्वरस्य हिमशीतलस्य महाराजस्य महास्थानमध्ये निष्ठुरकष्टवादसौष्ठवदुष्टसौगतान् चटुलघटवादादिपटिष्ठतया तारादेवताधिष्ठितदुर्घटघटवादविजयेन राज्ञा सभ्यैः सभासद्भिश्च परिप्राप्तजयप्रशस्तिः सकलतार्किकचूडामणिमरीचिमेचकितरुचिररुचिचकचकायमानचरणनखरो भगवान् भट्टाकलंकदेवो विश्वविद्वन्मण्डलहृदयाह्लादियुक्तिशास्त्रेण जगत्सद्धर्मप्रभावमबूबुधत्तमाम् । तदनु बालाननुजिघृक्षुरत्नत्रयगुणोऽनुगणमोक्षलक्ष्मीकटाक्षविक्षेपनिदानपरीक्षादक्षो गुणमणिवृन्देन भव्यवृन्दमानन्दयन्माणिक्यनन्दिमुनिवृन्दारकस्तत्प्रकाशितशास्त्रमहोदधेरुद्धृत्य तदवगाहनाय पोतोपमं परीक्षामुखनामधेयमन्वर्थमुद्वहत्प्रकरणमारचयन्नुवा तदनु तत्प्रकरणस्य विशिष्टतमोऽतिस्पष्टं मृष्टेष्टगीः प्रभाचन्द्रभट्टारकः प्रमेयकमलमार्त्तण्डनामबृहद्वृत्तिं चरीकरीतिस्म । तद्वृत्तिग्रन्थस्य

मार्त्तण्डमण्डलायितत्वेन सकलशिष्यजनकाकृत्येऽपि बालान्तःकरणगुहाभ्यन्तरप्रकाशन सामर्थ्याभावमाकलय्य तत्प्रकाशनाय दीपिकायितां सकललोकालङ्कारयोग्यत्वतो रत्नायितप्रमेयैरारचितत्वेन प्रमेयरत्नमालेत्यन्वर्थनामोद्वहन्तीं स्यादलङ्करणप्रवृत्तिमतां पुंसां क्रोडे हस्तधटपटादिवस्तुप्रतिबिम्बितस्फटिकायितत्वेन या स्वाभिधेयानि प्रमेयाणि प्रकाशयन्तीं लघ्वीं वृत्तिं लघ्वनन्तवीर्याचार्यवर्या भव्यानुग्रहकार्यमौकर्यभूमिसौकुमार्यो गुण-गाम्भीर्यशाला वैजयविभुमूनुना हीरपाख्यवैश्यात्तमेन वद्रीपालवंशद्युमणिना शान्तिषेण व्यापनामिल्लायिना प्रेरितं सन् प्रारिप्सु तदादौ चिकीर्षितवृत्तेरविघ्नत परिसमाप्त्यर्थं शिष्टाचारपरिपालनार्थं पुण्यावाप्त्यर्थञ्च विशिष्टेष्टदेवतामभिष्टौति ।

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६४, पंक्ति ? —

इत्यभिधानादिति प्रकाश्य प्रकारान्तरेण तदुपायाप्रमाणं दर्शयितुं तावदभावप्रमाण प्रतिपादककारिकामाह 'गृहीत्वेति' वस्तुसद्भावं गृहीत्वस्त्यादिसामग्र्या सर्वत्राभावग्राहक-समयप्रमाणमसर्वज्ञस्य नोदेति इत्याह । तथाचेन्यथा प्रतिनियतकालप्रतिनियतदेश लक्षणवस्तुसद्भावग्रहणेऽन्यथान्यथा गृह तत्सर्वज्ञस्मृतिरेति ईत्यसर्वज्ञनास्तिताज्ञानमभाव प्रमाणं न युक्तमन्यथान्यथा सर्वज्ञास्तित्वसम्भवसद्भावम् ।

अन्तिम भाग—

सकलकलजनन्दिप्रभेन्दुमरनन्तगुणिभक्त्या ।
पतद्बुद्धिको बालो निकटवारि ने (?) च किल गुरुभक्त्या ॥
स्याद्वादनीतिकान्तामुखलोकममुख्यसौख्यमिच्छन्त ।
न्यायमणिदीपिका हृदासागार प्रवर्त्तयन्तु बुधा ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्तौ प्रमेयरत्नमालानामधेयप्रसिद्धायां न्यायमणिदीपिकासञ्ज्ञायां टीकायां षष्ठ परिच्छेद ।

शास्त्र के प्रतिलिपि कर्त्ता के नामादि—

श्रीमत्स्वर्गीयबाबूदेवकुमारस्यात्मजदानवीरबाबूनिर्मलकुमारस्यादेशमादाय आगरा-प्रान्तगतमकरौलीनिवासिना रेवतीलालस्यात्मजराजकुमाराभिधानिना लिखितमिदं शास्त्रम् ।

इदं लक्ष्मणभट्टेन निलिखित प्रथमं शास्त्रं लक्षीकृत्य लिखितम् । संशोधयितव्या विद्वज्जनैः । प्रतिलिपिकाल—सं० १९८० श्रावण-शुक्ल-त्रयोदशी ।

इसमें तो ग्रन्थकर्त्ता के नाम का उल्लेख नहीं है। किन्तु मित्रवर प० सुब्रह्मण्य जी शास्त्री का कथन है कि ताडपत्र की किसी प्रति में इस न्यायमणिदीपिका के रचयिता अजितसेना



चार्य स्पष्ट लिखा हुआ है। बल्कि पं० सुब्रय्य जी का यह कथन—'Catalogue of Sanskrit and Prakrita Manuscripts in the Central Provinces and Berar by R. B. Hira Lal B. A. (Appendix B)' से भी प्रमाणित हो जाता है। फिर भी जैनइतिहासान्वेषी इस ओर अवश्य ध्यान देंगे। जैन-सिद्धान्त-भवन की इस प्रति के अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण इसके साहित्यिक विवेचन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इसकी संस्कृत सरल एवं प्रशस्त है।

नं० ६०/ख की एक दूसरी प्रति भी 'भवन' में है जिसकी वर्तमान ग्रन्थ प्रतिलिपिमात्र है। वस्तुतः दोनों प्रतियाँ अशुद्ध हैं। पहली प्रति की नकल कन्नडप्रति में उल्लिखित मूडबिद्री-निवासी वामन भट्ट के पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने की है।

---

(२) ग्रन्थ नं० १९५/ख

चन्द्रप्रभचरित-व्याख्यान अपर नाम—विद्वन्मनोवल्लभ

कर्त्ता—

विषय—काव्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च पत्रसंख्या २०६

मङ्गलाचरण

वन्देऽहं सहजानन्दकन्दलीकन्दवन्धुरम्।
चन्द्राङ्कं चन्द्रसंकाशं चन्द्रनाथं स्मराम्यहम् ॥१॥
चन्द्रप्रभार्हधीरस्य काव्यं व्याख्यायते मया।
विश्वमन्वयरूपेण स्पष्टसंस्कृतभाषया ॥२॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ९९, श्लोकटीका १२)—

गुरुवंशमिति। अथ प्रस्थानानन्तरं। गजेन्द्रगामी गजेन्द्र इव गच्छतीत्येवं शीलः मन्द-गामीत्यर्थः। सः कुमारः। गुरुवंशम् गुरवः महान्तः वंशाः वेणवः यस्मिन् तं पक्षे गुरुर्महान्

मार्तण्डमण्डलायितत्वेन सकलविद्वच्चित्तप्रकाशकत्वेऽपि बालान्तःकरणगुहाभ्यन्तरप्रकाशन सामर्थ्याभावमाकलय्य तत्प्रकाशनाय दीपिकायितां सकललोकालङ्कारयोग्यत्वतो रत्नायितप्रमेयैरारचितत्वेन प्रमेयरत्नमालेत्यन्वयनामोद्वहन्तीं स्वालोकनप्रवृत्तिमतां पुंसां क्रोडे कृतघटपटादिवस्तुप्रतिबिम्बितरत्नकरण्डिकायितत्वेन वा स्वाभिधेयानि प्रमेयाणि प्रकाशयन्तीं लघ्वीं वृत्तिं लघ्वनन्तवीर्याचार्यवर्यो भव्यानुग्रहकार्यसौकर्यसुकृतिसौकुमार्यौ गुणगाम्भीर्यशालो वैजेयप्रियपुत्रेण हीरपाख्यवैश्योत्तमेन बदरीपालवंशद्युमणिना शान्तिषेणध्यापनाभिलाषिणा प्रेरितः सन् प्रारिप्सुः तदादौ चिकीर्षितवृत्तेरविघ्नतः परिसमाप्त्यर्थं शिष्टाचारपरिपालनार्थं पुण्यावाप्त्यर्थञ्च शिष्टेष्टदेवतामभिष्टौति ।

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १४, पंक्ति १)—

इत्यभिधानादिति प्रकाश्य प्रकारान्तरेण प्रकृतार्थाय वक्तोयितुं तावत्प्रभावप्रमाण प्रतिपादककारिकामाह 'गृहीत्वेति' वस्तुसद्भावं गृहीत्वेत्यादिसामग्रया सर्वाभावग्राहकप्रमाणप्रमाणमसर्वज्ञस्य नोदेति इत्याह । तथाचेत्यपरथा प्रतिनियतकालप्रतिनियतदेश लक्षणवस्तुसद्भावग्रहणेऽप्यन्यथान्यत्र गृहीतसर्वज्ञस्मृतिर्भवेत् ... सर्वज्ञप्रकाशितनागमभाव प्रमाणं न युक्तमन्यथान्यत्र गृहीतसर्वज्ञसत्त्वप्रसङ्गात् ।

अन्तिम भाग—

> अकलङ्कवचनतन्त्रिप्रभेन्दुसदनन्तगुणिभक्त्या ।
> यतद्दीपिका बालो निरूढवानि न (?) प किल गुरुभक्त्या ॥
> स्याद्वादनीतिकान्तामुखरंगे नभुत्यलीलयाभिव्यक्ता ।
> न्यायमणिदीपिका ज्ञानागारे प्रवर्णयन्तु बुधा ॥

इति परीक्षामुखलघुवृत्तौ प्रमेयरत्नमालानामधेयप्रसिद्धाया न्यायमणिदीपिकाख्यायां टीकायां षष्ठ परिच्छेदः ।

शास्त्र के प्रतिलिपि कर्ता के नामादि—

श्रीमत्स्वर्गीयबाबूदेवकुमारस्यात्मजदानवीरबाबूनिर्मलकुमारस्यादेशमादाय आगराप्रान्तगतगढ़रौलीनिवासिना रेवतीलालस्यात्मजराजकुमारविद्यार्थिना लिखितमिदं शास्त्रम् ।

इदं लक्ष्मणभट्टेन विलिखितं प्रथमं शास्त्रं लक्ष्मीरत्न लिखितम् । संशोधयितव्या विद्वज्जनैः । प्रतिलिपिकाल—सं० १९८० श्रावण-शुक्ल-त्रयोदशी ।

इसमें तो ग्रन्थकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है । किन्तु मित्रवर पं० सुन्दरम् जी शास्त्री का कथन है कि ताडपत्र की किसी प्रति में इस न्यायमणिदीपिका के रचयिता अजितसेना

चार्य स्पष्ट लिखा हुआ है। बल्कि पं० सुब्बय्य जी का यह कथन—'Catalogue of Sanskrit and Prakrita Manuscripts in the Central Provinces and Berar by R. B. Hira Lal B. A. (Appendix B)' से भी प्रमाणित हो जाता है। फिर भी जैनइतिहासान्वेषी इस ओर अवश्य ध्यान देंगे। जैन-सिद्धान्त-भवन की इस प्रति के अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण इसके साहित्यिक विवेचन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इसकी संस्कृत सरल एवं प्रशस्त है।

नं० $\frac{६०}{ख}$ की एक दूसरी प्रति भी 'भवन' में है जिसका वर्तमान ग्रन्थ प्रतिलिपिमात्र है। वस्तुतः दोनों प्रतियाँ अशुद्ध हैं। पहली प्रति की नकल कनाडप्रति से उल्लिखित मूडविद्रि-निवासी वामन भट्ट के पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने की है।

---

(२) ग्रन्थ नं० $\frac{१९५}{ख}$

चन्द्रप्रभचरित-व्याख्यान अपर नाम—विद्वन्मनोवल्लभ

कर्त्ता—

विषय—काव्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च पत्रसंख्या ३०६

मङ्गलाचरण

वन्देऽहं सहजानन्दकन्दलीकन्दबन्धुरम्।
चन्द्राङ्कं चन्द्रसंकाशं चन्द्रनाथं स्मराम्यहम् ॥१॥
चन्द्रप्रभार्हधीरस्य काव्यं व्याख्यायते मया।
विश्वमन्वयरूपेण स्पष्टसंस्कृतभाषया ॥२॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ९९, श्लोकटीका १२)—

गुरुवंशमिति। अथ प्रस्थानानन्तरं। गजेन्द्रगामी गजेन्द्र इव गच्छतीत्येवं शीलः मन्द-गामीत्यर्थः। सः कुमारः। गुरुवंशम् [illegible] वंशाः वेणवः यस्मिन् तं पक्षे गुरुर्महान्

यश शुक्लं यस्य तम्। अप्रमायासत्वम् अप्रमाया प्रमायारहिता सत्वा प्राणिन यस्मिन् तं पक्षे बहुलसामर्थ्यम्। अत्युन्नतशालिनीम् अत्युन्नत्या शालिनीम्। सम्पूर्णस्थिति धर्मस्थिति पक्षे मर्यादां। दधान धरन्त। रुचिराकृति रुचिरा आकृतिर्यस्य त। चक्र। स्वसमानं स्वस्य समानं। नग पर्वत। अनुलोके दर्शने लाहश्च दर्शने लिङ्। श्लेषोपमा।

× × × × ×

अन्तिम भाग—

इति श्रीवीरनन्दिकृतावुदयाङ्के चन्द्रप्रभचरिते महाकाव्ये तद्व्याख्याने च विद्वन्मनोवल्लभाख्ये अष्टादश सर्ग समाप्त।

चन्द्रप्रभचरित को दो टीकायें उपलब्ध हैं। एक चारुकीर्तिकृत और दूसरा भट्टारक प्रभाचन्द्रकृत। भट्टारक प्रभाचन्द्र का समय वि० स० १३१६ और चारुकीर्ति का समय शकाब्द १६२१ के बाद का अनुमित होता है। चारुकीर्ति जी का यह समय तभी सम्भवपरक कहा जा सकता है जब कि यही पार्श्वाभ्युदय के भी टीकाकार हों। चारुकीर्तिकृत चन्द्रप्रभकाव्य की टीका की श्लोकसंख्या छ हजार मानी गयी है। 'भवन की इस प्रति में भी लगभग छ हजार श्लोकसंख्या अनुमित होती है। अत यह कहा जा सकता है कि चारुकीर्ति जी की ही यह टीका है।

ज्ञात होता है कि टीकाकार ने इस टीका में व्याकरण, अलंकार एवं कोषादि की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

पार्श्वाभ्युदय के टीकाकार चारुकीर्ति जी की निम्नलिखित कृतियों का पता लगता है —

(१) चन्द्रप्रभकाव्य की टीका श्लोक-संख्या—६०००
(२) आदिपुराण ३०००
(३) यशोधरचरित
(४) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका
(५) पार्श्वाभ्युदयकाव्य की टीका
(६) गीतवीतराग

(३) ग्रन्थ नं० १९८/ख

हनुमच्चरित्र

कर्ता—अजित ब्रह्मचारी

विषय—चरित्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इन्च चौड़ाई ७ इन्च पत्रसंख्या ६७

मंगलाचरण

सद्बोधसिन्धुचन्द्राय सुव्रताय जिनेशिने ।
सुव्रताय नमो नित्यं धर्मशर्मार्थसिद्धये ॥१॥
वृषभाय जिनेन्द्राय वृषाय परमेष्ठिने ।
नित्यं स्वान्यप्रकाशाय नमो नाभिसुताय ते ॥२॥
नमः श्रीचन्द्रनाथाय सर्वज्ञाय शिवाप्तये ।
अनन्तशर्मकन्दाय कन्दाय परमात्मने ॥३॥
शान्ति कुर्याज्जिनेकान्तबुद्धि सिद्ध्यर्थदायिनीम् ।
प्रमादचोरजलधिमन्थने मन्दराचलः ॥४॥
श्रीमते वर्द्धमानाय नमः श्रेयोविधायिने ।
अघात्यरातिघाताय मुक्तिमार्गप्रदायिने ॥५॥
दुर्वारापारसंसारपारावारैकतारकान् ।
प्रणौमि परितो नित्यमपरान् जिननायकान् ॥६॥
सार्द्धद्वयमिते द्वीपे सर्वान्तकविवर्जिते ।
सीमन्धरादिदेवानां पादपद्मान् प्रणौम्यहम् ॥७॥
वर्तन्ते भाविनोऽतीता विबुधालिप्रपूजिताः ।
नौमि सर्वान् जिनान् जैनमतसिन्धुविधून् सदा ॥८॥
आचाराङ्गादिभेदेन पूर्वान्तांश्च प्रकीर्णकान् ।
निर्गतां जिनसद्वक्त्रात् सारदां नौमि शारदाम् ॥९॥
यस्याः प्रसादतः सर्वो वितीर्य श्रुतसागरम् ।

परमात्मानि मायानां तां प्रणौमि जिनास्यजाम् ॥१०॥
सिद्धान्तनयकाष्ठानां मुनीनां पादपंकजान् ।
स्मरामि स्मरजेतॄणां तारणां भववारिधे ॥११॥
नमामि वृषभसेनादिगौतमान्तान् गणेश्वरान् ।
सार्द्धद्विचतुरशीतान् अवधिकान् श्रीगुरून्महान् ॥१२॥
गौतमः श्रीसुधर्मा च जम्बूस्वामिमुनिकेवली ।
त्रय केवलिन पूज्या मे नित्यं सन्तु सिद्धये ॥१३॥
श्रीविष्णुनन्दिमित्राख्योऽपराजितमहातपा ।
गोवर्द्धनो भद्रबाहु पञ्चैतान् श्रुतसागरान् ॥१४॥
द्वादशांगश्रुताभ्यासनारेण सान्ति न कान् ।
प्रणौम्यहं विशुद्ध्या तान् पञ्चपापविदूरतान् ॥१५॥
स्तुवे समयसारस्य कर्तारं सूरिपदेश्वरं ।
श्रीमत्कौन्दकुन्दाख्यस्तनोतु मतिमेदुराम् ॥१६॥
पुराणपद्धतिर्यस्य हृदये प्रस्फुटं गता ।
प्रणौमि जिनसेनस्य चरणौ शरणं सताम् ॥१७॥
जीयात्समन्तभद्रोऽसौ भव्यकैरवचन्द्रमा ।
दुर्वादिवादकण्डूनां शमनैकमहौषधि ॥१८॥
अकलङ्कगुरुर्जीयादकलङ्कपदेश्वर ।
बौद्धानां बुद्धिवैधव्यदीक्षागुरुरुदाहृत ॥१९॥
शुद्धसिद्धान्तपाथोधिपारगः परमेश्वर ।
नेमिचन्द्रश्चिदानन्दपदवीमुख्यतां गत ॥२०॥
प्रभा गुणवती यस्य प्रभाचन्द्रस्य सूरिण ।
साऽस्तु मे बुद्धिसिद्ध्यर्थं कालायाद्रिसमाश्रय ॥२१॥
पञ्चाचाररता येऽन्ये सूरय संस्तुता सुरै ।
ते मे दिशन्तु मनीषां पद्मनन्दीश्वरादय ॥२२॥
मङ्गलाद्यभिसिद्ध्यर्थं मया भावेन संस्तुता ।
श्रीहनुमत्कुमारस्य कथाया सिद्धये पुन ॥२३॥

× × ×

मध्य भाग—(पृष्ठ ३१, श्लोक १)

इत्युक्तः केनचित्तावत्कुमाराय जितद्विषे ।
अञ्जनाप्रभव दृप्त सर्वं कार्त्स्न्येनापि प्रथम् ॥१६॥

मित्राणनन्द्य परं यातो महेन्द्रपुरमेदने ।
अंजना मे स्थिता तत्र चित्तत्रोषणानन्दकरी ॥१७॥
स्वामिप्रेण समं यातुरन्यत्र प्रासुरं पुरम् ।
स्वात्मीयं गत्रमालता यत्रिनः स्वजनेष्वरा ॥१८॥
संप्राप्तो नगरीवासां हर्षसंभृतमानसः ।
प्रियाङ्कमिव संप्राप्तो दृष्ट्वा पुरवरं तदा ॥१९॥
प्रभञ्जनकुमारस्यागमनं श्रुत्वा महीपतिः ।
पुरश्चकार नगरं संजयन्त्यावितोरणैः ॥२०॥

अन्तिम भाग—

जैनेन्द्रशासनसुधारसपानपुष्टो देवेन्द्रकीर्तियतिनायकनैष्ठिकात्मा ।
तच्छिष्यसंयमधरेण चरित्रमेतत् सृष्टं समीरणसुतस्य महर्द्धिकस्य ॥९१॥
त्रिजगदीशलसद्धर्मोज्ज्वलतत्कीर्तिलग्नहंसमोत्सवाय प्रीडनप्रियः
स्वमतसिन्धुवर्द्धने प्रकृष्टयामिनीतपनतंजमाद्भुतप्रभामितः ।
सुरेन्द्रकीर्तिविषयादिनन्यनंगमर्दनैकपण्डितः कलाधरः
तदीयदेशनामवाप्य शुद्धबोधमाश्रितो जितेन्द्रियस्य भक्तितः ॥९२॥
गोलाशृंगारवंशे नभसि दिनमणिर्वीरसिंहो विपश्चित्
भार्या वीधा प्रतीतातनुरुहविदितो ब्रह्मदीक्षाश्रितोऽभूत् ।
तेनोच्चैरेष ग्रन्थः कृत इति सुतरां शैलराजस्य सूरेः
श्रीविद्यानन्दिदेशात् सुकृतनिधिवशात्सर्वसिद्धिप्रसिद्ध्यै ॥९३॥
इदं श्रीशैलराजस्य चरितं दुरितापहम् ।
रचितं भृगुकच्छे च श्रीनेमिजिनमन्दिरे ॥९४॥
धर्मार्थी लभते नृपं धनयुतो वृद्धिश्च निःस्वो धनम्
पुत्रार्थी स्वकुलोचितं च तनयं कामांश्च कामो लभेत्
मोक्षार्थी परमोक्षमाशु लभते प्रोक्तेन मान्त्रेण किम्
ह्येतत् शैलमुनीन्द्रराजचरितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥९५॥
पठिता पाठकश्चैव वक्ता श्रोता च भावुकः ।
चिरं नन्द्यादयं ग्रन्थस्तेन सार्द्धं युगावधिः ॥९६॥
प्रमाणमस्य ग्रन्थस्य द्विसहस्रमितं बुधैः ।
श्लोकानामिह मन्तव्यं हनुमच्चरिते शुभे ॥९७॥

इतिश्रीहनुमच्चरित्रे ब्रह्माजितविरचिते एकादशः सर्गः ।

इसके लिपिकर्त्ता काशीनिवासी बटुक प्रसाद नाम के एक कायस्थ हैं। लिपिकाल सं० १९७८ है।

इस प्रति के अतिरिक्त 'भवन' में बहुत प्राचीन $\frac{१६०}{ख}$ नम्बर वाली दूसरी प्रति भी है। खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि ये दोनों प्रतियाँ अशुद्धियों से भरी हुई हैं। बल्कि इसी प्राचीन प्रति से प्रस्तुत प्रति उतारी गयी है।

इसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्त्ता अजित ब्रह्मचारी देवेन्द्रकीर्त्ति जी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह और माता का वीथा था। इनके वंश का नाम गोलशृङ्गार है। विद्यानन्दजी की आज्ञानुसार ही इन्होंने भृगुकच्छ (भरोंच) नगर में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। ग्रन्थ-रचनाकाल प्रशस्ति में नहीं दिया गया। पं० जुगलकिशोर जी की राय है कि यह अजित ब्रह्मचारी १६वीं शताब्दी में हुए हैं।

---

(४) ग्रन्थ नं० $\frac{२०४}{ख}$

विद्यानुवादांग (जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय)

कर्त्ता—

विषय—प्रतिष्ठापाठ

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १४ इन्च चौड़ाई ५॥ इन्च पत्रसंख्या १३

मंगलाचरण

लक्ष्मीं दिशतु वो यस्य ज्ञानादर्शे जगत्त्रयम् ।
स्पन्नोऽपि स जिनः श्रीमान्नाभेयो गौरिवाम्बुधौ ॥१॥
माङ्गल्यमुत्तमं श्रीयाच्छरण्यं यन्मनोहरम् ।
निरहस्यमरिघ्नं तत्पञ्चब्रह्मात्मकं महः ॥२॥
दोषसन्तापशमनी बोधज्योत्स्ना जिनचन्द्रजा ।
वर्धयन्ती श्रुताम्भोधिं स्वान्तं ध्वान्तं धुनोतु नः ॥३॥
मोक्षलक्ष्म्याः कृत कण्ठहारनायकरत्नताम् ।
रत्नत्रयं नमः सम्यग्दृग्ज्ञानाचारलक्षणम् ॥४॥

स्याद्वादाकाशपूर्णेन्दुर्भव्याम्भोरुहभानुमान् ।
दयागुणसुधाम्भोधिर्धर्मः पायादिहार्हताम् ॥५॥
अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ।
सर्वपापप्रशमनं वर्द्धतां जिनशासनम् ॥६॥
पञ्चकल्याणसम्पूर्णाः पञ्चमज्ञानभासुराः ।
नः पञ्च गुरवः पान्तु पञ्चमीगतिसाधकाः ॥७॥
वृषभादीनहं वर्द्धमानान्तान् जिनपुङ्गवान् ।
चतुर्विंशतितीर्थेशान् स्तुवे त्रैलोक्यपूजितान् ॥८॥
वन्दे वृषभसेनादिगणिनो गौतमान्तिमान् ।
श्रुतकेवलिनः सूरीन् मूलोत्तरगुणान्वितान् ॥९॥
अनुयोगचतुष्कादिजिनागमविशारदान् ।
जातरूपधरांस्तोष्ये कविवृन्दारकान् गुरून् ॥१०॥
अर्हदादीनभीष्टार्थसिद्धयै शुद्धित्रयान्वितः ।
इत्यनन्तगुणोपेतान् ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥११॥
श्रीमत्समन्तभद्रादिगुरुपर्वक्रमागतः ।
शास्त्रावतारसम्बन्धः प्रथमं प्रतिपाद्यते ॥१२॥
पुरा वृषभसेनेन गणिना वृषभार्हतः ।
अनगार्योभ्यधाय्येतत् भरतेश्वरचक्रिणे ॥१३॥
ततोऽजितजिनेन्द्रादितीर्थकृद्भ्योऽवधार्यताम् ।
तत्तद्गणधरास्तत्र धार्मिकाणामिशत्र्‌वन् ॥१४॥
ततः श्रीवर्द्धमानार्हद्गिरमाकर्ण्य गौतमः ।
राज्ञे लोकोपकारार्थं श्रेणिकायाब्रवीद् गणी ॥१५॥
तस्माद्गुणभृदाचार्यादनुक्रमसमागतः ।
नाम्ना जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयोऽयमिहोच्यते ॥१६॥
सेनवरसुवीर्यभद्रसमाख्यया मुनिपुङ्गवाः
नन्दिचन्द्रसुकीर्त्तिभूषणसंज्ञया ऋषिसत्तमाः ।
सिंहसागरकुंभ(?)आस्रवनामभिर्यतिनायकाः ।
देवनागसुदत्ततुंगसमाह्वयैर्मुनयोऽभवन् ॥१७॥
तेभ्यो नमस्कृत्य मया मुनिभ्यः
शास्त्रोदधेः सूक्तिमणींश्च लब्ध्वा ।

हारं विरच्यार्यजनोपयोग्यं
जिनेन्द्रकल्याणविधिर्व्यधायि ॥१८॥
वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसंधीरितः
तेभ्यस्स्वाहृतसारमा (?) यंरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥१९॥
तर्कव्याकरणागमादिलहरीपूर्णश्रुताम्भोनिधेः ।
स्याद्वादाम्बरभास्करस्य धरसेनाचार्यवर्यस्य च
शिष्येणार्यसकोविदेन रचितः कौमारसेनैर्मुने (?) ।
ग्रन्थोऽयं जयताज्जगत्त्रयगुरोर्बिम्बप्रतिष्ठाविधि ॥२०॥
पूर्वस्मात् परमागमारसमुचितान्याहाय पद्यान्यहम् ।
तन्त्रे प्रस्तुतसिद्धयेऽत्र विनिवेशान्येतान्यरीरचतत् (?)
कल्याणेषु विभूषणानि धनिकायाचीव निष्किञ्चनः ।
सौभाग्यं स्वतनुं न भूषयति किं सा राजते भास्वतैः ॥२१॥
जिनेन्द्रपालीमुनिरन्यमनस्या जिनेन्द्रकल्याणकुतिं प्रणीय
जिनेन्द्रपूजां रचयन्ति येऽमी जिनेन्द्रसिद्धश्रियमाश्रयन्ति ॥२२॥

मध्यभाग (४६ पृष्ठ ७ पंक्ति)

सलिलतलजगन्धैरक्षतैरक्षतांगैर्वरकुसुमनिवेद्यैर्दीपधूपैः फलैश्च ।
जिनपतिपदपद्मं योऽर्चयेदर्चनीयम् स भवति भुवनेशो मोक्षलक्ष्मीनिवासः ॥

ॐ ह्रीं नमो ध्यानभिलीप्सितेभ्य स्वाहा
नमः वृषजिनेन्द्राय नमोऽजितजिनेशिने ।
नमः संभवनाथाय नमोऽभिनन्दनार्हते ॥
नमः सुमतये तुभ्यं नमः पद्मप्रभाय च ।
नमः सुपार्श्वदेवाय नमश्चन्द्रप्रभाय ते ॥

अन्तिम पद्य :—

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं द्विगुणं भवेत् ।
दृश्यन्तु त्रिगुणं तेषां शुभाशुभफलं भवेत्

x　　　　x　　　　x

ग्रन्थकर्ता के मंगलाचरणगत १६वें श्लोक से यह ज्ञात होता है कि वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दी, इन्द्रनन्दी, आशाधर और हस्तिमल्ल इन आठ साहित्यिकरत्नों ने प्रतिष्ठा-ग्रन्थ लिखे हैं। और इन्हीं के आधार पर आर्यप या अय्पार्य ने इस विद्यानुवादाङ्ग प्रतिष्ठा-ग्रन्थ की रचना की है। किन्तु इस समय उल्लिखित इन प्रतिष्ठाग्रन्थ प्रणेताओं के सभी ग्रन्थ प्रायः उपलब्ध नहीं होते। इसके २०वें श्लोक से यह भी विदित होता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता धरसेनाचार्य और कुमारसेन मुनि को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने इन्हें तर्क व्याकरण एवं सभी आगमों का मर्मज्ञ भी लिखा है। इसी श्लोक में "कौमारसेनेर्मुनेः" यह पद जो मिलता है, वह व्याकरण की दृष्टि से चिन्तनीय है। क्योंकि नियमानुसार "कौमारसेनस्य" होना चाहिये था। किन्तु इस शुद्धरूप की प्रयुक्ति से छन्दोभंग हो जाता है। यह प्रति बहुत अशुद्ध है, अतः जिन महाशयों के पास इसकी दूसरी कोई प्रति हो वे उससे इसका मिलान कर इस सन्दिग्ध बात पर प्रकाश डालें। संभव है कि दूसरी प्रति शुद्ध हो।

भवन की इस प्रति में तो प्रशस्ति नहीं है। किन्तु "Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Central Provinces & Berar" में—जिसका सम्पादन राय बहादुर हीरालालजी ने किया है उसमें आर्यप या अय्पार्य का संक्षिप्त परिचय-प्रदर्शन-पूर्वक कारंजा शास्त्रभण्डार से प्राप्त प्रति से निम्न लिखित प्रशस्ति उद्धृत की है:—

शाकाब्दे विधुवेदनेत्रहिमगे (?) सिद्धार्थसंवत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यार्कवारेऽहनि।
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धूर्जितः॥

इति श्रीसकलतार्किकचक्रवर्तिश्रीसमन्तभद्रमुनीश्वरप्रभृतिकविवृन्दारकवन्द्यमानसरोवरराजहंसायमानभगवदर्हत्प्रतिमाभिषेकविशेषविशिष्टगन्धोदकपवित्रीकृतोत्तमाङ्गेनाय्पार्येण श्रीपुष्पसेनाचार्योपदेशक्रमेण सम्यग्विचार्य पूर्वशास्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य विरचितः श्रीजिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयापरनामधेयस्त्रिदशाभ्युदयोऽर्हत्प्रतिष्ठाग्रन्थः समाप्तः॥

इस प्रशस्ति से यही बात ज्ञात होती है कि अय्पार्य ने सिद्धार्थ नामक संवत्सर १२४१ माघ शुक्ल दशमी रविवार एवं पुष्य नक्षत्र में पुष्पसेनाचार्य के आदेश से रुद्रकुमार के राज्य में एकशैलनामक नगर में यह ग्रन्थ लिखकर समाप्त किया है। उल्लिखित समय खृष्ट शक २०वीं जनवरी १३२० A. D. होता है। न मालूम किस आधार पर हीरालालजी ने अपने सम्पादित कैटलग में आर्यप को धारसेन का शिष्य लिखा है। [illegible] है कि

मंगलाचरण का ११वाँ श्लोक आपकी नजरों से नहीं गुजरा है। क्योंकि पुष्पसेन तो प्रेरक ही मालूम होते हैं।

उक्त यह एकशैल वर्तमान वरंगल का प्राचीन नाम है[1]। वरंगल के और भी कई नाम हैं[2]। यह प्राचीन तैलंग की राजधानी थी[3]। काकतेयों ने इस पर ईस्वी सन् ११1० से १३२३ ईस्वी तक राज्य किया है[4]। इसी वंश में राजा रुद्रदेव हुए हैं[5]। इनकी यहीं राजधानी थी। मालूम होता है राजा रुद्रदेव इस वंश के अन्तिम राजा थे, क्योंकि इस प्रशस्ति से पता चलता है कि इस ग्रन्थ की रचना ईस्वी सन् १३२० में हुई है और उस समय रुद्रदेव ही शासन कर रहे थे।

प्रशस्तिगत धरसेन, कुमारसेन, पुष्पसेन, श्रीपाल। इन विद्वानों के सम्बन्ध में मेरा इस समय कुछ भी विशेष वक्तव्य नहीं है। क्योंकि श्रवणबेल्गोल के कतिपय शिलालेखों में धरसेन जी को छोड़कर शेष तीन नाम उपलब्ध होते हैं अवश्य, परन्तु इनमें से कुछ शिलालेखों में तो इनका समय ही नहीं दिया गया है। जिन लेखों में समय दिया गया है, वह भी "अय्यपार्य" के समय से मेल नहीं खाता। "दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" में आये हुए इन उल्लिखित नामवाले ग्रन्थकर्ताओं की कृतियों को देखने से संभवतः इनका विशेष परिचय मिल सकता है।

---

१ हिन्दी-विश्वकोष भाग २ पृष्ठ ७६६ और List of the Antiquarian Remains in the Nizam's Territories By cousens "Another name of Warrangal × ×, is Akshalingar, which in the opinion of Mr. cousens is the same yekshilangara"
—The Geographical Dictionary of Ancient & Mediaeval India By Nandoo Lal Dey P. 8

२ अनुमकुन्दपुर, अनुमकुन्दपट्टन, कोरंकोल (of Ptolemy), वेग्राकरम, एकशिलनगर आदि।
(The Geographical Dictionary P. 263)

३ रुद्रदेव का शिलालेख JASB. 1838 P. 903 साथ ही Prof. Wilson's Mackenzie collection P, 76.

४ The Geographical Dictionary, P. 8.

५ 'वरंगल के काकतीय वंशी एक राजा × × ×।' हिन्दी-विश्वकोष भाग १२, पृष्ठ ६२७
नोट—विश्वकोषकार ने संख्या ३ देकर इनके सिवा एक और का भी उल्लेख किया है। "एक हिन्दू राजा थे तैलंगाधिपति थे" सम्भवतः यह विश्वकोष कार के तैलंग और वरंगल इन दोनों को दो भिन्न स्थान समझने की भूल है।

(५) ग्रन्थ नं० $\frac{२०५}{ख}$

निदान-मुक्तावली

कर्त्ता—पूज्यपाद (?)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इञ्च चौड़ाई—८। इञ्च पत्रसंख्या—६

मङ्गलाचरण

(अभाव)

प्रथम श्लोक—

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ।
सर्वप्राणिहितं दृष्टं कालारिष्टञ्च निर्णयम् ॥१॥

मध्य भाग (पृष्ठ ४ पंक्ति ११)

पीत्वा जलं यस्य न याति तृष्णा भुक्त्वा भृशं न क्षुदपैति यस्य ।
शक्तिक्षये चाथ सुवर्णनासा मासेऽष्टमे तस्य हि कालमृत्युः ॥
खण्डं भवेद्यस्य पदं कदाचित् पङ्काङ्किते वा भुवि पांसुलेपात् ।
ते सप्तकं (?) मासि विहाय सर्वं प्रयाति याम्यं सदनं मनुष्यः ॥

अन्तिम भाग—

गुरौ मैत्रे देवेऽप्यगदनिकरैर्नास्ति भजनम् तथाप्येवं विद्या अतिनिगदिता शास्त्रनिपुणैः ।
अरिष्टं प्रत्यक्षं सुभवमनुमारूढसुभगम् विचार्य्यन्तच्छ्‌वन्निपुणमतिभिः कर्मणि सदा ॥
विज्ञाय यो नरः काललक्षणैरेवमादिभिः । न भूयो मृत्यवे यस्माद्विद्वान्कर्म समाचरेत् ॥

इति पूज्यपादविरचितायां स्वस्थारिष्टनिदानं समाप्तम् ।

× × ×

इसमें दो ही निदान हैं—(१) कालारिष्ट और (२) स्वस्थारिष्ट ।

इस ग्रन्थ की प्रति मद्रास राजकीय पुस्तकालय में संगृहीत ग्रन्थ की प्रति से करायी गयी है ।

मंगलाचरण का ११वाँ श्लोक आपकी नजरों से नहीं गुजरा है। क्योंकि पुष्पसेन तो प्रेरक ही मालूम होते हैं।

उक्त यह एकशैल वर्त्तमान वरंगल का प्राचीन नाम है[1]। वरंगल के और भी कई नाम हैं[2]। यह प्राचीन तैलंग की राजधानी थी[3]। काकतेयों ने इस पर ईस्वी सन् ११५० से १३२३ ईस्वी तक राज्य किया है[4]। इसी वंश में राजा रुद्रदेव हुए हैं[5]। इनकी यही राजधानी थी। मालूम होता है राजा रुद्रदेव इस वंश के अन्तिम राजा थे, क्योंकि इस प्रशस्ति से पता चलता है कि इस ग्रन्थ की रचना ईस्वी सन् १३२० में हुई है और उस समय रुद्रदेव ही शासन कर रहे थे।

प्रशस्तिगत धरसेन, कुमारसेन, पुष्पसेन, श्रीराज इन विद्वानों के सम्बन्ध में मेरा इस समय कुछ भी विशेष वक्तव्य नहीं है। क्योंकि श्रवणबेल्गोल के कतिपय शिलालेखों में धरसेन जी को छोड़कर शेष तीन नाम उपलब्ध होते हैं अवश्य, परन्तु इनमें से कुछ शिलालेखों में तो इनका समय ही नहीं दिया गया है। जिन लेखों में समय दिया गया है, वह भी "अयपार्य" के समय से मेल नहीं खाता। "दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" में आये हुए इन उल्लिखित नामवाले ग्रन्थकर्ताओं की कृतियों को देखने से संभवतः इनका विशेष परिचय मिल सकता है।

---

१ हिन्दी-विश्वकोष भाग ३ पृष्ठ ७६१ और List of the Antiquarian Remains in the Nizam's Territories By consens "Another name of Warrangal × ×, is Akshalingar, which in the opinion of Mr. consens is the same yekshilangara."
—The Geographical Dictionary of Ancient & Medieaval India By Nandoo Lal Dey P. 8

२ अनुमकुन्डपुर, अनुमकुन्डपट्टन, कोरंकोल (of Ptolemy) वेधाकटक, एकशैलनगर आदि। (The Geographical Dictionary P. 262)

३ रुद्रदेव का शिलालेख JASB, 1838 P. 903 साथ ही Prof. Wilson's Mackenzie collection P. 76.

४ The Geographical Dictionary, P. 8

५ 'वरंगल के काकतीय वंशी एक राजा × × ×।' हिन्दी-विश्वकोष भाग १२, पृष्ठ ६१७
नोट—विश्वकोषकार ने संख्या ३ देकर इनके सिवा एक और का भी उल्लेख किया है। "एक हिन्दू राजा जो तैलंगाधिपति थे" सम्भवतः यह विश्वकोष-कार के तैलंग और वरंगल इन दोनों को दो भिन्न स्थान समझने की भूल है।

मध्यभाग—(पृष्ठ ३० पुष्पवाणरसः)—

रसभस्म त्रिभागंस्यादष्टभागं च गन्धकम्। चतुर्थं मौक्तिकं वाटं द्विभागा मौक्तिकी शिला॥
तारमन्त्रकलोहानां वङ्गमाक्षिकनागयोः। अयस्कोमं प्रवालाष्टौ तुल्यभागं प्रकल्पयेत्॥

अन्तिम भाग—(पञ्चवाणरसः)

सुवर्णं रजतं कान्तं वैक्रान्तं तीक्ष्णमन्त्रकम्। प्रवालं मुक्तभसितं नागवङ्गञ्च भास्करम्॥
एकैकसमभागं च सर्वतुल्यं रसेन्द्रियम्। तत्समं शुद्धगन्धञ्च हंसपादीरसेन च॥
कौमारीरससंप्रोक्तं मर्दितञ्च दिनत्रयम्। काचकुप्यन्तरे क्षिप्त्वा विलेप्य वस्त्रमृत्तिकाम्॥
वालुकायन्त्रके पक्त्वा पञ्चयामान्ते समुद्धरेत्। चूर्णीकृतं ततः खल्वे शतपत्ररसेन च॥
दिनत्रयञ्च यत्नेन चाधिकं सहभावनात्। कस्तूरिकां च कर्पूरं भावयेत यथाविधि॥
शाल्मलीकानि लाक्षाथ गान्धारी सममर्दयेत्। वराचन्दनसंयुक्तं कणक्षौद्रं सिताज्यकम्।
विंशतिञ्च प्रमेहाणां राजयक्ष्माननेकशः। शुक्रवृद्धिकरञ्चैव वन्ध्या च लभते सुतम्॥
वन्ध्यनष्टं पुष्पनष्टं……मसृग्दरम्। रक्तपित्तं चाम्लपित्तं अस्थिस्रावहलीमकम्॥
अहन्येव रजः स्त्रीणां भवन्ति प्रियदर्शनात्। वीर्यवृद्धिकरश्चैव नारीणां रमते शतम्॥
पञ्चवाणरसो नाम पूज्यपादेन निर्मितः॥

× × ×

पूर्वोद्धृत 'निदानमुक्तावली' और यह वर्तमान 'मदनकामरत्नम्' दोनों ग्रन्थ प्रशस्ति नहीं रहने एवं विषयविच्छेद नहीं होने से ज्ञात होता है कि अपूर्ण हैं। साथ ही साथ इन दोनों के रचयिता भी एकही पूज्यपाद मालूम होते हैं।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ मदनकामरत्न को कामशास्त्र कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि ६४ पृष्ठों में से केवल १२ पृष्ठ तक तो महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरबलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्त्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलंकेश्वर राजेश्वर, बालसूर्योदय (दो प्रकार का) इन अन्यान्य ज्वरादि रोगों के विनाशक रसों का विवरण और कर्पूरगुण, मृगहार भेद, कस्तूरी भेद, कस्तूरी गुण, कस्तूर्यनुपान और कस्तूरीपरीक्षा आदि है। बाकी जो ५२ पृष्ठ हैं वे कामदेव के जो पर्यायवाची शब्द हैं उन्हीं भिन्न भिन्न नामों से अङ्कित ३४ प्रकार के कामेश्वररसमय हैं। साथ ही वाजीकरण औषध, तैल, लिङ्ग-वर्द्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका-निर्माण-विधि भी है। कामसिद्धि के लिये छः मन्त्र भी आये हैं। उक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के सभी पृष्ठ कामविषयक विधिविधानों से ही भरे पड़े हैं।

यों तो यह सारा ग्रन्थ पद्यबद्ध है किन्तु एक जगह पञ्चवाण रस के पद्याङ्कित पद्य की संस्कृत गद्य में व्याख्या कर दी गयी है।

इस ग्रन्थ के पद्यों में पूज्यपादजी का नाम कहीं नहीं मिलता। किन्तु मूल प्रति में प्रकरणसमाप्ति सूचक वाक्य 'पूज्यपादकृत' लिखा रहने के कारण प्रतिलिपि कर्त्ता लेखक को भी 'पूज्यपादकृत' ज्यों का त्यों लिख देना अनिवार्य था। अस्तु इस ग्रन्थ के विषय और संस्कृत रचना की ओर ध्यान देने से सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थों के निर्माता प्रातःस्मरणीय हमारे प्रख्यात पूज्यपादजी को इस ग्रन्थ के रचयिता मानने में मन हिचकिचाता है। सम्भव है कि यह कृति किसी दूसरे पूज्यपाद जी की हो। इस सन्देहास्पद विषय को हल करने के लिये और और प्रतियों की जरूरत है। आशा है कि अन्यान्य पण्डित मण्डली भी इसकी ओर ध्यान देगी।

---

(६) ग्रन्थ नं० $\frac{२०६}{ख}$

मदनकामरत्नम्

कर्त्ता—पूज्यपाद (?)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इन्च   चौड़ाई ८। इन्च   पत्रसंख्या ६४

मङ्गलाचरण

(अभाव)

प्रारम्भिक भाग—

महापूर्णचन्द्रोदय

मृत सूतलोहाभ्ररौप्य समानम्

मृतस्वर्णगन्धं (?)

ससर्जं (?) विनिक्षिप्य खल्वे विमर्द्दयेत्तत् स्वर्णतैलेन्द्रवेन त्रिवारम् ॥१॥

ततः शाल्मलीसारनिर्यासयुक्तं प्रयुञ्जीत तस्य सुदृढानुपाने ।

निरोधस्ययं चापि हन्यात्परेषाम् (?) वयस्तम्भकारी गदोन्मादहारी ॥२॥

वधूगर्वहारी रतौ वृद्धिकारी कृशत्वापहारी कलापूर्णधारी

समस्तेषु योगेषु भूमौ विशेषात् प्रसिद्धो महापूर्णचन्द्रोदयोऽयम् ॥३॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ३० पुष्पवाणरसः)—

रसभस्म त्रिभागं स्यादष्टभागं च गन्धकम्। चतुर्थं मौक्तिकं वाटं द्विभागा मौक्तिकी शिला॥

तारमभ्रकलोहानां वङ्गमाक्षिकनागयोः। अयस्कामं प्रवालाष्टौ तुल्यभागं प्रकल्पयेत्॥

अन्तिम भाग—(पञ्चवाणरसः)

सुवर्णं रजतं कान्तं वैक्रान्तं तीक्ष्णमभ्रकम्। प्रवालं मुक्तभसितं नागवङ्गञ्च भास्करम्॥

एकैकसमभागं च सर्वतुल्यं रसेन्द्रियम्। तत्समं शुद्धगन्धञ्च हंसपादीरसेन च॥

कौमारीरससंप्रोक्तं मर्दितञ्च दिनत्रयम्। काचकुप्यन्तरे क्षिप्त्वा विलेप्य वस्त्रमृत्तिकाम्॥

वालुकायन्त्रके पक्त्वा षड्यामान्ते समुद्धरेत्। चूर्णीकृतं ततः खल्वे शतपत्ररसेन च॥

दिनत्रयञ्च यत्नेन चाधिकं सहभावनात्। कस्तूरिकां च कर्पूरं भावयेत यथाविधि॥

शाल्मलीकानि लाक्षाथ गान्धारी समेमर्दयेत्। वराचन्दनसंयुक्तं कणाक्षौद्रं सिताज्यकम्।

विंशतिञ्च प्रमेहाणां राजयक्ष्मानेकशः। शुक्रवृद्धिकरञ्चैव वन्ध्या च लभते सुतम्॥

वन्ध्यनष्टं पुष्पनष्टं......मसृग्दरम्। रक्तपित्तं चाम्लपित्तं अस्थिस्रावहलीमकम्॥

अहन्येव रजः स्त्रीणां भवन्ति प्रियदर्शनात्। वीर्यवृद्धिकरश्चैव नारीणां रमते शतम्॥

पञ्चवाणरसो नाम पूज्यपादेन निर्मितः॥

× × ×

पूर्वोद्धृत 'निदानमुक्तावली' और यह वर्तमान 'मदनकामरत्नम्' दोनों ग्रन्थ प्रशस्ति नहीं रहने एवं विषयविच्छेद नहीं होने से ज्ञात होता है कि अपूर्ण हैं। साथ ही साथ इन दोनों के रचयिता भी एकही पूज्यपाद मालूम होते हैं।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ मदनकामरत्न को कामशास्त्र कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि ६४ पृष्ठों में से केवल १२ पृष्ठ तक तो महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरबलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्त्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलंकेश्वर राजेश्वर, बालसूर्योदय (दो प्रकार का) इन अन्यान्य ज्वरादि रोगों के विनाशक रसों का विवरण और कर्पूरगुण, मृगहार भेद, कस्तूरी भेद, कस्तूरी गुण, कस्तूर्यनुपान और कस्तूरीपरीक्षा आदि है। बाकी जो ५२ पृष्ठ हैं वे कामदेव के जो पर्यायवाची शब्द हैं उन्हीं भिन्न भिन्न नामों से अङ्कित ३४ प्रकार के कामेश्वररसमय हैं। साथ ही वाजीकरण औषध, तैल, लिङ्ग-वर्द्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका-निर्माण-विधि भी है। कामसिद्धि के लिये छः मन्त्र भी आये हैं। उक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के सभी पृष्ठ कामविषयक विधिविधानों से ही भरे पड़े हैं।

यों तो यह सारा ग्रन्थ पद्यबद्ध है किन्तु एक जगह पञ्चवाण रस के पद्याङ्कित पद्य की संस्कृत गद्य में व्याख्या कर दी गयी है।

(७) ग्रन्थ नं० २०७/ख

जिनयज्ञफलोदयः

कर्त्ता—मुनि कल्याणकीर्त्ति

विषय—पूजाफलविवरण
भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११। इन्च चौड़ाई ७॥ इन्च पत्रसंख्या ८६

मङ्गलाचरण

सर्वज्ञं सर्वविद्यानां विधातारं जिनाधिपम्।
हिरण्यगर्भं नाभेयं वन्देऽहं विबुधार्चितम् ॥१॥
अन्यानपि जिनान्नत्वा तथागणधरादिकान्।
कथ्यते मुक्तिसम्प्राप्त्यै जिनयज्ञफलोदयः ॥२॥
जीयाल्ललितकीर्त्तीशो मद्गुरुर्मुनिपुङ्गवः।
देवचन्द्रमुनीन्द्राख्यो दयापाल प्रसन्नधी ॥३॥
मादृशोऽपि च वच्म्यत्र जिनयज्ञफलोदयः ॥(?)
न तच्चित्रं क्रमायातगुरुपदावलम्बनात् ॥४॥
कल्याणकीर्त्तिदेवस्य भारतीकविवेधसः।
सतां चेतसि पीयूषधारा धत्ते निरन्तरम् ॥५॥
बुद्धिं प्रजति विज्ञान कीर्त्तिश्चरति निर्मला।
प्रयाति दुरितं दूरं जिनयज्ञफलस्तुते ॥६॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ४१ श्लोक १६)

जिनशासनमासाद्य ये सम्यक्त्वसमन्वितम्।
सद्व्रतं नहि कुर्वन्ति म्लेच्छास्ते पशुभिः समाः ॥१६॥
दुर्गन्धिविग्रहा क्रूराः सर्वलोकतिरस्कृता।
कायपङ्कविवर्णाङ्गा मलिनच्छिद्रवाससः ॥२०॥
विरूपा विगतच्छाया धनबन्धुविवर्जिता।
लभन्ते चान्तरा दुःखं तत्फलं पापकर्मणः ॥२१॥

अन्तिम भाग—

श्रीमूलसंघे मुनिशीलतुंगे श्रीकौन्दकुन्दे वरसूरिवृन्दे।
वंशे च देशीयगणे गुणाढ्ये महामतुच्छे घनपुस्तगच्छे ॥४११॥
आसीदसीमापनसेोगेपूर्वोऽवल्यम्बुराशिर्गुणरत्नराशिः।
तस्मादभूच्चन्द्र इव यतीन्द्रः श्रीदेवकीर्त्तिर्जितमारमूर्त्तिः ॥४१२॥
सद्गोव्रजस्तदनुवृत्तरथाधिरूढः सच्छीलवाजिरखिलात्मसुखप्रवृत्तिः।
दोषाकराक्रमणचारुकरप्रचारो हंसोऽप्यसौ ललितकीर्त्तिरभूद्वहंसः ॥४१३॥
श्रीललितकीर्त्तियतिमहदुदयागिरेरभवदागममयूखः।
कल्याणकीर्त्तिमुनिरविरखिलधरातलबोधनसमर्थः ॥४१४॥
केचित्काव्यकथाप्रथाकुशलिनः केचिच्च सिद्धान्तिनः।
केचिद् व्याकरणप्रयोगनिपुणाः केचिन्नरास्तार्किकाः ॥
केचित्तीव्रतपःप्रभावकलिताः केचित्कवित्वश्रमाः।
केचिद्वाचकचातुरीपरिचितास्ते तस्य शिष्या बभुः ॥४१५॥
त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथः कलशमगादथ भैरवेन्द्रतो जिनेन्द्रः।
तदुदयभुजि पाराड्यदेवनाम्नि ह्यवति चकार कलधितिं क्षितीशे ॥४१६॥
अन्यदा ललितकीर्त्तिमुनीन्द्रः संयुतामलतपोधनयुक्तः।
तत्क्षितीशकृतचैत्यनिवासं रक्षिताखिलगुणः प्रययौ सः ॥४१७॥
एकस्मिन्दिवसे मुनिनाथो नाकफलां जिनपतिपदपूजाम्।
श्रोतृजनेभ्यो विशदीकुर्वन् मातृवचो निचयात्स च दध्यौ ॥४१८॥
अल्पं कथावतारं महदिदमखिलं सत्पुराणप्रसिद्धम्।
काव्यं पूजाप्रभावं तदलघु गुरु तत् कार्यमलपज्ञगम्यम्।
तत्तत्संगृह्य विद्वत्परिषदुपनिषद्भूतवागर्थगुम्फम्
सिद्धं निर्धूतदोषं श्रुतजनवितरत्तत्वविज्ञानसौख्यम् ॥४१९॥
एते सन्मुनिवृषभाः कवित्वभाजो वादीन्द्राः कति कति च प्रवाग्मिनोऽमी।
अध्यात्मप्रसरण·························किञ्च एव संबभूवः ॥४२०॥
अयञ्च कल्याणयशा मुनीश्वरः सुकाव्यतर्कागमशब्दवैभवः।
पुराणपारीणा इह प्रसादनः समर्थ एवेति विचिन्त्य स यती ॥४२१॥
मामाहूय यतिकुलतिलको······मिव विशदी कुर्वन्।
वन्वत्विड्भिर्मयि मुनिरवदन्मस्तकविस्तृतकरनीरेजः ॥४२२॥

पद्मस्तोऽस्तथाद्रिपर्वतशिरो पञ्चायने वागिमम्
सार्धद्वार्णवपूर्णचन्द्रमिति मुने कल्याणकीर्तेस्तव ।
मन्दारद्रुमगुच्छविस्फुरितसुधागर्भभूतमन्दाकिनी
स्वर्लोकोद्यानमागुरुमानेत्रांगुसंधायिनी ॥२३॥
मंगलं गन्धियानभारतीं मंगलार्थरचनां च तावकीम् ।
मंगलं कुरु जिनेन्द्रवत्स सन्मतिर्धीरयुता गुणस्तुते ॥२४॥
इति मुनिरभिनावि प्रेरितेनामनाभि ललितमतिगाथा शब्दसाध्ययम
मपि च गुरुसमीपे पञ्चधारेमि पूर्वम् ननु विमलकरणीयं सत्त्वराधीनमूने ॥
चारित्रचारुनिसुधाकरेण कल्याणकीर्ति (यतिना) मुनिनाऽभ्यधायि ।
जैनेन्द्रयज्ञस्य फलोदयाख्यं काव्यं जगत्पालितचन्द्रतारम् ॥२६॥
त्रिसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणतः ।
पञ्चाशदुत्तरैः सम्मतश्लोकैश्च संगतम् ॥२७॥
पञ्चाशद्विजतीयुतशाहशकवत्सरे ।
शुभे धृतपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमत्कल्याणकीर्तिमुनीन्द्रविरचिते जिनयज्ञफलोदये विप्रमहदेमवादि
जिनयज्ञादिविधानाख्यवर्णनं नाम नवमो लम्भः समाप्तः ।

× × × ×

इसके कर्ता मुनि कल्याणकीर्ति कार्कल के मठाधीश ललितकीर्तिजी के शिष्य
इनका ग्रन्थनिर्माण समय शालिवाहन शक १३५० है तथा यह पाण्ड्य राजा के शास
समय में विद्यमान थे। इस ग्रन्थ के रचयिता आदि पर चौबीसवें वर्ष के दिगम्बर
मासिक पत्र के विशेषाङ्क (१-२) में मैंने कुछ विस्तृत रूप से ऐतिहासिक प्रकाश डाला है

कवि कल्याणकीर्तिजी के गुरु ललितकीर्तिजी भैरवराजवंश के क्रमागत राज
हैं। आज भी कार्कल मठ की गद्दी पर बैठनेवाले भट्टारकों का यही परम्परागत ललि
कीर्ति नाम चला आता है। इस "जिनयज्ञफलोदय" के "पञ्चाशद्विजतीयुतसहस्रशकवत्सं
शुभे धृतपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥" इस श्लोक से इसका समय शक सम्
१३५० सिद्ध होता है। मुनि महाराजजी ने उसी ग्रन्थ के निम्नांकित श्लोक में भैरव
तथा उनके पुत्र पाण्ड्यदेव का इस प्रकार उल्लेख किया है —

"त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथः कलशमगात्स्य भैरवेन्द्रतो जिनेन्द्रः। तदुदयभु
पाण्ड्यदेवनाम्नि द्रवति चकार कलशीनि सितीयो।" इन दोनों में से भैरवरस ओडेय
समय शक सम्वत् १३५० (ई० सन् १४२८) एवं पाण्ड्यराज का समय शक सं० १३

भैरवराज का काल कवि के द्वारा उल्लिखित श्लोक में जिन नेमिनाथ तीर्थङ्कर का उल्लेख किया गया है उन्हीं के मन्दिर के दरवाजे पर लगे हुए शिलालेख से लिया हुआ है। पाण्ड्यराज वही वीरपाण्ड्य भैरवरस ओडेय हैं जिन्होंने कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल एवं मनोज्ञ मूर्ति को स्थापित कर अपने नाम को अमर कर दिया है। बाहुबली स्वामी की मूर्त्ति की प्रतिष्ठा शक सम्वत् १३५३ (ई० सन् १४३१-३२) में हुई थी। यह बात मूर्त्ति की बगल में लगे हुए संस्कृत एवं कन्नड शिलालेखों से ज्ञात होती है। इस शुभावसर पर प्रसिद्ध विजयनगराधीश द्वितीय देवराय भी आमन्त्रित किये गये थे। यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया था। प्रशस्तिगत इस "देवचन्द्रमुनीन्द्राच्यो दयापालः प्रसन्नधीः।" श्लोकांश से यह भी विदित होता है कि ललितकीर्त्तिजी को देवचन्द्र नाम के एक दूसरे शिष्य भी थे। कवि कल्याणकीर्तिजी के गुरु ललितकीर्त्तिजी मूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के पट्ट-क्रमागत भट्टारक थे। इन भट्टारकों का मूलस्थान मैसूर राज्यान्तर्गत "हणसोगे" था। प्रशस्तिगत ४१२ वें श्लोक से ज्ञात होता है कि ललितकीर्त्तिजी के गुरु देवकीर्त्तिजी थे। विदित होता है कि यह ललित-कीर्त्तिजी अन्यान्य विषयों के अच्छे मर्मज्ञ थे। क्योंकि कल्याणकीर्त्तिजी ने इस प्रशस्ति में दिखलाया है कि काव्य, व्याकरण, न्याय, सिद्धान्तादि विषयों के ज्ञाता कई शिष्य और भी ललिलकीर्त्तिजी के मौजूद थे।

कल्याणकीर्त्तिजी ने ग्रन्थ रचना का उद्देश ग्रन्थ के अन्त में यों बतलाया है कि एक बार मेरे पूज्य गुरुदेव ललितकीर्त्तिजी ने बहुतेरे श्रोताओं को जिनपूजा का फलोपदेश देने के पश्चात् यह कहा कि मैंने यह पूजाफल संक्षेप में वर्णित किया है—पुराणों में इसका विस्तृत विवरण है। साथ ही साथ मुझे योग्य समझ कर उन्होंने एतद्विषयक एक ग्रन्थ-प्रणयन करने का आदेश भी दिया। उन्हीं की आज्ञा का पालन-फलस्वरूप यह जिनयज्ञ फलोदय है।

निम्नलिखित श्लोक के आधार पर इस ग्रन्थ की श्लोक-संख्या दो हजार सात सौ पचास (२७५०) सिद्ध होती है :—

"द्विसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणतः।
पञ्चाशदुत्तरैः सप्तशतश्लोकैश्च संगतम्॥"

"कर्णाटक कविचरिते" के द्वितीय भाग से ज्ञात होता है, हमारे यह कल्याणकीर्त्तिजी निम्नलिखित ग्रन्थों के भी रचयिता हैं :—

(१) ज्ञानचन्द्राभ्युदय (२) कामनकथे (३) अनुप्रेक्षे (४) जिनस्तुति (५) तत्त्वभेदाष्टक (६) सिद्धराशि। इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय क० कविचरिते के मान्य सम्पादक ने अपने ग्रन्थ में दे दिया है। इस कवि का लिखा हुआ संस्कृत आवाक्त एक मनोहरनाथि

पद्य कन्नड में फणिकुमार-चरित भी है। यशोधरचरित की श्लोक सं० १८५० और रचना समय शक सं० १३७८ है। इस ग्रन्थ का आधार गन्धर्व कवि का प्राकृतग्रन्थ है और इसकी रचना पाण्ड्य नगर (कार्कल) के गोम्मटेश्वर चैत्यालय में हुई थी। फणिकुमार चरित का प्रणयनकाल शक सं० १३६४ है। ताडपत्राङ्कित ये दोनों ग्रन्थ भवन में मौजूद हैं। भवन के संगृहीत ताडपत्राङ्कित "चिन्मय चिन्तामणि" नामक कण्डपद्यात्मक लघुकलेवर ग्रन्थ भी सम्भवत इन्हीं कल्याणकीर्त्ति का हो।

---

(८) ग्रन्थ नं० $\frac{२०८}{ख}$

षड्दर्शन-प्रमाण-प्रमेयानुप्रवेश

कर्त्ता—शुभचन्द्र

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च　　　चौड़ाई ४।। इञ्च　　　पत्रसंख्या २४

मङ्गलाचरण

साधनन्तं समाख्यातं व्यक्तानन्तचतुष्टयम्।
त्रैलोक्ये यस्य साम्राज्यं तस्मै तीर्थकृते नमः ॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १० पंक्ति ३४)

अपरं च द्रव्यतत्त्वादिनित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्यविशेषाः अयुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानां यः सम्बन्धः इहेदं प्रत्ययहेतुः स समवायः। प्रत्यक्षलैङ्गिके द्वे एव प्रमाणमिति वैशेषिक-दर्शनसमासः। साङ्ख्यैस्तु स्वस्वनिजबुद्ध्या परिकल्पितोऽयं निर्वृतिनगर्याः पन्थाः। यदुत पञ्चविंशतितत्त्वपरिज्ञानादिप्रमेयसाधिगमः। तत्र त्रयो गुणाः। सत्त्वं रजस्तमश्च। तत्र प्रसादलाघवप्रसवानभिष्वङ्गप्रीतयः कार्यं सत्त्वस्य। शोकतापस्वेदस्तम्भोद्वेगद्वेषाः कार्यं रजसः। मरणसाधनबीभत्सदैन्यगौरवादि तमसः कार्यम्। एतत् सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सैव प्रधानमित्युच्यते।

प्रशस्ति :—

जयति शुभचन्द्रदेवः कण्डूगणपुण्डरीकवनमार्त्तण्डः।
चण्डोत्तदण्डदूरो राद्धान्तपयोधिपारगो बुधविनुतः॥

× × ×

इस लघुकलेवर ग्रन्थ में विद्वद्वर शुभचन्द्रदेव ने षड्दर्शनों के प्रमाण और प्रमेय का संक्षिप्त परिचय दिया है। शुभचन्द्र नाम के कई विद्वान् हुए हैं। "दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" के अनुसार निम्न लिखित पाँच (?) शुभचन्द्र के नाम उपलब्ध होते हैं:—

(१) शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्णव के कर्त्ता—जीवनकाल ११वीं शताब्दी*) (२) शुभचन्द्र-भट्टारक (जीवनकाल वि० सं० १४५०) (३) शुभचन्द्र (प्रसिद्ध पाण्डव-पुराणादि अन्यान्य कई ग्रन्थों के कर्त्ता—जीवन-काल वि० सं० १६८०) (४) शुभचन्द्राचार्य (संशयि-वदनविदारण के कर्त्ता—जीवन-काल ×) (५) शुभचन्द्र (करकण्डु महाराजचरित्र आदि के कर्त्ता जीवन-काल वि० सं० १६११) पाण्डवपुराणादि के कर्त्ता भट्टारक शुभचन्द्र का जीवनकाल प्रेमी जी के उक्त ग्रन्थ में वि० सं० १६८० लिखा हुआ है। किन्तु यह समय मुझे भ्रमपूर्ण मालूम होता है। क्योंकि पाण्डवपुराण की निम्नाङ्कित प्रशस्ति से यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि उनका समय वि० सं० १६०८ है :—

"श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहतस्य षष्ठे संख्ये शते (?)
रम्याष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ।
श्रीमद्वाग्वरनीवृतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे
श्रीमच्छ्रीपुरुधाम्नि च विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम्॥

इससे यह भी विदित होता है कि करकण्डु महाराजचरित्र के रचयिता शुभचन्द्र पाण्डवपुराण के कर्त्ता से भिन्न नहीं है। क्योंकि जीवनकाल में केवल तीन वर्ष की दूरी अधिक नहीं कही जा सकती है एवं करकण्डु महाराज का चरित्त भी दोनों शुभचन्द्र की रचना में आगया है। फिर भी यह अनुमानपरक है। प्रशस्ति एवं रचनाशैली आदि से इसका प्रकृत निर्णय किया जा सकता है। पाण्डवपुराण की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि "संशयिवदनविदारण" के कर्त्ता पाण्डवपुराण के कर्त्ता शुभचन्द्र से भिन्न नहीं हैं। पाण्डवपुराण और संशयिवदनविदारण के कर्त्ता शुभचन्द्र को भिन्न भिन्न मानने की धारणा

*रायचन्द्र जैनशास्त्रमाला में प्रकाशित ज्ञानार्णव के आरंभ में प्रेमी जी के द्वारा लिखित "श्रीशुभचन्द्राचार्य का समय-निर्णय" के आधार पर।

इ मुख्य कारण यह हो गया है कि संशयिवदनविदारण ग्रन्थ का प्रतिलिपिकाल संग्रहकर्त्ता को वि० सं० १५८८ मिला है। मेरे अनुमान से यह काल भ्रमपूर्ण सा ज्ञात होता है।

इसी प्रकार श्रवणबेल्गोल के शिलालेखों में भी मुझे शुभचन्द्र चतुष्टयी के दर्शन होते हैं। एक तो देवकीर्त्ति के शिष्य, दूसरे गण्डविमुक्त मल्धारिदेव के शिष्य, तीसरे माघनन्दी के शिष्य और चौथे रामचन्द्र के शिष्य।

पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में प्रतिपादित "षड्वाद" ही संभवतः यह प्रस्तुत ग्रन्थ "षड्दर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश" हो। किन्तु साथ ही साथ मन में यह भी शङ्का स्थान कर आती है कि पाण्डवपुराण, कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा आदि अपने अन्यान्य ग्रन्थों की प्रशस्तियों में अपनी विस्तृत गुरुपरम्परा आदि का परिचय जिस प्रकार इन्होंने दिया है, इसमें भी दे दिये होते। अस्तु जो हो इस ग्रन्थ की रचनाशैली एवं भाषा सरणी प्रशस्त है। अन्तिम श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि आप अपूर्व वाद पटु, तपस्वी एवं सिद्धान्त शास्त्र के प्रखर विद्वान् थे।

बल्कि उल्लिखित श्रवणबेल्गोल के शक सम्वत् १०४८ के ४३ (११७) वें शिलालेख में वर्णित २ य शुभचन्द्र देव की ओर मेरा ध्यान कुछ आकृष्ट सा हो जाता है। क्योंकि उस शिलालेख में वर्णित शुभचन्द्र के व्यक्तित्व और पाण्डित्यद्योतक विशेषणों में इस ग्रन्थ का अन्तिम एकमात्र श्लोक मिल सा जाता है। अतः इतिहासप्रेमी विद्वान् इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

---

(६) ग्रन्थ नं० $\frac{२१२}{ख}$

अलंकार-संग्रह

कर्त्ता—अमृतनन्दयोगी

विषय—अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८। इञ्च   चौड़ाई—४॥ इञ्च   पत्रसंख्या—१०४

मङ्गलाचरण

जगद्वैचित्र्यजननजागरूकपदद्वयम्।
अवियोगरसाभिज्ञमाद्यं मिथुनमाश्रये ॥१॥

तदुल्लासरसाकारां तत्त्वकैरवकौमुदीम् ।
नमामि शारदां देवीं नामरूपाधिदेवताम् ॥२॥

ग्रन्थावतरण—

उद्दामफलदां गुर्वीमुदधिमेखलाम् (?) ।
भक्तिभूमिपतिः शास्ति जिनपादाब्जषट्पदः ॥३॥
तस्य पुत्रस्त्यागमहासमुद्रबिरुदाङ्कितः ।
सोमसूर्यकुलोत्तंसो महितो मन्वभूपतिः ॥४॥
स कदाचित्सभामध्ये काव्यालापकथान्तरे ।
अपृच्छदमृतानन्दमादरेण कवीश्वरम् ॥५॥
वर्णशुद्धिं काव्यवृत्तिं रसान् भावाननन्तरम् ।
नेतृभेदानलङ्कारान् दोषानपि च तद्गुणान् ॥६॥
नाट्यधर्मान् रूपकोपरूपकाणां भिदालिप्सि(?) ।
चाटुप्रबन्धभेदांश्च विकीर्णास्तत्र तत्र तु ॥७॥
सञ्चित्यैकत्र कथय सौकर्याय सतामिति ।
मया तत्प्रार्थितेनेत्थममृतानन्दयोगिना ॥८॥
तत्रान्तरोदितानर्थान् वाक्यान्येव क्वचित् क्वचित् ।
सञ्चित्य क्रियते सम्यक् सर्वालङ्कारसंग्रहः ॥९॥

× × ×

मध्यभाग—(पृष्ठ पूर्व ५२ पंक्ति ४)—

लीलेति पूर्वकथितं पुनरपि लीलेति कथितमेतस्मिन् ।
यस्मिन्नरः प्रकृष्टं पतत्प्रकर्षं तदामनन्ति यथा ॥

कः कः कुत्र न वर्द्धरायितघुरो घोरो घुरेत्सूकरः
कः कः कं कमलाकरं विकमलं कर्त्तुं करी नोद्यतः ।
के के कानि वनान्यरण्यमहिषा नोन्मूलयेयुर्यतः ।
सिंहे स्नेहविलासबद्धवसतिः पञ्चाननो वर्त्तते ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

इत्यमृतानन्दयोगिविरचिते अलङ्कारसंग्रहे वस्तुनिर्णयो नामाष्टमोऽध्यायः

"कन्नड कविचरिते" भाग २य पृष्ठ ३३ में एक अमृतनन्दी कवि के बारे में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

"इन्होंने अकारादि वैद्यनिघण्टु लिखा है। यह जैन कवि है। इनका लगभग १३०० शताब्दी में होना संभव ज्ञात होता है।"

"रसरत्नाकर" नामक कन्नड अलङ्कार ग्रन्थ की भूमिका में स्वर्गीय ए० वेङ्कटराव बी० ए० एल० टी० तथा पण्डित एच० शेष पैय्यङ्गार ने लिखा है कि—"अमृतनन्दी का अलङ्कारसंग्रह नाम का एक ग्रन्थ है। उसमें (१) वर्णगण विचार (२) शब्दार्थ निर्णय (३) रसनिर्णय (४) नेतृभेदविचार (५) अलङ्कारनिर्णय (६) दोषगुणालङ्कार निर्णय (७) सन्ध्यङ्ग-निरूपण (८) वृत्तिनिरूपण (९) काव्यालङ्कारनिरूपण नामक ये नव परिच्छेद हैं। यह भी इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। क्योंकि प्राचीन आलङ्कारिक ग्रन्थों को देखकर 'मन्व' भूपति की अनुमति से यह ग्रन्थ संचित करके मैंने लिखा है यों ग्रन्थारंभ में रचयिता ने स्वयं कहा है। यह मन्व राजा सोमसूर्यकुलोत्तंस, समुद्रविरुदाङ्कित, यमगंडगंड, कोरर्थकभीम, समरनिरङ्कुश एवं नूतसाहसाङ्क आदि विरुदावली से अलङ्कृत थे। इस बात को कवि ने ग्रन्थ के प्रत्येक परिच्छेदान्त पद्य में कहा है। इस मन्वभूपति के पिता शिवपादाम्बुजषट्पद भक्ति भूमिप थे।*

तिरुचनापल्ली के जम्बुकेश्वर देवस्थान में प्राप्त प्रतापरुद्रदेव के एक शासन से मन्वगण्ड गोपाल नामक एक प्रताप रुद्र का सामन्त था ऐसा निश्चित है, इसलिये अनुमान किया जाता है कि यही अमृतनन्दी के आश्रयदाता होंगे।

नेल्लूर के शक वर्ष १२२१ (ख्रीस्ताब्द १२९९) एक शासन में "तस्यात्मज सुतो मन्व-गण्डगोपालभूपतिः। प्रतापरुद्रभूपस्य प्रसादार्पितवैभवः" ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे इस मन्वभूप का समय विक्रम शक १२९९ सिद्ध होता है। अब कवि अमृतनन्दी का काल विक्रम शक १३वीं शताब्दी का अन्तिम भाग परिज्ञात होता है। यह कवि प्रतापरुद्र के आश्रय में प्रतापरुद्रीय ग्रन्थ के रचयिता विद्यानाथ के समकालीन होंगे या कुछ इधर के।"

इन उल्लिखित दोनों उद्धरणों से इस ग्रन्थ के रचयिता यही अमृतनन्दी हैं तथा इनका समय भी यही १३वीं शताब्दी है यह बात प्रमाणित होती है।

---

*किन्तु भवन की इस प्रति में "जिनपादाब्जषट्पद" यही पाठ है।

(१०) ग्रन्थ नं० २१३/ख

केवलज्ञानहोरा

कर्त्ता—चन्द्रसेनमुनि

विषय—ज्योतिष

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१२॥ इन्च चौड़ाई—८॥ इन्च पत्रसंख्या*—२७६

प्रारम्भिक भाग—

अनन्तविद्याविभवं जिनेन्द्रं निधाय नित्यं निरवद्यबोधम् ।
स्वान्तेऽहमिन्दुप्रभमिन्द्रवन्द्यं वक्ष्ये परां केवलबोधहोराम् ॥१॥
होरा नाम महाविद्या वक्तव्यञ्च भवद्धितम् ।
ज्योतिर्ज्ञानकलासारं भूषणं बुधपोषणम् ॥२॥
केवलज्ञानहोरायाः चन्द्रसेनेन भाषितम् ।
परोपदेशिकं ग्रन्थं (?) मया सप्तशतं (?) कृतम् ॥३॥
आगमः (?) सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः ।
केवली (?) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥४॥
श्रीमत्पञ्च गुरूंश्चतुर्विधसुराधीशार्चितान् संस्तुतान्
चातुर्वर्णजन(?) चतुर्गतिभवक्लेशापहारानपि ।
तत्वान् सप्तवरैकवाक्यनिरतान् दोषद्वयध्वंसकान्
आचार्यांश्च (?) उपासकान्सुमनसा वन्दामहे दिग्ग्रहान् ॥५॥
तन्मात्रवेदाम्बुधिवाणशैलशम्यक्षिचन्द्राश्वमवे ध्रुवाङ्काः ।
प्राच्यादिदिक्षु प्रथिता मुनीन्द्रै र्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥६॥

× × ×

मध्यभाग (पृष्ठ १८४ पंक्ति ५)

तन्मात्रवेदाम्बुधिकामशैलशतांगनेत्रक्षितयो ध्रुतान्ताः (ध्रुवाङ्काः) ।
प्रागादिदिक्षु प्रथिता मुनीन्द्रै र्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥
पृच्छकदिग्दशगुणितं प्रहरयुतं त्रिगुणितं त्रिशत् ।

* बीच बीच में कुछ सादे पृष्ठ भी हैं ।

सर्गे। त्रिभुज (?) सप्तमात्रयुतं। धनु ७। इतं। तच्चैवं १। अवर्ग २। चवर्ग ३ टवर्ग ४। तवर्ग ५। पवर्ग ६। यवर्ग ७। सवर्ग कवर्ग। अथ। एकादिशून्यपर्यन्तं १। अवर्ग २। कवर्ग ३। चवर्ग ४। टवर्ग ५। तवर्ग ६। पवर्ग ७। यवर्ग। शवर्ग। तद्वुगवर्गे। भेदबाधा ५। इतं। त्रि। त्रिमात्रर। स। समात्तरं। अन्त्याक्षरं। तद्दर शेष। गिरिबाध ५७। इतं त्रिवल। त्रि। पूर्वाक्षरं। सं। द्वितीयाक्षर। एवं प्रश्नभेदा। × × × × × × ×

× × ×

अन्तिम भाग—

× × × × × × हेदतिक ८५। हुलिगाहु ८६। हेरक्वाहि ८७। हिरिगिया ८८। हलपाल ८९। हाहूरु ९०। होमाह ९१। हाहूरु ९२। हेगति ९३। हेकंब ९४। हगरे ९५। हरियहि ९६। हुकेरि ९७। हरिग ९८। हिप्परिगे ९९। हुलमुनि १००। कोडन हुलहि १०१। होसहुग १०२। हिप्रविडि १०३। हुवलि १०४। हुणिसिगे १०५। हन गवाडे १०६। हामालि १०७। सम्पूर्णम्।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥१॥

हमारा ज्योतिषशास्त्र दो भागों में विभक्त है। एक गणित और दूसरा फलित या होरा विज्ञान। प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम केवलज्ञानहोरा है। होरा की व्युत्पत्ति विद्वानों ने यों की है—'आद्यन्तवर्णलोपात् होराशास्त्रं भवत्यहोरात्रात्'—अर्थात् 'अहोरात्र शब्द का आदिम अक्षर अ' और अन्तिम अक्षर त्र' इन दोनों के लोप कर देने से होरा'* शब्द व्युत्पन्न हुआ है। केवलज्ञानहोरा इस नामसे बहुत व्यक्तियों की यही धारणा है कि यह भी फलित ज्योतिष का एक मौलिक ग्रन्थ होगा। अवकाशाभाव से इसका विशेष परिचय इस समय यहाँ पर नहीं दिया जा सका। हाँ इस विद्या के ममज्ञ किसी सावकाश विद्वान् को इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा करनी चाहिये। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' में भी इसे ज्योतिषशास्त्र ही लिखा है। साथ ही साथ प्रेमी जी की इस पुस्तक में इस 'केवलज्ञानहोरा' की श्लोकसंख्या तीन हजार बतलायी गयी है। परन्तु प्रारम्भिक 'प्रत्यपद्धिक ग्रन्थ ? मया समासतं कृतम्' इस तीसरे पद्यभाग से इस ग्रन्थ की श्लोकसंख्या सात सौ सिद्ध होती है। किन्तु ग्रन्थ बहुत बड़ा है। न मालूम ग्रन्थकर्ता ने यह सात सौ संख्या किस बात की दी है।

इसके कर्ता चन्द्रसेनमुनि हैं। इन्होंने अपने इस ग्रन्थ के 'केवलज्ञानहोरायाश्चन्द्रसेनेन

* ज्योतिषोक्त प्रकार एक एक राशि या लग्न के आधे भाग को भी होरा कहते हैं।

भाषितम्" इस पद्यांश में इस बात को स्पष्ट कर दिया है। साथ ही साथ "आगमः सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः। केवली (?) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे॥" इस पद्य में अपनी प्रचुर प्रशंसा भी की है। इधर उधर बहुत कुछ टटोलने पर भी इनके बारे में विशेष परिचय में नहीं मालूम कर सका। ग्रन्थान्तर्गत बातों से ज्ञात होता है कि आप ज्योतिषशास्त्र के एक अच्छे ज्ञाता थे। इसमें कोई शक नहीं कि आप कर्णाटकनिवासी एवं कन्नड़भाषी थे। क्योंकि अपने ग्रन्थ के संस्कृतबद्ध पद्यों (कर्णसूत्रों) का खुलाशा करने के लिये इन्होंने जहाँ तहाँ कन्नड़भाषा का भी अधिकतर आश्रय लिया है। भवन की यह प्रति श्रवणबेलोल की कन्नड़ प्रति से उतारी गयी है, किन्तु है यह बहुत अशुद्ध। अतः यहाँ आपकी संस्कृत-रचनाशैली के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी शास्त्रागार में इसकी कोई शुद्ध प्रति का अन्वेषण परमावश्यक है। इसमें जो प्रकरण* हैं उनमें कुछ का नीचे नाम-निर्देश किया जाता है:—

हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, वृक्षप्रकरण, कार्पास-गुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म-पटप्रकरण, संख्याप्रकरण, नष्टद्रव्यप्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्य-प्रकरण, लाभालाभप्रकरण, मोक्षप्रकरण, स्त्रीसंभोगप्रकरण, भोजनप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, सामुद्रिकप्रकरण, स्वरप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, शकुनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अञ्जनविद्याप्रकरण, विषविद्याप्रकरण। इसी प्रकार देशभेद, उपकरणभेद, शास्त्रभेद, रत्नभेद, पक्षिभेद, यन्त्रभेद, मन्त्रभेद, जातिभेद, मुद्राभेद आदि अनेक द्रव्यों के भेद भी इसमें दरसाये गये हैं। बल्कि मुद्राभेद नामक शीर्षक में विक्रम, चालुक्य, कादम्ब, युधिष्ठिरादिक अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम भी आये हैं।

* ये प्रकरण किसी काण्ड या अध्याय के अन्तर्गत हैं।



(११) ग्रन्थ नं० २१४/ख

दानशासन

* कर्त्ता—श्रीवासुपूज्य ऋषि

विषय—दानफलादिविवरण
भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२॥ इञ्च   चौड़ाई ५॥। इञ्च   *पत्रसंख्या ५५*

प्रारम्भिक भाग —

यस्य पादाब्जसद्गन्धाघ्राणनिर्मुक्तकल्मषाः ।
ये भव्याः सन्ति तं देवं जिनेन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥१॥
दानं यच्छेऽत्र धात्रीव शस्यसम्पत्तिकारणम् ।
क्षेत्रोप्तं फलतीव स्यात् सर्वलोकेषु समं सुखम् ॥२॥
शुभसद्बुद्धिभिः शुद्धपुण्योपार्जनलम्पटैः ।
सार्द्धं प्रयाविमं मर्त्यं नेतरैस्तु कदाचन ॥३॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २८ पंक्ति १४)

श्रीमत्त्रिलोकभवनान्तरसर्ववस्तुग्राहिप्रबोधनिटिलाक्षिविराजमानम् ।
ज्ञानैकगोचरमशेषमुनीन्द्रवन्द्यमिन्द्रार्चितांघ्रिमर्हन्तमहं नमामि ॥१॥
कर्मद्रुमदहत्पात्रं तस्य भेदानहं ब्रुवे ।
पात्रे देयं न चान्यत्र क्षेत्रे कृष्यधिपो यथा ॥२॥
रत्नत्रयात्मको धर्मस्तमाचरति धार्मिकः ।
धर्माभिवृद्धये स्वस्य धार्मिके प्रीतिमाचरेत् ॥३॥
पात्रभेदकथावृत्तेः पात्रं पञ्चविधं मतम् ।
तत्कथेति कृते प्रश्ने सूरिराह तदुत्तरम् ॥४॥
उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम् ।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं च विद्धि ॥५॥

संगादिरहिता धीरा रागादिमलवर्जिताः ।
शान्ता दान्तास्तपोभूषास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥६॥
निस्संगिनोऽपि वृत्ताढ्या निःस्नेहाः सुगतिप्रियाः ।
अभूषाश्च तपोभूषास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥७॥
परीषहजये शक्ताः शक्ताः कर्मपरिक्षये ।
ज्ञानध्यानतपःशक्तास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥८॥
प्रशान्तमनसः सौम्याः प्रशान्तकरणक्रियाः ।
प्रशान्तारिमहामोहास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥९॥
धृतिभावनया युक्ताः सत्वभावनयान्विताः ।
तत्त्वार्थहितचेतस्कास्तेपात्रं दातुरुत्तमम् ॥१०॥
परीषहजये शूराः शूरा इन्द्रियनिग्रहे ।
कषायविजये शूरास्ते पात्रं दातुरुत्तमम् ॥११॥

× × ×

अन्तिम भाग—

मतं समस्तैऋषिभिर्यदादृतैः प्रभासुरात्मावनदानशासनम् ।
मुदे सतां पुण्यघनं समर्जितं दानानि दद्यान्मुनये विचार्य्य तत् ॥
शाकाब्दे त्रियुगाग्निशीतगुणितेऽतीते वृषे वत्सरे
माघे मासि च शुक्लपक्षदशमे श्रीवासुपूज्यर्षिणा ।
प्रोक्तं पावनदानशासनमिदं ज्ञात्वा हितं कुर्वताम्
दानं स्वर्णपरीक्षका इव सदा पात्रत्रये धार्मिकाः ॥

समाप्तमिदं दानशासनम्

ग्रन्थ के अन्तिम पद्य से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इस "दानशासन" के कर्त्ता वासुपूज्य ऋषि हैं। साथ ही साथ उक्त पद्य से यह भी विदित होता है कि यह ग्रन्थ शक सम्वत् १३४३ माघ शुक्ल दशमी को समाप्त हुआ था। ग्रन्थकर्त्ता ने अपने इस ग्रन्थ में गुरुपरम्परा, गण, गच्छ आदि की कुछ भी चर्चा नहीं की है। अतः इनके विषय में अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सका। दाक्षिणात्य कतिपय शिलालेखों में "वासुपूज्य" यह नाम मिलता है अवश्य। पर प्रस्तुत वासुज्पूय के गणगच्छादि के न मालूम होने से नहीं कहा जा सकता है कि अमुक वासुपूज्य ही इस दानशासन के कर्त्ता हैं। अगर किसी विद्वान् को इन वासुपूज्यऋषि के गणगच्छादि विशेष बातों का पता ज्ञात हो तो उन्हें प्रकट कर देना चाहिये।

इनकी संस्कृत रचनाशैली साधारणतया अच्छी है। प्रत्येक भाग की श्लोकसंख्या अलग अलग बता कर इस ग्रन्थ को इन्होंने निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है:—

(१) अष्टविधदानलक्षण (२) उत्तमपात्रसामान्यविधि (३) अभयदानविधि (४) दानशालाविधि (५) क्रियाविधि (६) द्रव्यशोधनविधि (७) पात्रलक्षणविधि (८) करण-त्रयलक्षिताहारदानविधि (९) भैषज्यदानविधि (१०) शास्त्रदानविधि।

---

(१२) ग्रन्थ नं० $\frac{२१५}{ख}$

भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका

कर्ता—अर्हद्दास

विषय—देवगुरुशास्त्रादिलक्षण
भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥ इन्च   चौड़ाई ६ इन्च   पत्रसंख्या २३

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमान् जिनो मे श्रियमेष दिश्याद्यदीयरक्तोज्ज्वलपादपीठम्।
कदैर्नतेन्द्रोत्करमौलिरत्नैः स्वपद्मरागाद्रिव चालितं स्वैः ॥१॥
सदापि सिद्धो मयि सन्निदध्यात्स सिद्धिवध्वा सह सान्द्रसौख्यम्।
पर्येत्यजस्रं तनुमाप्तवान्यः सम्भोगमाविश्रममीतवेद्यः ॥२॥
आचार्यवर्याश्चरितानि शिष्यानाचारयन्तः स्वयमाचरन्तः।
षट्त्रिंशतापि स्वगुणैर्युतास्ते सन्त्वापरात्माप्तगुणाभिलाषाः ॥३॥
तेऽध्यापकाः स्युर्ददते नितान्तं ये ब्रह्मचर्यव्रतपालिनोऽपि।
दयाश्च चित्तेषु सरस्वतीश्च मुखेषु देहेषु तपःश्रियश्च ॥४॥
ते साधवो मे ददतु स्वशक्तिं दयालवोऽपि क्षतदिव्यशस्त्रैः।
अनङ्गराजं समरे निहत्य कुर्वन्त्यनङ्गोत्पदं स्वकीयम् ॥५॥
जिनागमक्षीरनिधिर्गभीरो निर्लोडितश्चेद्विबुधैर्विधानात्।
ददाति रत्नत्रयमुज्ज्वलार्घं तदा स तेभ्योऽप्यमृतं दुरापम् ॥६॥

श्रीगौतमाद्या जिनयोगिनो ये वीरांगदान्ता मङ्गितात्मवृत्ताः ।
तदीयनामाक्षररत्नमाला मदीयवाण्या मणिकण्ठिका स्यात् ॥७॥
अथाशरीरानुपमाम्बुजाक्षीमप्याशु वश्यां यदलं विधातुं ।
शतं सुवर्णाभिनवार्थरत्नैस्तद्भव्यकण्ठाभरणं तनिष्ये ॥८॥

× × ×

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १४ पंक्ति ४)

श्रित्वादिमं (?) तापमितेषु वृद्ध्यानाश्रित्य मूलाच्च भजत्स्वमुक्त्वा ।
छायाद्रुवत्तस्य न रूपरागस्तथापि ते दुःखसुखास्पदानि ॥१॥
तस्मिन्निदानीमिव सार्वभौमे देशे वसत्यप्यतिविप्रकृष्टे ।
चरन्ति ये ते सुखिनस्तदीयामाज्ञामनुल्लङ्घ्य परे सदुःखाः ॥२॥
जना गृहग्रामपुरीजनान्तपट्खण्डमात्रप्रभुशासनं चेत् ।
उल्लंघयन्तोऽप्युरुदुःखभाजस्तत्किं पुनस्सर्वजगत्प्रभोस्तत् ॥३॥
सतो हितं शास्ति स एव देवः सदाप्य (?) ते शासनतत्फलेच्छाम् ।
कलस्वनं कर्णसुधारसौघं वमत्तयोर्वाद्यमपेक्षते किम् ॥४॥

× × ×

अन्तिम भाग—

अभ्यीस्सहार्थाभिदयेति सर्वेऽप्याचार्यमुख्या गुरवस्त्रयोऽपि ।
असारसंसारविनाशहेतोराराधनीया अनिशं मया स्युः ॥१॥
सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।
त एव शेषाश्रमिणां सहाया धन्याः स्युराशाधरसूरिवर्याः ॥२॥
आराध्यमानामलदर्शनास्ते धर्मेऽनुरक्ताः शमिनां सदापि ।
एकं यथाशक्ति भजन्त्यशल्यमेकादशाणुव्रतिकास्पदेषु ॥३॥
ते पात्रदानानि जिनेन्द्रपूजाः शीलोपवासानपि चिन्वते च ।
न्यायेन कालादसतोऽथवोपभोगस्य शर्मानुभवन्ति चालम् ॥४॥
कर्तुं तपः संयमदानपूजास्वाध्यायमप्याश्रितचारुवार्ताः ।
ते तद्भवं श्रीजिनसूक्तशुद्ध्या पक्षादिभिश्चाधवलं क्षिपन्ति ॥५॥
त एव मान्या भुवि धार्मिकौघा धर्मानुरक्ताखिलभव्यलोकैः ।
सुधानुरक्ता ह्यनुरागसूतिमाधारपात्रेष्वपि तन्वतेऽस्याः ॥६॥

इत्युग्रमानादिकलङ्कवर्जं गीर्दक्षणोऽप्येव सदा कवि स्यात्
तत्स्थानमभ्यासविते तनोऽप्यारकर्मक्षपोऽक्रममसुखल्पदुरम् ॥७॥
ख्यातादिकसमितिसिद्धमनोऽन्य सम्यग्गेषु दानविधेषु च मध्यमार्गम् ।
ये सम्यगेव सुधियः विचरन्ति तेऽर्हद्दासस्य भेष सततं सुखिनो भवन्ति ॥८॥

इत्यर्हद्दासरचितभव्यकण्ठाभरणस्य पञ्जिका समाप्तम् ।

इस "भव्यजनकण्ठाभरणपञ्जिका" के कर्ता कविवर अर्हद्दासजी हैं। अभी तक इनके तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। प्रस्तुत कृति को छोड़ कर शेष दो ग्रन्थ—"पुरुदेव-चम्पू" तथा "मुनिसुव्रतकाव्य" प्रकाशित हो भी चुके हैं। पहला ग्रन्थ "माणिकचन्द्र जैन-ग्रन्थमाला" बंबई से और दूसरा "मुनिसुव्रतकाव्य" संस्कृत हिन्दी-टीका सहित "जैनसिद्धान्त-भवन" आरा से। इनकी कविता के बारे में यहाँ पर मैं विशेष कुछ न लिख कर सहृदय पाठकों से "मुनिसुव्रतकाव्य" को ही आद्यन्त एक बार पढ़ जाने का अनुरोध करता हूँ। हमारे अर्हद्दास जी गद्य पद्य दोनों के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी सभी रचनायें माधुर्य और प्रासादादि काव्योचितगुणों से ओतप्रोत हैं।

आप विद्वद्वर आशाधर जी के शिष्य हैं। यह बात आपकी तीनों कृतियों के निम्न-लिखित अन्तिम पद्यों से स्वयं सिद्ध होती है:—

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे दृशोः कुपथयाननिदानभूते ।
आशाधरोक्तिलसदञ्जनसंप्रयोगैः स्वच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥
(मुनिसुव्रतकाव्य)

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।
त एव शेषाश्रमिणां सहायाः धन्याः स्युराशाधरसूरिधियाः ॥
(भव्यकण्ठाभरणपञ्जिका)

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मिन् आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जृम्भे ॥
(पुरुदेवचम्पू)

पण्डित नाथूराम प्रेमी जी ने अपनी "विद्वद्रत्नमाला" भाग १ में लिखा है कि पण्डित-प्रवर आशाधर जी का जन्म वि० सम्वत् १२३५ के लगभग हुआ होगा। इनकी जन्मभूमि सपादलक्ष (सवालाख) देशका मण्डलकर (मांडलगढ़) थी। उस समय उक्त मांडलगढ़

अजमेर के चौहानों के अधीन रहा। ई० सन् ११९२ के बाद जब यह गढ़ मुसलमान बादशाहों के हाथ में आया तब मुसलमानों के उपद्रव से बचने के लिये आशाधर जी को अपनी जन्मभूमि का परित्याग कर सपरिवार धारानगरी में आकर रहना पड़ा। उन दिनों धारा नगरी में राजा विन्ध्यवर्म का शासन चलता था। यह बड़ा विद्याप्रेमी था। इसका मन्त्री बिल्हण था। यह आशाधरजी को बहुत मानता था। बल्कि आशाधरजी को बिल्हण 'कविराज' कह कर पुकारता था। अन्यान्य विद्वान् भी आशाधर जी की कविता का बहुत आदर करते थे। आशाधर जी के मदनोपाध्याय आदि कई प्रख्यात पण्डित शिष्य थे। बल्कि इस मदनोपाध्याय को महाराज अर्जुनदेव का राजगुरु एवं महाकवि होने का भी सम्मान प्राप्त था। उक्त अर्जुनदेव राजा विन्ध्यवर्म का पुत्र था। आशाधरजी स्वयं गृहस्थ थे, फिर भी बड़े बड़े मुनिगण इनकी शिष्यता स्वीकार कर इनसे पढ़ते थे। पता चलता है कि आशाधरजी वृद्धावस्था में नलकच्छपुर (नालछा) में जाकर रहने लग गये थे। इनकी कई अमूल्य कृतियाँ उपलब्ध हैं। इनमें "भव्यकुमुद-चन्द्रिका" नामक अनगार-धर्मामृत की टीका ही सब से पीछे की है। यह टीका वि० संम्वत् १३००* में समाप्त हुई थी। अतः प्रस्तुत भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका के रचयिता आशाधरजी के शिष्य इस अर्हद्दासजी का समय भी लग-भग यही विक्रम की १३ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १४ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिये।

---

* बाबू हीरालालजी का मत है कि आशाधरजी ने वि० सम्वत् १२७२ के लगभग कुछ काल बरार प्रान्त में निवास और ग्रन्थ-रचना भी की होगी। देखें "मध्यप्रांत-मध्य-भारत व राजपूताना के प्राचीन जैन स्मारक" की भूमिका पृ० १७।



(१३) ग्रन्थ नं० २१६/ख

भव्यानन्द-शास्त्र

कर्ता—श्रीमत्पाण्ड्य क्ष्मापति

विषय वैराग्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—६।।। इञ्च चौड़ाई—६ इञ्च पत्रसंख्या १२

प्रारम्भिक भाग—

श्रियं क्रियाद्यस्य महाभिषेके निरस्तगाम्भीर्यगुणः पयोधिः ।
स्वकीयरत्नप्रकरैः प्रदोषशोभां विधत्ते स जिनेश्वरः वः ॥१॥
नेत्राब्जैरम्बुजैकद्रुमनयनजलैर्दिव्यतीर्थाम्बुपूरैः
शीघ्रैः शुद्धैः सुगन्धैरतिशयविलसत्तन्दुलैः काव्यदीपैः प्रदीपैः ।
धारणालैरक्षतार्यैः सह विधुविशदैरक्षतैर्भक्तिरूपैः–
धूपैरिन्द्राभ्यर्च्यमानं जिनचरणसरोजातयुग्मं भजामि ॥२॥
शीलाकरान् दिव्यगुणाभिरामान् निःशुद्धचारित्रसुधांशुबिम्बान् ।
भक्त्या महत्या प्रणमामि नित्यं समन्तभद्रादिमुनीन्द्रमुख्यान् ॥३॥
नरेन्द्रमुख्यैरिह पूज्यपादं शीलैः समस्तैश्च समन्तभद्रम् ।
गुणैरनिन्द्यैः कलशोद्भवमीडे श्रीवर्द्धमानं श्रुतपद्मभानुम् ॥४॥
वर्द्धमानाख्यया नित्यं वर्धितोऽपि महीतले ।
असौ मुनिपतिश्चित्रं गतमानकषायकः ॥५॥
अनिन्दिताशेषचरित्रपुष्पश्रीनागचन्द्रव्रतिपुंगवस्य ।
निर्वाणमेतद् भुवि सद्गुणानां निर्वाणवृत्तं प्रकटीकरोति ॥६॥
धाम्नार्कं सुधया सुधांशुमतुलं सद्गाम्भीर्यमम्भोधिना
शान्तिं चैत्यवनान्तकान्तरुचिभिर्धैर्यं सुवर्णाद्रिणा ।
शीलं स्वामिनिरन्तरप्रसरत्सत्यं शुद्धवृत्तिं प्रभो
जाड्यं सह सम्प्रयाति भवतः श्रीदेवचन्द्रप्रभो ॥७॥
गुणान्वितोऽपि (?) सुमनोऽन्वितोऽपि सुवर्णपूर्णाभरणान्वितोऽपि ।
श्रीपूज्यपादव्रतिपो विचित्रं विमुक्तभोगो गतभूषणाङ्गः ॥८॥

निरस्तमोहैः सुजनैर्नतीहैः प्रशान्तभावैः प्रतिभावलोकैः ।
अस्मिन्प्रबन्धे सततं प्रमोदात्प्रचिन्तनीयानि पदानि सन्ति ॥९॥
यथा वस्तुस्थितिर्लोके तथा वक्ष्याम्यहं निजम् ।
रागद्वेषद्वयं हित्वा सदा शृण्वन्तु धीधनाः ॥१०॥
हिंसासक्तैर्मृषानन्दैर्दुर्बुधैश्च क्लैरपि ।
अभव्यमेव मत्काव्यं भाव्यं भव्यजनैः सदा ॥११॥
स्वभावसिद्धमभ्यस्य लोकस्य हि गुणागुणम् ।
अवाच्यमप्यहं वक्ष्ये भव्यबोधाय भावतः ॥१२॥
शुचिरुचितरभव्यानन्दनामैकपूज्यं मदगिरिशतकोटिं ग्रन्थमानन्दकंदं ।
पुलकवनवसन्तं पाण्ड्यभूनाथजातं सहजसुखसुधाब्धिं वीक्ष्य नन्दन्तु सन्तः ॥१३॥
निजकरटनिकटकटुरटदघमधुकरनिनदद्त्तकर्णास्य ।
मिथ्यागजस्य विदलनविधिचतुरपदो मदीयकाव्यहरिः ॥१४॥
त्यक्त्वा जिनेन्द्रवचनामृतमात्मसारं कुर्वन्ति कुत्सितमृषावचनेषु रागम् ।
ये ते स्वमातृकुचदुग्धरसं विहाय मुग्धाः पिबन्ति विषतोयमतिप्रमोहात् ॥१५॥

× × ×

मध्यभाग (पृष्ठ ६ श्लोक ६२—६३)

मृषापदं घोरभवाब्धिकंबुं कृशोदरीकण्ठमिमं हि लोके ।
मनोजपूगीगलमित्यवेत्य मनोविकारं मनुजाः श्रयन्ते ॥६२॥
हृद्दोलाङ्गूललीलाचलमघमधुलिट् पद्मकोशं भवाब्जि-
न्यम्भः क्रीडद्रथांगं घनपिशितमयं यत्कुचं कामिनीनाम् ।
कुम्भं दम्भोलिपाणिद्विरदपरिलसत्कुम्भमित्येव मुक्त्वा
चित्रं तत्रैव सक्तं सकल जगदिदं धिङ् नृणां चेष्टितानि ॥६३॥

× × ×

अन्तिम मंगलाचरण एवं प्रशस्तिः—

सम्यक्त्वाङ्कुरसंभवः प्रविलसद्वैराग्यमूलान्वितः
शुद्धानन्दविलोलपल्लवकुलः कल्याणशाखान्वितः ।
ज्ञानोद्यत्कुसुमान्वितः शमफलाकीर्णो विचारास्पदम्
जीयादार्हतपारिजातविटपी संसारसन्तापहः ॥

शब्दानन्दरसास्पदं बुधजनानन्दाम्बुपूरप्रदः
भव्याह्लादसमर्पणैकनिपुणो ग्रन्थः प्रबोधाकरः।
युक्त्या श्रीजिनदत्तभूमिपमहावंशाब्धिपूर्णेन्दुना
पाण्ड्यक्ष्मापतिना विशुद्धमतिना सौख्याश्रयो निर्मितः॥

आचन्द्रार्कं जगत्यस्मिन् धर्माधर्मसमन्विते।
भव्यानन्दाभिधो ग्रन्थो भव्यानन्दाय वर्धताम्॥
नमः श्रीशान्तिनाथाय कर्मारण्यदवाग्नये।
धर्मामृतवसन्ताय बोधाम्भोधिसुधांशवे॥

इति श्रीमत्पाण्ड्यभूपतिविरचितो भव्यानन्दः समाप्तः।

इस भव्यानन्द ग्रन्थ के कर्ता पाण्ड्य क्ष्मापति के परिचय के साथ साथ इनका कुछ वंशपरिचय भी दे देना मैं समुचित समझता हूँ। प्राचीन समय में उत्तर मधुरा (मथुरा) में उग्रवंशीय वीरनारायण आदि अनेक शासक हुए हैं। पीछे इस वंश का राजा साकार हुआ जो किसी समय एक भील लड़की पर आसक्त होकर अपनी धर्मपत्नी महिषी श्रीयला देवी एवं पुत्ररत्न जिनदत्त राय से उदासीन हो गया। बल्कि एक दिन उक्त भील की लड़की पद्मिनी के दुराग्रह से वह अपने प्रिय पुत्र जिनदत्त राय तक को भी मरवा डालने के लिये उतारू हो गया। पर भील कन्या के इस षड्यन्त्र का अपने कुलगुरु के द्वारा रानी श्रीयला को पता लग गया। तुरन्त ही उक्त रानी श्रीयला ने कुलदेवी पद्मावती की प्रतिमा के साथ अपने प्रियपुत्र जिनदत्त राय को सुरक्षा के खयाल से वहां से कहीं अन्यत्र भेज दिया। जिनदत्त राय मथुरा से चलकर कुछ दिनों के बाद वर्तमान मैसूर राज्यान्तर्गत पोम्बुच में पहुँच एवं वहीं राज्य स्थापित कर शासन करने लगे। इसके बाद इन्होंने दक्षिण मधुरा (मदुरा) के प्रसिद्ध पांड्यवंशी राजा वीर पांड्य की पुत्री पद्मिनी और मनोरमा के साथ विवाह किया। इस मदुरा पांड्यवंश का विस्तृत वर्णन जो हिन्दी विश्वकोष के १३ वें भाग में छपा है उसी में इस वंश के राजाओं के नाम की एक लम्बी तालिका भी दी गयी है। तालिकान्तर्गत राजाओं के अतिरिक्त इसी वंश की एक शाखा वर्तमान दक्षिण कन्नड़ जिला में भी राज्य शासन करती रही। उसकी राजधानी कारकूर थी। उस समय यह "कारकूर" दक्षिण भारत में एक समृद्धिशाली नगरी मानी जाती था[1]। दक्षिण के स्वर्गीय तात्याचार्य आदि कई सुप्रसिद्ध विद्वानों ने पांड्यवंश को जैन

१—"वीर" वर्ष ७ अंक १२-१३ में प्रकाशित मेरा 'कारकूर' लेख देखें।

बतलाया है। हाँ, इसके सभी शासक तो जैन नहीं माने जा सकते किन्तु दक्षिण कन्नड़ प्रान्त में इस बंश के जितने राजा हुए हैं वे सब के सब जैन धर्मावलम्बी थे।

कुछ दिनों के बाद राजा जिनदत्त राय को पार्श्वचन्द्र तथा नेमिचन्द्र नामक दो पुत्र हुए। पार्श्वचन्द्र ने अपने शासन-काल में अपने नाम के अन्त में "पांड्यभैरव राज" यह एक नूतन उपनाम जोड़ दिया। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि पूर्व में भैरवी पद्मावती के द्वारा अपने पिता की रक्षा एवं अपनी माता पांड्यवंशीय होने से ही इन्हों ने उक्त उपनाम को अपनाया। पीछे इस वंश के सभी राजा इस "पांड्यभैरव" उपनाम को बड़े आदर के साथ अपने नाम के आगे जोड़ने लगे। उक्त जिनदत्त राय के वंश के राजा पीछे दक्षिण कन्नड जिला में भी शासन करने लगे। इन राजाओं की राजधानी वर्तमान कार्कल में थी। कार्कल में शासन करने वाले इस वंश के राजाओं की नामावली इस प्रकार है :—

(१) पांड्य देवरस अथवा पांड्य चक्रवर्त्ती, (२) लोकनाथ देवरस (३) वीरपांड्य देवरस (४) रामनाथ अरस (५) भैररस ओडेय (६) वीर पांड्य भैररस ओडेय (७) अभिनव पांड्य देव अथवा पांड्य चक्रवर्त्ती (८) हिरिय भैरव देव ओडेय (९) इम्मडि भैरव राय (१०) पाण्ड्यप्प ओडेय (११) इम्मडि भैरव राय (१२) रामनाथ (१३) वीर पाण्ड्य[२]।

उक्त तालिका में प्रतिपादित शासकों में से ही मुझे कविवर पाण्ड्य क्ष्मापति को खोजना है। पर खेद है कि इन्होंने अपनी रचना में कहीं भी अपना समय न देकर इस कार्य को कुछ गहन बना दिया है। खैर, इन्होंने इस भव्यानन्द ग्रन्थ के प्रारंभिक ६ठे एवं ७म श्लोकों में क्रमशः नागचन्द्रव्रती तथा देवचन्द्र इन दोनों का सादर स्मरण किया है। अब मुझे इन्हीं दोनों पाण्ड्य क्ष्मापति के स्मरणीय व्यक्तियों के समय के आधार पर इनका समय निर्धारित करना है। उल्लिखित नागचन्द्रजी वही नागचन्द्र हैं जिन्होंने धनंजयकृत विषापहार स्तोत्र की एक संस्कृत टीका लिखी है। वह टीका "भवन" में मौजूद है और इसकी प्रशस्ति यथास्थान "भास्कर" की किसी किरण में दी जायगी। इस टीका से पता चलता है कि मूलसंघान्तर्गत देशीगण, पुस्तक गच्छ के ललितकीर्त्तिजी के आप अग्रशिष्य थे। साथ ही साथ नागचन्द्रजी ने अपनी टीका में यह साफ साफ लिख दिया है कि इनके गुरु ललितकीर्त्तिजी पनसोगे (मैसूर) के निवासी एवं तौळव देश के प्रवासी थे। दक्षिण कन्नड प्रान्त की बोल-चाल की भाषा 'तुळु' है इसी से यह तौळव देश कहलाता है। यही ललितकीर्त्ति जी तौळव देशान्तर्गत कार्कल के राज्यशासक भैरव

२—"दक्षिण कन्नड़ जिल्लेय प्राचीन इतिहास" देखें।

राजवंश के मनोनीत राजगुरु थे। बल्कि इन्हीं के समक्ष में शकसम्वत् १३५३ वि० सं० १४८८ में वीर पाण्ड्य के द्वारा कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गयी थी। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि नागचन्द्रजी विक्रमीय १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के विद्वान् हैं। सुहृद्वर पं० जुगल किशोरजी ने "जैन हितैषी" भाग १२, अङ्क २ ३ में इनका जो समय विक्रमीय १६ वीं शताब्दी निर्धारित किया है वह मुझे ठीक नहीं जँचता है। क्योंकि आपके इस समय-निर्णय से तो गुरु ललितकीर्ति और शिष्य नागचन्द्र में कम से कम सौ सवा सौ वर्षों का एक विशाल अन्तर पड़ जाता है। साथ ही साथ पं० जुगल किशोरजीने नागचन्द्र के मुनित्व पर जो सन्देह प्रकट किया है वह भी प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रारंभिक †ठे श्लोक से दूर हो जाना चाहिये। क्योंकि इस पद्य द्वारा इन्हें 'यतिपुंगव' आदि विशेषणों से स्मरण किया है।

अब देवचन्द्रजी को लीजिये। यह देवचन्द्र इन्हीं नागचन्द्र के अन्यतम गुरु एवं उल्लिखित ललितकीर्तिजी के शिष्य हैं। नागचन्द्रजी ने अपनी विषापहार की टीका में इन्हें भी अपना गुरु स्पष्टतया लिखा है। बल्कि उल्लिखित ललितकीर्तिजी के शिष्य जिनयज्ञफलोदय के कर्त्ता मुनि कल्याणकीर्ति ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में स्वगुरु की प्रशंसा करते हुए "देवचन्द्रमुनीन्द्राख्यो दयापाल प्रसन्नधी" इस पद्यांश में उक्त देवचन्द्र का भी उल्लेख कर दिया है। इनका यह जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ शक १३५० में समाप्त हुआ था।* श्रवणबेलगोल के शक सम्वत् १३२० के नं० १०५ (२५४) वाले शिलालेख में प्रतिपादित नागचन्द्र और देवचन्द्र हमारे पूर्वोक्त नागचन्द्र—देवचन्द्र से प्राय अभिन्न होंगे। क्योंकि दोनों के गणगच्छादि एक हैं और साथ ही साथ ३५ साल के समय का यह अन्तर भी कोई असम्भवपरक महान् अन्तर नहीं है।

अस्तु उल्लिखित प्रमाणों के आधार से मैं यह कह सकता हूँ कि ललितकीर्ति, देवचन्द्र, कल्याणकीर्ति नागचन्द्र और पाण्ड्य क्ष्मापति ये सब के सब लगभग सम सामयिक विद्वान् थे। संभव है कि ये लोग एक साथ कार्कल में रहे हों। साथ ही साथ यह भी सिद्ध हो जाता है कि देवचन्द्र नागचन्द्र और कल्याणकीर्ति ये तीनों ललितकीर्ति के शिष्य थे। इससे भव्यानन्द शास्त्र के कर्त्ता पाण्ड्य क्ष्मापति का समय भी एक प्रकार से हल हो जाता

* प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १८ देखें।

† . देशीगणो छन्गुणोऽन्वितपुस्तकाख्यगच्छेऽत्र खेभरवलिर्भवति प्रभूता।

तत्रासन्नाग-देवोरुय श्विजिन-श्रेष्ठ प्रभा-भासय दा—

है। मेरा अनुमान है कि अपने ग्रन्थ (भव्यानन्दशास्त्र) में नागचन्द्र-देवचन्द्र को स्मरण करने वाले यह पाण्ड्य क्ष्मापति ही बाहुबलीमूर्त्ति के प्रतिष्ठापक वीर पाण्ड्य भैररस (शक १३५३ सन् १४३१—३२) अथवा उनके उत्तराधिकारी अभिनव पाण्ड्यदेव या पाण्ड्यचक्रवर्ती (शक १३७९ सन् १४५७) हों।

मैंने पाण्ड्य क्ष्मापति का वंश-परिचय जो ऊपर दिया है वह भव्यानन्द के अन्त के "नानानव्यरसास्पदं बुधजनानन्दाश्रुपूरप्रदो भव्याह्लादसमर्पणैकनिपुणो ग्रन्थः प्रबोधाकरः। युक्त्या श्रीजिनदत्तभूमिपमहावंशाब्धिपूर्णेन्दुना पाण्ड्यक्ष्मापतिना विशुद्धमतिना सौख्याश्रयो निर्मितः॥ इस श्लोक के आधार पर। आशा है कि यह वंश-मन्तव्य आपत्तिजनक नहीं होगा।

---

(१४) ग्रन्थ नं० २१७/ख

बीजकोश

कर्त्ता—

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।।। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्रसंख्या २१

प्रारम्भिक भाग—

तेजो भक्तिर्विनयः प्रणवः ब्रह्मप्रदीपवामाश्च।
वेदोऽब्जदहनध्रुवमादि (?) ओमिति ख्यातम्॥
मायातत्वं शक्तिर्लोकेशो ह्रीं त्रिमूर्त्तिबीजेशौ।
कूटाक्षरं क्षकारं मलवरयूं पिण्डमष्टमूर्त्तिश्च॥
बाणाः पञ्च द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति ठवर्णमखिलेन्दुः।
क्ष्वीं स्वीं हं सं सुरभिमुद्राक्षरमयवाग्भश्चैं (?) च॥
क्षिप ओं स्वाहा बीजाः क्षितिजलदहनानीलाम्बरं क्रमशः।
खगपतिपञ्चाक्षरमित्यां वा ह्रंतत्कशां च स्यात्॥

× × ×

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ ३ पंक्ति ७)

अथ मन्त्र-व्याकरणम्

अरहंता असरीरा आइरिया उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खर णिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी॥
अकारादिहकारपर्यन्तमेकाक्षरलक्षणमुदाहरिष्यामः।

वृत्तासनं गजवाहनं हेमवर्णं कुंकुमगन्धं ग्रहवाहकारं अष्टाङ्गुलोपरिविस्तीर्णं चतुर्मुखं अष्टबाहु पुण्डरीकलोचनं जटामुकुटधारिणं सितपक्षं मौक्तिकाभरणं अतीववल्गंभीरं पुंलिङ्गं अकारस्य लक्षणं। पद्मासनं गजव्यालवाहनं सितवर्णं शंखचक्रवज्राङ्कुशधारिणं त्रिमुखमष्टहस्तं अहिभूषणं शाम्भवाद्रिमहाद्युति विंशतिसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्त्रीलिंगं आकारस्य माहात्म्यम्। कूर्मवाहनं चतुरस्रासनं हेमवर्णं वज्रायुधं षट्योजनविस्तीर्णं द्विगुणायाममङ्गुष्ठं कलापस्थानं पञ्चदेवूर्ध्ववर्णाङ्कितं अष्टस्वरं नपुंसकं क्षत्रियमिकारस्य माहात्म्यम्।

× × ×

अन्तिम भाग—

पुष्पदन्तवशीयाश्च धर्मप्रथनरोचणाः।
कन्ये द्वे चैव शान्तौ च स्तम्भाकृष्टौ च पीडने॥
मन्त्रमन्त्रणानं नाम पुटमन्ते च पल्लवम्।
प्रारंभे दीपनं विद्धि मध्यतरान्ते विदर्भकम्।
एकान्तरान्तरं नाम ग्रथनं रोधनं पुनः॥
आद्यन्तसंपुटं नाम तेष्विष्टं सम्प्रयोजयेत्।
वश्याकर्षणसंक्षोभपीडार्थं पल्लवासकम्॥
शान्तिपुष्टिं समान्तोमपमेन्द्र शान्तविन्दु।
मदस्थानमनेशुष्कपुन्मुखं स्वीयो पुधे॥
दिक्सालस्थमविघ्नं कार्यसिद्धिश्च विज्ञप्ता।
पूर्वाह्णे वश्यकर्मादि मध्याह्ने द्वेषणादयम्॥
अपराह्णे पश्चार्ते च पीडा सन्ध्यायाग्ना अधेश।
शान्तिकर्मपैलतो च प्रभाते पौष्टिकं तथा॥
इदं मुख शान्त्यादि पथ्यहर्मेव देवतेन।
संपुटन्मुखमघोषं प्रशस्तं परिकीर्तिता॥
गुरुपूर्विकतो शान्तिविधे वै दोषरोहने।

दण्डस्वस्तिकपंकजकुक्कुटकुलिशाख्यभद्रपीठानि ।
उद्यार्करागशशधरधूमहरिद्राः सिता वर्णाः ॥
अस्त्रकं शस्यते कुंडं वश्याकर्षणपीडने ।
शान्तिपुष्टौ चतुष्कोणं वृत्तं द्वेषापसारके ॥
स्फटिकं च प्रवालं च मुक्ता स्वर्णं च बीजकम् ।
शान्तिपुष्टौ वशाकृष्टौ विद्वेषोच्चाटरोधने ॥
शान्तिपुष्टौ तु रुद्राक्षैः पद्माक्षैः स्फटिकैर्जपेत् ।
तद्वर्णयुतसत्पुष्पैर्जपं स्यात्सर्वकर्मणि ॥
मोक्षशान्तिवशाकर्ष स्तम्भद्वेषेऽपसारके ।
अंगुष्ठमध्यमानामितर्जनीभिर्मणिं चरेत् ॥
अङ्गुलानि समुद्दैर्घ्यं द्वादशाकृष्टिवश्ययोः ।
अष्टावेवाभिचारेषु नवशान्तिकपौष्टिके ॥
वषड् वश्ये फडुच्चाटे हुं द्वेषे पौष्टिके स्वधा ।
वौषडाकर्षणे स्वाहा शान्तिके घेऽथ पीडने ॥
शान्तिपुष्ट्योः सितं पुष्पं वश्याकृष्टौ च रक्तकम् ।
अभिचारे तु धूम्रं स्यात् स्तम्भने पीतमादिशेत् ॥
सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तद्रजोभिर्गुडान्वितैः ।
चन्दनागुरुकर्पूरगुग्गुलाज्यघृतादिभिः ॥
पायसान्नाक्ततैर्मिश्रैश्च दूर्वाङ्कुरादिभिः ।
समिद्भिश्च चरेद्धोमं प्रतिष्ठाशान्तिपौष्टिके ।

॥ इति षट्कर्मविधिः समाप्तः ॥

यह एक मन्त्र-शास्त्रान्तर्गत अल्पकाय ग्रन्थ है। इसका नाम "बीजकोष" है। देवताओं के मूल मन्त्र को बीज मन्त्र कहते हैं। यह इसी का संग्रह—कोश है। तन्त्र-शास्त्र में प्रत्येक देवता के भिन्न भिन्न बीजमन्त्र कहे गये हैं।

इसमें सर्व-प्रथम बीजाक्षर सामर्थ्य प्रकरण दिया गया है। इस प्रकरण में भिन्न भिन्न बीजाक्षरों की सामर्थ्य बतलायी है। जैसे ह्रीं यां ह्रीं स्मृतिनाशनम्, ह्रीं मां ह्रीं आकर्षणम्, ह्रीं ईं ह्रीं पुष्टिकरणम्, ह्रीं ईं ह्रीं आकर्षणम् आदि। दूसरा प्रकरण है बीजकोष। इसमें अन्यान्य बीजाक्षरों का उल्लेख मिलता है। जैसे—

लोंकारं पृथिवीबीजं वंकारं आपदुच्यते।
रोंकारं अग्निबीजं वा प्रथमं सर्वदर्शने॥

स्वाकारं मारुतं ह्येथ हकारं व्योमनिश्चयम् ।
रकारं वह्निबीजं च क्रौं गजवशाङ्कुशे ॥

तीसरा प्रकरण मन्त्र-व्याकरण है। इस प्रकरण में अकारादि से लेकर क्षकार-पर्यन्त प्रत्येक बीजाक्षर का लक्षण बतलाया गया है। बल्कि इसी प्रकरण का आरम्भिक कुछ अंश अन्तिम भाग के पहले मध्य भाग शीर्षक में दे दिया गया है। इसके आगे अक्षरों के वर्ण, लिङ्ग, वश्य, आकर्षण आदि कार्यभेद तथा पारस्परिक बीजाक्षरों की मित्रता शत्रुता आदि का उल्लेख किया गया है। अन्तिम मन्त्रपरीक्षा प्रकरण में मास-फल, नक्षत्र फल, राशिफल, पञ्चभूत-फल आदि की चर्चा कर कौन कौन बीजाक्षर किन किन कार्यों में व्यवहरणीय हैं पर उनकी क्या विधि है इत्यादि बातों पर संक्षेप में विचार किया गया है। साथ ही इसमें यह भी बतलाया है कि गुरु मन्त्रोपदेश देने के पहले शिष्य की भले प्रकार से जाँच कर ले। अन्त में उच्चाटनादि प्रत्येक कर्म की दिशा, काल मुद्रा, आसन, हवनकुण्ड, माला, समिध् (लकड़ी) आदि आवश्यक बातों पर भी साधारण प्रकाश डाला गया है।

हिन्दू मन्त्रशास्त्र ने भी मूल बीजाक्षरों पर काफी प्रकाश डाला है। जैसे—अन्नपूर्णा बीज, शूलिनी बीज, हयग्रीव बीज, नरहरि बीज, श्रीविद्या-बीज, श्मशानकालिका-बीज, धावडालिनी बीज, कर्णपिशाची बीज, भूतिकाविग्रह बीज, सुदर्शन बीज, निगडबन्धन मोक्षण-बीज आदि।

अब रही बात इसके रचयिता के विषय में। किन्तु इस विषय के साधन के अभाव में इस बीज कोश के कौन रचयिता हैं यह नहीं कहा जा सकता।



(१५) ग्रन्थ नं० २२२/ख

प्रतिष्ठा-कल्पटिप्पणम् (जिनसंहिता)

कर्त्ता—कुमुदचन्द्र

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च | चौड़ाई ५॥ इञ्च | पत्रसंख्या ३६

आरम्भिक भाग—

श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्त्तितनूभवः
कुमुदेन्दुरहं वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम् ॥१॥
विज्ञानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ २ ॥
प्रपञ्चयन्तु नः प्रज्ञां पञ्चापि परमेष्ठिनः ।
यद्वचोऽमृतसेकेन शीतीभूतमिदं जगत् ॥ ३ ॥
एवं जिनगुणस्तोत्रकृतमङ्गलसत्क्रियः ।
संग्रहीष्यामि भव्येभ्यो हिताय जिनसंहिताम् ॥ ४ ॥
शास्त्रावतारसम्बन्धः प्रथमं प्रतिपाद्यते ।
श्रेयोऽर्थिनः समाधाय चेतः शृणुत धीधनाः ॥ ५ ॥
इत्यनुश्रूयते वीरश्चरमस्तीर्थनायकः ।
विपुलाद्रौ सभां दिव्यामध्युवास कदाचन ॥ ६ ॥
तत्रासीनं तमभ्येत्य वन्दित्वा मगधेश्वरः ।
उपेत्य गणभृज्ज्येष्ठमप्राक्षीज्जिनसंहिताम् ॥ ७ ॥
चराचरजगद्बन्धुस्ततस्तां जिनसंहिताम् ।
भगवान्गौतम-स्वामी मागधं प्रत्यबूबुधत् ॥ ८ ॥
ततः प्रभृत्यविच्छिन्नसम्प्रदायक्रमागता ।
मय

मागधप्रश्नमुद्दिश्य गौतम प्रत्यवोचत।
इतीदमनुसंधाय प्रबन्धोऽयं निबध्यते ॥ १० ॥
स्मृत हितमेतस्या भव्यानामितिसहिता।
जिनसम्बन्धिनी सेयं नाम्ना स्याज्जिनसहिता ॥ ११ ॥
हितार्थिनो ये जिनसहितामिमा पठन्तु ते श्रद्धत सहादरम्।
प्रकाशिता विश्वपदार्थदर्शिभि प्रमाणभूतैर्वृषभै कवीश्वरै ॥१२॥
पूज्य पूजार्हमर्हन्त प्राप्तपायाविसम्पदम्।
प्रणिपत्य प्रवक्ष्यामि पूजासार समुच्चयम् ॥ १३ ॥
पूज्यो जिनपति पूजा पुण्यहेतुर्जिनार्चना।
फल स्याभ्युदया मुक्ति भव्यात्मा पूजक स्मृत ॥ १४ ॥

× × × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ १४ पंक्ति ३)

ओं शक्रहव्यमनैऋत तिर्यगधिपायुधनेशरोषशिखाकलेकपाला।
पूर्वादिकासु निभवन दिशासु वेद्यामितिष्ठन्तु लब्धकुसुमादिकयज्ञभागा ॥
भा मन्तिस सुरधरैरिति पञ्चवर्णमाणिक्यचूर्णरजसा परिकल्पितायां।
वेद्या विदिक्षु कुलिशान् विलिखत् सुरम्द्रो सन्द्रश्रिया परिगतो वरवज्रचूर्ण ॥

अथैव वदिकाविधान परिसमाप्य तत्त मालामन्त्रं पञ्चोपचारविधिना वेदिकायां लिखिततदलकोटनिवासिदेवान् पञ्चगुरुमुख्यान् समाहूय सस्थाप्य सन्निधीकृत्य संपूज्य वेदिकामलङ्कृत्य वेदिकाविधान कर्त्तव्यम्।

इति श्रीमाघनन्दिसुतश्रीवादिकुमुदचन्द्रपण्डितदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणे वेदिका विधानम् समाप्तम्।

× × × × ×

अन्तिम भाग—

इति श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिसुतचतुर्विधपाण्डित्यचक्रवर्तिश्रीवादिकुमुदचन्द्र पण्डितदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणे यन्त्राद्यर्चनविधि समाप्त।

इसके रचयिता पण्डितदेव कुमुदचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती माघनन्दी के पुत्र हैं। यह बात मङ्गलाचरण के प्रथम श्लोकान्तर्गत " तनूभव " एव प्रशस्तिगत " सुत " शब्द से स्पष्ट प्रतीत होती है। परन्तु पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने " माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला " म प्रकाशित " सिद्धान्तसारादिसंग्रह " के " ग्रन्थकर्ताओं का परिचय " में

'तनूभव' शब्द का उल्लेख करते हुए भी कोष्ठक में इन कुमुदचन्द्र को माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्ती का शिष्य लिखा है—यह बात विचारणीय है। संभव है कि कहीं कहीं * शिष्य के अर्थ में पुत्र शब्द का प्रयोग देख कर प्रेमीजी ने यह लिख दिया हो। किन्तु यहाँ तो "तनूभव" शब्द है, जिसका अर्थ एकान्ततः शरीरजन्मा अर्थात् आत्मज होता है। बल्कि प्रेमीजी ने मद्रास की ओरियन्टल लायब्रेरी में संगृहीत "प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण" या "जिनसंहिता" के प्रारम्भिक भाग और प्रशस्ति को उद्धृत करते हुए जिस कुमुदचन्द्र को उस "परिचय" में माघनन्दी का शिष्य बतलाया है उसी कुमुदचन्द्र को M. Rangacharya M.A., और S. Kuppuswami Shastri M.A., इन दोनों प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ताओं ने A Descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Government Oriental manuscript Library Madras नामक ग्रन्थतालिका में उक्त पुस्तक का उद्धरण कर सम्पादक की हैसियत से 6346 पृष्ठ में साफ साफ पुत्र लिखा है। संभव है कि सिद्धान्त-विपरीत समझ कर कोष्ठक में इन्हें प्रेमीजी ने शिष्य लिख दिया हो। परन्तु मैं यह समझता हूँ कि कुमुदचन्द्र जी ने वंश-परम्परागत पाण्डित्य-परिपाटी को प्रकटित करने के लिये ही गौरवरूप में विद्वद्वर्य माघनन्दी का अपने को पुत्र होना स्वीकार किया है।

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं प्रेमीजी के मन्तव्य का खण्डन कर रहा हूँ। इससे मेरा केवल यही अभिप्राय है कि उल्लिखित 'तनूभव' शब्द का अर्थ पुत्र होना चाहिये। बल्कि अन्यान्य विद्वानों ने भी इसका यही अर्थ किया है और माना है। मैं समझता हूँ कि प्रेमीजी भी उक्त शब्दों का अर्थ एकान्ततः शिष्य नहीं मानते। अन्यथा इसे कोष्ठक में रखने की उन्हें जरूरत ही क्या थी? मैं ऊपर यह बात सप्रमाण लिख चुका हूँ कि कहीं कहीं पुत्र, सुत, अपत्य एवं सूनु शब्द का प्रयोग शिष्य अर्थ में भी होता है। अतः इस विषय पर मेरा सर्वथा कदाग्रह नहीं है, पर हाँ विचारणीय अवश्य है।

अस्तु माघनन्दी नाम के कई आचार्य हो गये हैं। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी हैं। "कर्नाटक कविचरिते" के मतानुसार एक माघनन्दी का समय सन् १२६० (वि० सं० १३१७) है। इन्होंने शास्त्र

* "दे [श्री] यात् श्रीधरदेवशिष्यतिलकः श्रीवासुपूज्यो मुनिः
श्रैविद्यस्तदपत्यमुत्यादयेन्दुख्यातसैद्धान्तिकः।
तत्पुत्रः कुमुदेन्दुयोगितिलकस्तत्पुत्रपुत्रयुन्नतः
सिद्धान्तार्णवचन्द्रमाः सुतपदं श्रीमाघनन्दी व्रती॥"

(शास्त्रसारसमुच्चय की कन्नड टीका पृष्ठ २२१)

सारसमुच्चय की एक कन्नड टीका लिखी है एवं माघनन्दी श्रावकाचार के कर्त्ता तथा पदार्थसार के टीकाकार भी आप ही हैं। शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता भी माघनन्दी ही कहे जाते हैं *। शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार ने अपनी गुरु-परम्परा यों बतलायी है :—

× × × × (१) श्रीधरदेव (२) वासुपूज्य (३) उदयेन्दु (४) कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र (५) माघनन्दी। इससे सिद्ध होता है कि इस कन्नड टीकाकार माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र हैं। अगर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प के कर्त्ता यही कुमुदचन्द्र टीकाकार माघनन्दी के गुरु हों तो इनका भी समय लगभग यही होना चाहिये। श्रवणबेलगोळ के शिलालेख नं० १२६ (११४) में भी एक कुमुदचन्द्र और माघनन्दी का उल्लेख मिलता है। इसमें कुमुदचन्द्र को माघनन्दी का गुरु† लिखा है। इस शिलालेख का समय शक सम्वत् १२०५ ई० सन् १२८२ है। शिलालेख-गत कुमुदचन्द्र और माघनन्दी मेरे प्रस्तावित कुमुदचन्द्र और माघनन्दी से अभिन्न मालूम होते हैं। बल्कि "कन्नड कविचरित" के सुयोग्य सम्पादक आर० नरसिंहाचार्य एम० ए० भी इन्हीं कुमुदचन्द्र को शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानते हैं‡। उपर्युक्त शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी की गुरु परम्परा में कुमुदचन्द्र के पहले इनके पिता या गुरु माघनन्दी का नाम न मिलकर उदयेन्दु का नाम दृष्टिगोचर होता है, अतः इसी कुमुदचन्द्र को टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानने में कुछ खटकता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि पता नहीं लगता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी हैं। बल्कि मेरे मन में यह भी विचार उठ खड़ा होता है कि शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता एवं टीकाकार माघनन्दी एक ही हैं। अर्थात् कुमुदचन्द्र के शिष्य माघनन्दी ही शास्त्र सार समुच्चय के कर्त्ता हैं और इन्हीं की स्वोपज्ञ कन्नड टीका भी है। फिर भी इसे मैं अभी सिद्धान्त-रूप में स्वीकार नहीं करता हूँ। इस विषय पर अभी खोज करने की जरूरत है। आश्चर्य नहीं कि

---

* श्रीमाघनन्दी योगीन्द्रः सिद्धान्ताम्बोधिचन्द्रमाः ।
अचीकरद्विचार्यार्थं शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥

(सिद्धांतसारादि-संग्रह)

† नमः कुमुदचंद्राय विद्याविशदमूर्तये ।
यस्य वाक्चन्द्रिका भव्यकुमुदानन्ददायिनी ॥३॥
नमो भव्यजनानंदकन्दाय माघनन्दिने ।
जगत्प्रसिद्धसिद्धान्तवेदिने चित्प्रमोदिने ॥४॥

‡ भास्कर भाग २, किरण ४, पृष्ठ १२२ देखें।

स्वगुरु कुमुदचन्द्र के समान शिष्य इस माघनन्दी ने स्व-रचित शास्त्र-सारसमुच्चय पर स्वयं कन्नड वृत्ति लिखी हो।

"कर्नाटक कविचरिते" के मुख्य लेखक आर० नरसिंहाचार्य एम० ए० उक्त ग्रंथ के भाग २ पृष्ठ ११ में एक वादिकुमुदचन्द्र का परिचय इस प्रकार देते हैं :—" इन्होंने जिनसंहिता नामक प्रतिष्ठा कल्प पर कन्नड व्याख्यान लिखा है। उसके प्रारम्भ में यह श्लोक है " यों लिख कर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प से उद्धृत उल्लिखित प्रारंभिक श्लोक एवं प्रशस्ति को ही प्रमाण-रूप से आप प्रस्तुत करते हैं। यहां पर भी आपने मेरे पूर्व कथनानुसार कुमुदचन्द्र को माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्ती का शिष्य न लिख कर पुत्र ही लिखा है। बल्कि प्रेमी जी ने भी इसका अनुवाद करते हुए "अनेकान्त" वर्ष १ पृष्ठ ४६० में इन्हें पुत्र ही लिख कर मेरे मन्तव्य को और प्रशस्त कर दिया है। आर० नरसिंहाचार्य जिस वादिकुमुदचन्द्र को जिनसंहिता का कन्नड व्याख्याता बतलाते हैं वही कुमुदचन्द्र मेरी समझ में उसके मूल कर्त्ता भी हैं। क्योंकि टीकाकार के परिचय में आप ने जो प्रारम्भिक श्लोक और प्रशस्ति उद्धृत किये हैं वे ज्यों के त्यों मूलग्रंथ के हैं। अतः जिनसंहिता के मूलकर्त्ता तथा कन्नड व्याख्याता एक ही कुमुदचन्द्र कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम पड़ती। 'कवि-चरिते' के सम्पादक आगे लिखते हैं कि " देवचंद्र के 'रामकथावतार' (ई० सन् १७१७) से मालूम होता है कि कुमुदचन्द्र ने एक रामायण भी लिखी है। इसका समय लगभग ई० ११०० होना चाहिये।" यहां विचारणीय बात यह उपस्थित होती है कि आप ही के लेखानुसार शास्त्र-सार-समुच्चय के टीकाकार माघनंदी के समय (ई० सन् १२६०) से इस वादिकुमुदचंद्र (ई० सन ११००) का समय बहुत पीछे पड़ जाता है, जिसे मैंने ऊपर जिनसंहिता के मूलकर्त्ता एवं इस माघनंदी का गुरु बतलाया है। पता नहीं कि आप ने किस प्रमाण के आधार पर उल्लिखित वादिकुमुदचन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी बतलाया है। मालूम होता है कि आप की दृष्टि में माघनंदी के गुरु कुमुदचन्द्र और यह वादि-कुमुदचन्द्र भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं।

इस जिनसंहिता में निम्नलिखित प्रकरण हैं :—

(१) पूज्य-पूजकपूजकाचार्य-पूजाफल-प्रतिपादन (२) त्रैवर्णिकाचार-विधि (३) सकलीकरण-विधि (४) ध्वजारोहण-विधि (५) अङ्कुरार्पण-विधि (६) विमानशुद्धि (७) होमविधि (८) वेदिका-विधान (९) अभिषेक-मण्डप-विधान*। भवन की यह प्रति शुद्ध है तथा भाषा-शैली परिमार्जित है। किन्तु अन्तिम भाग देखने से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ अपूर्ण है।

* मद्रास की ग्रंथ-तालिका से।

(१६) ग्रन्थ नं०—$\frac{२२३}{ग}$

पञ्चनमस्कार-चक्र

कर्ता—

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१४ इञ्च चौड़ाई—८ इञ्च पत्रसंख्या ४६

प्रारम्भिक भाग—

येनाख्याममर्त्यशिण्यामादायुष्मायवञ्चनम् ।
पञ्चांगो मन्त्रविधिः प्रोक्तस्तम्भे× × × × × × ॥

ॐ णमो अरहंताणम् । ॐ णमो सिद्धाणम् । ॐ णमो आइरियाणम् । ॐ णमो उवज्झायाणम् । ॐ णमो लोए सव्वसाहूणम् ।

शान्तिकपौष्टिकवशीकरणाकर्षणमोहनाद्यष्टसिद्धेरचारक्षणाद्यनेकक्रियासाधनस्य चौरारि मारिदुर्भिक्षोपसर्गविनाशनस्य सर्वव्याधिविनाशनस्य व्याघ्रसिंहद्विपडाकिनीभूत राक्षसपिशाचादि भयापहारस्य सर्वशत्रु मर्दनस्य स्वर्गापवर्गसाधनस्य [illegible] लोकेऽस्मिन्नुपकारकस्य पञ्चनमस्कारचक्रस्य विधानं व्याख्यास्यामः ।

× × × × × ×

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १५ पंक्ति १२)

तावन्नामगर्भं हकारमालिख्य बाह्ये श्रीँकारेण प्रवेष्टय सकारं सानुस्वारहकार हकाराभ्यामावेष्ट्य तत्सर्वं यन्त्रविदं कृत्वा बाह्ये पृथ्वीवलयं लेख्यं कुंकुमादिभिर्भूर्जे लिखित्वा सूत्रेण त्रिवर्णेन वेष्टयित्वा अग्ने प्रक्षिपेत् । अग्निस्तम्भनम् ।

सम्यग्दृष्टिजनस्य यन्त्र विद्या दातव्या । मिथ्यादृष्टिनास्तिकप्रयुक्तानां धर्मद्वेषिणां मिथ्यादृशामपुरुषमाणाय न दातव्या । कदाचिद्दत्ते(?) सति (?) तदा महापातक प्रयुक्त भवति ।

एवं पञ्चनमस्कारचक्रं समाप्तमिति ।

यह पंचनमस्कार-चक्र मन्त्रशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ है। मन्त्र ग्रन्थों का मूल "विद्यानुवाद" नाम का दशमपूर्व कहा जाता है। जैन मंत्र साहित्य में "नमस्कार मन्त्रकल्प'

नाम का एक ग्रंथ है और इसके कर्त्ता सिंहनन्दी कहे जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में कहीं भी कर्त्ता का उल्लेख नहीं है। इसलिये पता नहीं कि उक्त कल्प ही यह है या इससे भिन्न। इसका निर्णय दोनों ग्रन्थों के मिलाने से ही हो सकेगा। 'कल्प' भवन में नहीं रहने से इसके रचयिता के विषय में इस समय अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में शान्ति, पौष्टिक, उच्चाटन, वशीकरण, स्तंभन एवं मोहनादि मंत्र-शास्त्र-सम्बन्धी भिन्न भिन्न अनेक विषयों के प्रतिपादित करने की ग्रन्थकर्त्ता ने प्रतिज्ञा की है। पाँचवें पृष्ठ के पूर्व-पृष्ठ में पूर्वाह्न के वसन्त, मध्याह्न के ग्रीष्म, अपराह्न के प्रावृट्, प्रदोष के शिशिर, अर्धरात्रि के शरद्, प्रत्यूष के हेमन्त मिला कर शरद् में शान्ति, हेमंत में पौष्टिक, वसंत में वश्य, फिर हेमंत और शरद् में आकर्षण, ग्रीष्म में विद्वेषण, प्रावृट् में उच्चाटन एवं शिशिर में मारण-विधान का संकेत किया गया है।

नवम पृष्ठ के पूर्व पृष्ठ में कौन से ग्रह शरीर के किस अङ्गोपाङ्ग में कौन सी बाधा पहुंचाते हैं—इसका यों खुलासा किया है :—

सूर्य शिरोवेदना, चंद्र मुखपीड़ा, शुक्र पृष्ठ-बाधा, भौम उदर-शूल, बुध हृदय-व्यथा, बृहस्पति कटिपीड़ा, शनि दोनों बगलों में दर्द, राहु जङ्घावेदना तथा केतु पैरों में पीड़ा पहुंचाते हैं। इसी पृष्ठ में यह दिग्दर्शन कराया गया है कि सायंकाल में राहु और शनि की शांति के लिये नेमिनाथ की, सूर्य और मङ्गल के शांत्यर्थ वासुपूज्य की, केतु की शांति के निमित्त पार्श्वनाथ की, शुक्र तथा चन्द्रमा की शांति के हेतु चंद्रप्रभ की एवं गुरु की शांति के हेतु शांतिनाथ तीर्थङ्कर की पूजा करनी चाहिये।

फिर पृष्ठ दस में ग्रहों के दुष्परिणाम यों लिखे गये हैं :—

चंद्र और शुक्र से शिरःपीड़ा, बुध और बृहस्पति से हृदयशूल, शनि और राहु से उदरवेदना, सूर्य और मंगल से हृदय-कम्पन, पुनः चन्द्र और शुक्र से जल से समुत्पन्न मौक्तिक आदि रत्न एवं सुन्दर धान्य आदि द्रव्यों का क्षय, बुध और बृहस्पति से सुवर्ण, रेशम, रत्न और चावल आदि पदार्थों की क्षति, शनि और राहु से नीलादि रत्न, तिल, मूंग, उड़द, चना एवं कोदों आदि अन्न का नाश तथा सूर्य और मंगल से सूर्यकांत, लालमणि, मूंगा वगैरह द्रव्यों का क्षय होता है।

अन्यान्य कतिपय मंत्र-शास्त्रों की तरह प्रस्तुत ग्रंथ में भी कपाल, कफन, कई पशुओं की हड्डियाँ, रोयाँ, नररक्त, श्मशान की आग आदि अपवित्र वस्तुओं का भी प्रयोग लिखा मिलता है। हाँ इसमें विशेषता सिर्फ यही है कि मारण आदि क्रूर कर्म का विधान नहीं पाया जाता है। यंत्र-मंत्र-रचना-विधि मंत्र-साधन विधि, प्रत्येक तीर्थङ्कर के यक्ष-यक्षियों की मंत्र-सिद्धि भी संक्षेप में इसमें प्रतिपादित की गयी है।

अन्त में यह स्पष्ट लिखा है कि इस ग्रन्थ गत मत्र शास्त्र का मर्म सम्यग्दृष्टि को ही देना चाहिये न कि नास्तिक, धर्मद्वेषी, मिथ्यादृष्टि और अपने धर्म में अविश्वास करने वाले को।

---

(१७) ग्रन्थ नं० २२४/ख

कल्याणकारक

कर्ता—उग्रादित्याचार्य

विषय वैद्यक
भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इन्च　　　चौड़ाई—८। इन्च　　　पत्रसंख्या ११५

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमत्सुरासुरनरेन्द्रकिरीटकोटिमाणिक्यरश्मिनिकरार्चितपादपीठः ।
तीर्थाधिपो जितरिपुर्वृषभो बभूव साक्षात्कृतप्रकटितत्रिजगत्सुबन्धु ॥ १ ॥
तं तीर्थनाथमधिगम्य जिनस्य मूर्ध्ना सन्मातिहाय विभवादिपरीतमूर्तिम् ।
सप्रश्रयाति करयोरुद्यतमस्तकासा पप्रच्छुरित्थमखिल भरतेश्वराद्या ॥ २ ॥
प्राग्भोगभूमिषु जना जनितातिरागाः कल्पद्रुमार्पितसमस्तमहोपभोगाः ।
दिव्यं सुखं समनुभूय मनुष्यभावं स्वर्गं ययुः पुनरपायमुख सुपुण्याः ॥ ३ ॥
अत्रोपपादचरमोत्तमदेहधर्मा पुण्याधिकास्त्वनपवर्त्य महायुषस्ते ।
अन्ये परायपरमायव एव लोके तस्मात् मरुद्भयमभूदिह दोषकोपात् ॥ ४ ॥
देव ! त्वमेव शरणं शरणागतानामस्माकमाकुलधियामिह कर्मभूमौ ।
शीतातिवातहिमवृष्टिनिपीडितानां कालक्रमात्कदशनाशनतत्पराणाम् ॥ ५ ॥
नानाविधामयभयादतिदुःखितानामाहारभेषजविकल्पमजानतां नः ।
तत्स्वास्थ्यरक्षणविधानमिहातुराणां का वा क्रिया कथयतामथ लोकनाथ ॥ ६ ॥
विज्ञाप्य देवमिति विश्वजगद्धितार्थं तूष्णीं स्थिता गणधरप्रमुखप्रधानाः ।
तस्मिन्महासदसि दिव्यनिनादयुक्ता भाषा ससार सरसा वरदेवदेवी ॥ ७ ॥
तत्रादितः पुरुषलक्षणमामयानामन्यौषधान्यखिलकालविशेषवाक्यं ।
सर्वेषणं सकलवस्तुगुणं सा [illegible] कथयांबभूव ॥ ८ ॥

दिव्यध्वनिप्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तथा गणधरोऽधिजगे समस्तम् ।
पश्चाद् गणाधिपनिरूपितवाक्प्रपञ्चमिष्टार्थनिर्मलधियो मुनयोऽधिजग्मुः ॥ ९ ॥
एवं जनान्तरनिबन्धनसिद्धमार्गादायातमायतमनाकुलमर्थगाढम् ।
स्वायम्भुवं सकलमेव सनातनं तत्साक्षात् श्रुतं श्रुतधरैः श्रुतकेवलिभ्यः ॥ १० ॥
प्रोद्यज्जिनप्रवचनामृतसागरान्तः प्रोद्यत्तरङ्गनिसृताल्पसुशीकरं वा ।
वक्ष्यामहे सकललोकहितैकधाम कल्याणकारकमिति प्रथितार्थयुक्तम् ॥ ११ ॥
नवातिवाक्पटुतया न च काव्यदर्पाद्वैवान्यशास्त्रमदभंजनहेतुना वा ।
किन्तु स्वकीयतप इत्यवधार्य वर्यमाचार्यमार्गमधिगम्य विधास्यते तत् ॥ १२ ॥
स्वाध्यायमाहुरपरे तपसां हि मूलमन्ये च वैद्यवरवत्सलताप्रधानम् ।
तस्मात्तपश्चरणमेव मया प्रयत्नादारभ्यते स्वपरसौख्यविधायि सम्यक् ॥१३॥
अत्रापि सन्ति बहवः कुटिलस्वभावा दुर्जनयो द्विरसनाः कुमतिप्रयुक्ताः ।
छिद्राभिलापनिरताः परबाधकाश्च घोरोरगैरुपमिताः पुरुषाधमास्ते ॥१४॥
केचित्पुनः स्वगुणमान्यगुणाः परेषां दुष्यन्त्यपोषविदुषां न हि तत्र दोषः ।
पापात्मनां प्रकृतिरेव परेष्वसूयापैशून्यवाक्परुषलक्षणलक्षितान्ता ॥१५॥
केचिद्विचाररहिताः प्रथितप्रतापाः साक्षात्पिशाचसदृशाः प्रचरन्ति लोके ।
तैः किं यया प्रकृतमेव मया प्रयोज्यं मात्सर्यमार्यगुणवर्ज्यमितिप्रसिद्धम् ॥१६॥
एवं विचार्य शिथिलीकृतमत्सरोऽहं शास्त्रं यथाधिकृतमेवमुदाहरिष्ये ।
सर्वज्ञवक्त्रनिसृतं गणदेवलब्धं पश्चात्प्रजापतिपरं परयावतीर्णम् ॥१७॥
विद्येति सत्प्रकटकेवललोचनाख्या तस्यां यदेतदुपपन्नमुदारशास्त्रम् ।
वैद्यं वदन्ति पदशास्त्रविशेषणज्ञा एतद्विदन्त्यथ पठन्ति च तेऽपि वैद्याः ॥१८॥
वेदोऽयमित्यपि च चोदविचारलाभस्तत्रायंसूचकवचः खलु धातुभेदात् ।
आयुश्च तेन सह पूर्वनिबद्धमुद्यच्छास्त्राभिधानमपरं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१९॥
एवं विधस्य भुवनैकहिताधिकोद्यद्वैद्यस्य भाजनतया प्रविकल्पिता ये ।
तानत्र साधुगुणलक्षणसाम्यरूपान् वक्ष्यामहे जिनपतिप्रतिपन्नमार्गान् ॥२०॥

× × × × ×

मध्यभाग (परपृष्ठ ५९ पंक्ति १९ श्लोक १ से)

जिनमनघमनन्तज्ञाननेत्राभिरामं त्रिभुवनसुखसम्पन्मूर्तिमत्याद्देशा ।
प्रतिदिनमतिमत्यानम्य वक्ष्याम्युदारध्वजगतमुपदंशाख्यातशूकाभिधानम् ॥१॥
व्रणविधिविवृद्धियोक्तदोषक्रमेण प्रकटतरचिकित्सामेह गोत्पन्नशोफी ।
क्षितगतु विधियुक्तां चोपदंशाभिधाने निखिलविषमशोफेष्वेवमेव प्रयोगः ॥२॥

स भवति खलु शोफो द्विप्रकारो नराणामवयवनियतोऽन्यः सर्वदेहाश्रयश्च ।
सकलतनुगतो वा मध्यदेहानुबंधैः श्वयथुरतिसुदुष्टक्लिष्टगुणैस्तराद्रु ॥३॥
श्वयथुरतिविशालो विद्रधिः कुम्भरूपो मुखरहिततया तु ग्रन्थयः सम्प्रदिष्टाः ।
मुखयुतपिटकाख्यो शोफकालानुरूपैरुपहननविशेषैस्साधनैस्साधयेत्तम् ॥४॥
ज्वरयुतपरिदाहश्वासतृष्णातिसारप्रकटबलविहीनारोचकोद्गारयुक्तः ।
यमसदनमवाप्नोत्याशु शून्याङ्गयष्टिर्यमुशरदनूनं हृष्टकामो मनुष्यः ॥५॥

× × × ×

अन्तिम भाग :—

श्रीविष्णुराजपरमेश्वरमौलिमाला संलालिताङ्घ्रियुगलः सकलागमज्ञः ।
आलापनीयगुणसुन्नतसन्मुनीन्द्रः श्रीनन्दिनन्दितगुरुर्गुरुरुर्जितोऽहम् ॥५१॥
तस्याज्ञया विविधभेषजदानसिद्ध्यै सद्वैद्यवत्सलतपःपरिपूरणार्थम् ।
शास्त्रं कृतं जिनमतोद्धृतमेतदुग्रं कल्याणकारकमिति प्रथितं धरायाम् ॥५२॥
इत्येतदुत्तमनुसारमुदारमर्थं विस्तीर्णमस्तु सुतमरसमस्तदोषः ।
प्राग्भाषितं जिनवरैरधुना मुनीन्द्रोग्रादित्यपण्डितमहागुरुभिः प्रणीतं ॥५३॥
सर्वार्थाधिकमागधीयविलसद्भाषाविशेषोज्ज्वलम्
प्राणावायमहागमादवितथं संगृह्य संक्षेपतः ।
उग्रादित्यगुरुर्गुरुर्गुणगणैरुद्भासि सौख्यास्पदम्
शास्त्रं संस्कृतभाषया रचितवान् इत्येष भेदस्तयोः ॥५४॥
सालंकारं सशब्दं श्रवणसुखमयप्रार्थितं स्वार्थविद्भिः
प्राणायुःसत्त्ववीर्यप्रकटबलकरं प्राणिनां स्वास्थ्यहेतुम् ।
विष्णुद्भूतं विचारक्षममिति कुशलाः शास्त्रमेतद्यथावत्
कल्याणाख्यं जिनेन्द्रैर्विरचितमधिगम्याशु सौख्यं लभन्ते ॥५५॥
अल्पार्द्धं द्विसहस्रकैरपि तथा शीतोत्तरैर्वृत्ते (?)
सच्चरितैरिहाधिकमहायुक्तैर्जिनेन्द्रोदितैः
प्रोक्तं शास्त्रमिदं प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचार्यार्थवत् ।
स्थेयाच्छ्रीरविचन्द्रतारकमलं सौख्यास्पदं प्राणिनाम् ॥५६॥
इति जिनवक्त्रनिर्गतसुशास्त्रमहाम्बुनिधेः सकलपदार्थविस्तृततरंगकुलाकुलतः ।
उभयभवार्थसाधनतटद्वयभासुरतो निसृतमिदं हि शीकरनिभं जगदेकहितम् ॥५७॥

इत्युग्रादित्याचार्यकृतकल्याणकारके नानाविधकल्पकल्पनासिद्धये कल्पाधिकारः पञ्चमो ऽध्यायोऽध्यायितः पञ्चविंशपरिच्छेदः ।

× × × × × ×

शालाक्यं पूज्यपादप्रकटितमधिकं शल्यतन्त्रं च पात्र-
स्वामिप्रोक्तं विषोग्रग्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः।
काये या सा चिकित्सा दशरथगुरुभिर्मेघनादैः शिशूनाम्
वैद्यं वृष्यञ्च दिव्यामृतमपि कथितं सिंहनादैर्मुनीन्द्रैः॥
अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः प्रोक्तं सविस्तरवचोविभवैर्विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम्।
वेङ्गीशत्रिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कटः
प्रोद्यद्वृक्षलताविताननिरतैः सिद्धैश्च विद्याधरैः।
सर्वैर्मन्दिरकन्दरोपमगुहाचैत्यालयालङ्कृते
रम्ये रामगिराविदं विरचितं शास्त्रं हितं प्राणिनाम्॥*

इस वैद्यक ग्रन्थ कल्याणकारक के रचयिता आचार्य उग्रादित्य जी हैं। इस के प्रशस्तिगत ५१ वें श्लोक में इन्हों ने अपने गुरु को श्रीनन्दि नाम से याद किया है। पता नहीं चलता कि यह श्रीनन्दि जी कौन हैं। हाँ श्रवणबेल्गोलस्थ शिलालेख नं० ४९३ (शक १०४७) में एक श्रीनन्दि का उल्लेख मिलता है अवश्य, मगर इनके शिष्य उग्रादित्य न होकर सिंहनन्दि हैं। बल्कि इनकी शिष्यपरम्परा में उग्रादित्य का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता।

प्रायश्चित्तचूलिका एवं योगसार के कर्त्ता गुरुदास के गुरु का नाम भी श्रीनन्दि है। किन्तु यहाँ भी मालूम नहीं होता कि उग्रादित्य के गुरु यही हैं या दूसरे। भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दिसंघ की पट्टावली में भी एक श्रीनन्दि का नाम आया है इसमें इनका समय वि० सं० ७४९ अर्थात् ८ वीं शताब्दी बतलाया गया है। वहाँ इन्हें उज्जैनी के पट्टाधीश लिखा है। इसी प्रकार श्रीचन्द्र के (वि० सं० १०७०) गुरु भी श्रीनन्दि कहे गये हैं। आचार्य वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचार में एक श्रीनन्दि का उल्लेख किया है जो इनके प्रगुरु थे। अनुमानतः इनका समय १३ वीं शताब्दी होता है। क्योंकि इनके प्रशिष्य वसुनन्दि १२ वीं शताब्दी के हैं। आचार्य उग्रादित्यजी अपने गुरु श्रीनन्दि के नामोल्लेख के साथ साथ इनके गण गच्छादि की भी चर्चा कर गये होते तो आपके बारे में बहुत कुछ ऊहापोह करने की गुंजायश होती पर ऐसा नहीं होने से हमारे उग्रादित्य जी के श्रीनन्दि यों ही सन्देहास्पद बने रहते हैं। इन्हीं साधनों के अभाव से उग्रादित्य जी के विषय में भी कुछ नहीं लिखा जा सकता।

* ये अन्तिम तीन श्लोक 'भवन' की प्रति में नहीं हैं।

स भवति खलु शोफो छिद्रकारो नराणामवयवनियतोऽन्यः सर्वदेहाश्रयश्च ।
सकलतनुगतो वा मध्यदेहार्धदेहे श्वयथुरनिलपित्तश्लेष्मगुणैस्तथाङ्ग ॥३॥
श्वयथुरतिविशालो विद्रधिः कुम्भरूपो मुखरहिततया तु ग्रन्थयः सम्प्रदिष्टाः ।
मुखयुतपिटकाख्याः शोफकालानुरूपैरुपहननविशेषैस्साधनैस्साधयेत्तम् ॥४॥
ज्वरयुतपरिदाहश्वासतृष्णातिसारप्रकटबलविहीनारोचकोद्गारयुक्तः ।
यमसदनमवाप्नोत्याशु शून्याङ्घ्र्यथियंमनुसरन्ननूनं इष्टकामो मनुष्यः ॥५॥

× × × ×

अन्तिम भाग —

श्रीविष्णुराजपरमेश्वरमौलिमाला संलालितांघ्रियुगलः सकलागमज्ञः ।
आलापनीयगुणसुन्नतसन्मुनीन्द्रः श्रीनन्दिनन्दितगुरुर्गुरुर्जितोऽहम् ॥४१॥
तस्याज्ञया विविधभेषजदानसिद्ध्यै सद्वैद्यवत्सलतपःपरिपूरणार्थम् ।
शास्त्रं कृतं जिनमतोद्धृतमेतदुद्यत् कल्याणकारकमिति प्रथितं धरायाम् ॥४२॥
इत्येतदुत्तरमनुत्तरमुत्तमं विस्तीर्णमस्तु युतमरसमस्तदोषः ।
प्राग्भाषितं निजवरैरधुना मुनीन्द्रोग्रादित्यपण्डितमहागुरुभिः प्रणीतः ॥४३॥
सर्वार्धाधिकमागधीयविलसद्भाषाविशेषोज्ज्वलात्
प्राणावायमहागमादवितथं संगृह्य संक्षेपतः ।
उग्रादित्यगुरुर्गुरुर्गुणगणैरुद्भासि सौख्यास्पदम्
शास्त्रं संस्कृतभाषया रचितवानित्येष भेदस्तयोः ॥४४॥
सालंकारं सशब्दं श्रवणसुखमथ प्रार्थितं स्वार्थविद्भिः
प्राणायुः सत्त्ववीर्यं प्रकटबलकरं प्राणिनां स्वास्थ्यहेतुम् ।
विष्णुद्भूतं विचारक्षममिति कुशलाः शास्त्रमेतद्यथावत्
कल्याणाख्यं जिनेन्द्रैर्विरचितमधिगम्याशु सौख्यं श्रयन्ते ॥४५॥
अक्षराद्धं द्विसहस्रैरपि तथा शीतोत्तरैर्भूतैः (?)
सच्चरितैरिहाधिकमहावृत्तैर्जिनेन्द्रोदितैः
प्रोक्तं शास्त्रमिदं प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचार्यार्थवत् ।
स्थेयादर्करविचन्द्रतारकमलं सौख्यास्पदं प्राणिनाम् ॥४६॥
इति जिनवक्त्रनिर्गतसुशास्त्रमहाम्बुनिधेः सकलपदार्थविस्तृततरंगकुलाकुलतः ।
उभयभवार्थसाधनतटद्वयभासुरतो निसृतमिदं हि शीकरनिभं जगदेकहितम् ॥४७॥

इत्युग्रादित्याचार्यकृतकल्याणकोत्तरे नानाविधकल्पकल्पनासिद्धये कल्पाधिकारः पञ्चमो ऽध्यायोऽप्यादितः पञ्चविंशपरिच्छेदः ।

× × × × × ×

धर्मावलम्बी होना एवं अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहना ये दोनों उग्रादित्याचार्य के द्वारा कल्याणकारक में वर्णित विष्णुराज परमेश्वर को कलचूरि राजवंशीय सिद्ध करने में अवश्य सहायक हैं। हाँ, इस समय मेरे सामने मध्यप्रान्त में शासन करनेवाले भिन्न भिन्न राजाओं की वंश-तालिका नहीं रहने के कारण विष्णुराज परमेश्वर को निश्चित रूप से कलचूरि राजवंशीय लिखने से विरत होना पड़ता है।

उग्रादित्य जी ने अपने इस कल्याणकारक में निम्नलिखित आचार्यों के नाम लिये हैं :—

(१) पूज्यपाद (२) पात्रस्वामी संभवतः पात्रकेशरी) (३) सिद्धसेन (४) दशरथ गुरु* (५) मेघनाद (६) सिंहनाद (७) समन्तभद्र। इनके अतिरिक्त आपने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयोगों में यत्र-तत्र निम्नलिखित आचार्यों के दृष्टान्तरूप से वैद्यक-सम्बन्धी मत दरसाया है :—

(१) श्रुतकीर्त्ति (२) कुमारसेन (३) वीरसेन (४) जटाचार्य। इन में पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रुतकीर्त्ति, कुमारसेन, वीरसेन, जटाचार्य ये प्रसिद्ध आचार्यों में हैं। पात्रस्वामी प्रायः प्रख्यात पात्रकेशरी हों। अब रहे उल्लिखित मेघनाद एवं सिंहनाद। ये नाम तो मेरे लिये अपरिचित से ज्ञात होते हैं।

जैनवैद्यक शास्त्र बारहवें प्राणावायपूर्व से प्रादुर्भूत माना जाता है। अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अन्यान्य वैद्यशास्त्र के मर्मज्ञ पूर्व जैनाचार्यों के वैद्यक-ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही प्रणीत हुआ है। वैदिक मतावलम्बी विद्वानों ने वैद्यशास्त्र की निष्पत्ति वेद से की है, पर उग्रादित्य जी केवलज्ञानरूपी विद्या से मानते हैं यह एक विशेषता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम जो कल्याणकारक रक्खा है वह वैद्यक शास्त्र के लोककल्याणसम्पादक इस अनुत्तम ध्येय का विवेचन करके ही रक्खा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आप जैनवैद्यक शास्त्र की प्राचीनता, वैद्यकशास्त्र की व्युत्पत्ति, इसका उद्देश, चिकित्सा का प्रयोजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डालने से विरत नहीं हुए हैं। प्रशस्तिगत श्लोक से ज्ञात होता है कि आचार्य पूज्यपाद जी ने शालाक्य, शिरोभेदन आदि, पात्रस्वामी आचार्य ने शल्यतन्त्र, आचार्य सिद्धसेन जी ने विष एवं ग्रह-शान्ति-विधान, आचार्य दशरथ गुरुजी और मेघनाद जी ने शारीरिक चिकित्सा, सिंहनाद जी ने महारोग-शान्ति-विधान एवं आचार्य समन्तभद्र जी ने अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्रणयन किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त औषधकल्प, सिद्धान्त रसायनकल्प, भिषक्प्रकाश, जगत्सुन्दरी, कनक दीपक, रससार, सिद्धनागार्जुनकल्प, रसतन्त्र तथा मेरुतन्त्र आदि कई संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों

* सेनगण के आचार्य वीरसेन के शिष्य एक दशरथ हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण १, पृष्ठ ४४)

उल्लिखित ११ वें श्लोक से यह भी विदित होता है कि उग्रादित्य के गुरु श्रीनन्दि उ या राजा विष्णुराज परमेश्वर बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे। पर ज्ञात नहीं कि य विष्णुराज कौन है।

उग्रादित्य जी ने "वेङ्गीशत्रिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कट" इत्यादि श्लोक । यह दरसाया है कि त्रिकलिङ्ग देश में राम गिरि पर्वत के ऊपर जिनमन्दिर में समस्त प्राणियों के हितार्थ यह ग्रन्थ रचा गया। 'हिन्दीविश्वकोष' के विज्ञ सम्पादक के मत है "त्रिकलिङ्ग जनपद (देश) मद्रास के उत्तर पलिकट नामक स्थान से लेकर उत्तर गंजाम और पश्चिम में तिरुति, वेल्लारि, करनूल, विदर तथा चन्दा तक विस्तृत है"। परन्तु श्रीयुत नन्दूलाल दे, एम० ए० बी० एल० अपनी "The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India" नामक कोष में मध्य भारत को त्रिकलिंग मानते हैं। मुझे दे महोदय का मत ही युक्ति-युक्त जँचता है। इसका कारण यह कि विश्वकोष के सम्पादक श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसु और उक्त भौगोलिक कोष के सम्पादक श्रीयुत नन्दूलाल दे दोनों महाशयों ने मध्य प्रान्तीय नागपुर से २४ मील उत्तर विद्यमान रामटेक को प्रसिद्ध प्राचीन रामगिरि माना है। हाँ हिन्दी विश्वकोष में मैसूर राज्यस्थ वेह्लूर जिला में भी एक रामगिरि लिखा मिलता है अवश्य, मगर यह रामगिरि हिन्दी विश्व कोष के मान्य सम्पादक के द्वारा प्रतिपादित त्रिकलिङ्ग देश के अन्तर्गत नहीं आता। इस लिये हम उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि कल्याण कारक के कर्ता उग्रादित्याचार्य के द्वारा निर्दिष्ट त्रिकलिङ्ग वर्तमान मध्य-प्रान्त एवं तदन्तर्गत रामगिरि, नागपुर से २४ मील उत्तर अवस्थित रामटेक ही है। आज भी यहाँ पर पहाड़ी के नीचे कुछ प्राचीन दिगम्बर जैनमन्दिर मौजूद हैं। दिगम्बर जैन प्राचीन काल से ही इस स्थान को एक पवित्र क्षेत्र मानते आ रहे हैं। बहुत कुछ संभव है कि उग्रादित्य जी ने इसी सुप्रसिद्ध प्राचीन क्षेत्र को अपने ग्रन्थ प्रणयन का एक प्रशान्त एवं पुनीत निवासोपयुक्त स्थान समझा हो।

कभी कभी यह बात भी ध्यान में आ जाती है कि उग्रादित्यजी के गुरु श्रीनन्दि के परम भक्त उपर्युक्त विष्णुराज परमेश्वर शायद कलचूरि राजवंश के हों। क्योंकि यह कलचूरि राजवंश मध्यप्रान्त का सबसे बड़ा राजवंश था और इसका प्राबल्य ८ वीं ९ वीं शताब्दी में बहुत बढ़ा चढ़ा था। एक समय यह साम्राज्य बंगाल से गुजरात एवं बनारस से कर्नाटक तक फैल गया था। किन्तु बहुत दिनों तक इसका अस्तित्व नहीं रह सका। कलचूरि नरेशों में बहुतेरे नरेश जैनधर्म के प्रभाव पृष्ठपोषक थे। साथ ही साथ कितने ही कलचूरि शासकों ने अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहा है। कलचूरि नरेशों का जैन

धर्मावलम्बी होना एवं अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहना ये दोनों उग्रादित्याचार्य के द्वारा कल्याणकारक में वर्णित विष्णुराज परमेश्वर को कलचूरि राजवंशीय सिद्ध करने में अवश्य सहायक हैं। हां, इस समय मेरे सामने मध्यप्रान्त में शासन करनेवाले भिन्न भिन्न राजाओं की वंश-तालिका नहीं रहने के कारण विष्णुराज परमेश्वर को निश्चित रूप से कलचूरि राजवंशीय लिखने से विरत होना पड़ता है।

उग्रादित्य जी ने अपने इस कल्याणकारक में निम्नलिखित आचार्यों के नाम लिये हैं:—

(१) पूज्यपाद (२) पात्रस्वामी संभवतः पात्रकेशरी) (३) सिद्धसेन (४) दशरथ गुरु* (५) मेघनाद (६) सिंहनाद (७) समन्तभद्र। इनके अतिरिक्त आपने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयोगों में यत्र-तत्र निम्नलिखित आचार्यों के दृष्टान्तरूप से वैद्यक-सम्बन्धी मत दरसाया है:—

(१) श्रुतकीर्त्ति (२) कुमारसेन (३) वीरसेन (४) जटाचार्य। इन में पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रुतकीर्त्ति, कुमारसेन, वीरसेन, जटाचार्य ये प्रसिद्ध आचार्यों में हैं। पात्रस्वामी प्रायः प्रख्यात पात्रकेशरी हों। अब रहे उल्लिखित मेघनाद एवं सिंहनाद। ये नाम तो मेरे लिये अपरिचित से ज्ञात होते हैं।

जैनवैद्यक शास्त्र बारहवें प्राणावायपूर्व से प्रादुर्भूत माना जाता है। अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अन्यान्य वैद्यशास्त्र के मर्मज्ञ पूर्व जैनाचार्यों के वैद्यक-ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही प्रणीत हुआ है। वैदिक मतावलम्बी विद्वानों ने वैद्यशब्द की निष्पत्ति वेद से की है, पर उग्रादित्य जी केवलज्ञानरूपी विद्या से मानते हैं यह एक विशेषता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम जो कल्याणकारक रक्खा है वह वैद्यक शास्त्र के लोककल्याणसम्पादक इस अनुत्तम ध्येय का विवेचन करके ही रक्खा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आप जैनवैद्यक शास्त्र की प्राचीनता, वैद्यकशास्त्र की व्युत्पत्ति, इसका उद्देश, चिकित्सा का प्रयोजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डालने से विरत नहीं हुए हैं। प्रशस्तिगत श्लोक से ज्ञात होता है कि आचार्य पूज्यपाद जी ने शालाक्य, शिरोभेदन आदि, पात्रस्वामी आचार्य ने शल्यतन्त्र, आचार्य सिद्धसेन जी ने विष एवं ग्रह-शान्ति-विधान, आचार्य दशरथ गुरुजी और मेघनाद जी ने शारीरिक चिकित्सा, सिंहनाद जी ने महारोग-शान्ति-विधान एवं आचार्य समन्तभद्र जी ने अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्रणयन किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त औषधकल्प, सिद्धान्त रसायनकल्प, भिषक्प्रकाश, जगत्सुन्दरी, कनकदीपक, रससार, सिद्धनागार्जुनकल्प, रसतन्त्र तथा मेरुतन्त्र आदि कई संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों

* सेनगण के आचार्य वीरसेन के शिष्य एक दशरथ हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण १,

का उल्लेख एवं कुछ ग्रन्थों का अंश यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। किन्तु खेद की बात है इन समुज्ज्वल जैनसाहित्य रत्नों की खोज एवं प्रकाशन की ओर अभीतक जैनसमाज का ध्यान नहीं गया है। कन्नड साहित्य में भी सोमनाथ के कल्याणकारक, पार्श्वदेव के सुकरयोगरत्नावलि, चालुक्यवंशीय कीर्त्तिवर्मा के गोवैद्य, मंगराज के खगेन्द्रमणिदर्पण, अभिनवचन्द्र के हयशास्त्र, देवेन्द्र मुनि की बालग्रह-चिकित्सा, अमृतनन्दि मुनि का अकारादि वैद्यनिघण्टु एवं श्रीधरदेव के वैद्यामृत के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़े हर्ष से यह कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है कि उक्त इन ग्रन्थों में से आचार्य उग्रादित्य कृत यह कल्याणकारक सोलापुर के जिनवाणी के अनन्यभक्त सेठ रावजी सखाराम दोशी जी के सदुद्योग से एवं खगेन्द्रमणिदर्पण मद्रास के विश्वविद्यालय के ग्रन्थप्रकाशन विभाग से प्रकाशित हो रहे हैं।

साधनाभाव से उग्रादित्य के समय का पता लगाना असम्भव सा हो रहा है। इनके गुरु श्रीनन्दि और विष्णुराज परमेश्वर के विषय में कुछ पता लगने से इनके समय निर्णय करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। हाँ, श्रुतकीर्त्ति और कुमारसेन का नाम जो आपने प्रशस्ति में लिया है सो उनका भी कुछ पता नहीं है—कहीं इनके गण-गच्छ एवं गुरुपरम्परा की बातें जरा भी ज्ञात हो जातीं तो भी उग्रादित्य जी के समय सम्बन्धी प्रश्न को थोड़ा बहुत हल हो जाने की सम्भावना थी। क्योंकि एक नाम के अनेक जैनाचार्य हो गये हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये अमुक श्रुतकीर्त्ति आदि ही हैं। श्रवणबेल्गोल के निम्न लिखित शिलालेखों में श्रुतकीर्त्ति के नाम कई जगह आते हैं। जैसे ४०, १०५ और १०८ में। इनका समय क्रमशः शकसम्वत् १०८५, १३२० और १३५५ है। इसी प्रकार कुमारसेन का नाम ५४ एवं ४९१ के शिलालेखों में आता है और इनका समय भी क्रमशः शकसम्वत् १०५० तथा १०४७ है। उल्लिखित और आचार्यों के १०वीं शताब्दी के पहले के होने के कारण उग्रादित्य के समयनिर्णायक समस्यामें उनका नाम नहीं लेकर इन्हीं दो बाद के आचार्यों का नाम लेना उचित समझा गया। उल्लिखित शिलालेखानुकूल कुमारसेन का काल विक्रम सम्वत् ११८५ अर्थात् १२ वीं शताब्दी सिद्ध होता है*। इसी प्रकार उपर्युक्त शिलालेखों के आधार से शक सम्वत् १०८५ में अङ्कित प्रथम श्रुतकीर्त्ति का समय विक्रम सम्वत् १२२० अर्थात् १३वीं शताब्दी एवं शकसम्वत्

---

* भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ १०८ में प्रकाशित काष्ठासंघ की पट्टावली में भी दो कुमारसेन के नाम आये हैं, पर इनके समय का उल्लेख उसमें नहीं है।

सेनगण की पट्टावली से ज्ञात होता है कि इस गण में भी एक कुमारसेन हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण २-३ पृष्ठ ३७)

१३२० और १३५५ में उद्धृत द्वितीय श्रुतकीर्त्ति का समय विक्रम संम्वत् १४५५ तथा १४६० अर्थात् १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। क्योंकि वि० सं० १२२० के श्रुतकीर्त्ति का अस्तित्व वि० सं० १४६० में कायम रहना असम्भव समझ कर ही प्रथम और द्वितीय दो श्रुतकीर्त्ति सिद्ध करने पड़े हैं। भास्कर भाग १ किरण ४, पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दी-संघ की पट्टावली में भी एक श्रुतकीर्त्तिका नाम आया है। साथ ही साथ इसमें इनका समय वि० सं० १०७६ अङ्कित है और यह श्रुतकीर्त्ति भेलसा (C. P.) के पट्टाधीश बतलाये गये हैं। खैर उग्रादित्यजी के समय-निर्णय के लिये जो जो साधन मेरे दृष्टिगोचर हुए उन्हें पाठकों के समक्ष मैंने उपस्थित कर दिया ताकि इनके समय निर्धारित करने में विद्वानों को सहायता मिले। संभव है कि इस ग्रन्थ की आद्योपान्त आलोचना करने से कुछ साधन मिल जाय। क्योंकि ग्रन्थों के परिचय लिखने में मुझे प्रत्येक ग्रन्थ का आमूलाग्र अवलोकन करने का अवकाश नहीं मिलता।

जहाँतक मैं देख पाया हूँ इस ग्रन्थ की भाषा एवं रचनाशैली मुझे परिष्कृत ज्ञात हुई है।

इस कल्याणकारक ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकरण हैं:—

(१) स्वास्थ्य-संरक्षण (२) गर्भोत्पत्तिविचार (३) स्वास्थ्यरक्षाधिकार-सूत्रवर्णन (४) धान्यादिगुणागुणविचार (५) अन्नपानविधि-वर्णन (६) रसायनविधि (७) व्याधि-समुद्देश (८) वातव्याधि-चिकित्सा (९) पित्तव्याधि-चिकित्सा (१०) श्लेष्मव्याधिचिकित्सा (११-१२) महाव्याधिचिकित्सा (१३-१४-१५-१६-१७) क्षुद्ररोग-चिकित्सा (१८) बालग्रह-भूतमन्त्राधिकार (१९) सर्पविषचिकित्सा (२०) शास्त्रसंग्रह-तन्त्रयुक्ति (२१) कर्म-चिकित्सा (२२) भैषज्यकर्मोपद्रवचिकित्सा (२३) सर्वौषधकर्मव्याप-चिकित्सा (२४) रसरसायनसिद्धयधिकार (२५) नानाविधकल्पाधिकार।

इस ग्रन्थ की श्लोक-संख्या पाँच हजार बतलायी जाती है।



(१८) ग्रन्थ नं० २२५/ख

जिनसंहिता

कर्त्ता—एकसन्धि भट्टारक

विषय—संहिता (प्रतिष्ठा)

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१[illegible] इन्च चौड़ाई—८॥ इन्च पत्रसंख्या ८८

प्रारम्भिक-भाग—

मंगलं भगवानर्हन्मंगलं भगवान् जिनः ।
मंगलं प्रथमाचार्यो मंगलं वृषभेश्वरः ॥१॥
विज्ञानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चितांघ्रये ॥ ॥
यच्छित्वा च गणाधीशं श्रुतस्कन्धमुपास्य च ।
संप्रदीप्यामि मन्दानां बोधाय जिनसंहिताम् ॥३॥
शास्त्रावतारसम्बन्धं तत्रादौ तावदुच्यते ।
श्रेयोऽर्थिन समाधाय चेतः शृणुत धीधना ॥४॥
इत्यनुश्रूयते धीरः पुरा लोकत्रयीगुरु ।
विपुलाद्रौ सभां दिव्यामध्युवास कदाचन ॥५॥
तत्रासीनं तमभ्येत्य मगधेन्द्रः कृताञ्जलिः ।
त्रिःपरीत्य समभ्यर्च्य स्तुत्वा नत्वा च पूरुषम् ६॥
ततोऽभ्येत्य गणाधीशं गौतमं मुनिपुंगवम् ।
नत्वा सप्रश्रय धीमानप्राक्षीज्जिनसंहिताम् ॥७॥
भगवान् गौतमस्वामी मागधं प्रत्यबूबुधत् ॥८॥ (?)
ततः प्रभृत्यविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागता ।
सेयं मयाधुना साधु संक्षेपेण प्रकाश्यते ॥९॥
मागधप्रश्नमुद्दिश्य गौतमः प्रत्यभाषत ।
इदानीमनुसन्धाय प्रबन्धोऽयं निबध्यते ॥१०॥

* * *

मध्य-भाग (पृष्ठ ३८ पंक्ति १ श्लोक १)

अथ मर्त्येश वक्ष्यामि शृणु तद्ग्रामलक्षणम् ।
यत्पृष्टमधुनाधीतं त्वयायमकरोऽपिना ॥१॥
अस्मिन्नवसरे राजन् पृष्ठाग्रवादिर्भविष्यति ।
ग्रामभेदेषु कर्तव्यं जिनधामेति भाषितं ॥२॥
कीदृशी लक्षणं तस्य ग्रामस्येति मुमुक्षुणा ।
पृष्टः प्रसंगतोऽप्योत्कृष्णेन्द्रो ग्रामलक्षणम् ॥३॥
तस्मात् एव पृष्टं तल्लक्षणानि मुमुक्षुणा ।
ततस्तु लक्षणं तस्य संक्षेपेन निगद्यते ॥४॥
ग्रामः स्यात्तथा ग्रामः पुरं ग्रेट्स्र कर्वटम् ॥५॥
संवाहः पत्तनं द्रोणं मठं घं (?) घोष इत्यपि ॥५॥
ग्रामो वृत्तिः परिक्षितिः कुटं संवास इत्यपि ।
स्यात्पुचितं.............................तत् ॥६॥
सदेश राजधानी स्यात्पुरं मर्त्यैस्त्ररोचितम् ।
मध्ये जनपदं कल्प्या दुर्गमुत्तुंगगोपुरम् ॥७॥
गिरिनद्यावृतं खेटं कर्वटं पर्वतावृतम् ।
संवाहनामधेयं स्याद्भूधरे परिकल्पितः ॥८॥
पत्तनं तत्समुद्रान्ते यत्रांभिस्त (?) सीदंते ।
द्रोणानामवगन्तव्यो नद्यायाश्रियेष्ठितः ॥९॥
मठं घं (?) तद्धायर्येवत्तु ग्रामपंचशतावृतम् (?) ।
आश्रये घोष आभीरजनानामभिलप्यते ॥१०॥

× × ×

अन्तिम-भाग :—

पादोत्सेधोष्टमात्रं स्यात्कुम्भमण्ड्यादिसंयुतः ।
पातिकान्ताश्रयः कल्पस्तेषां नाहः शराङ्गुलः ॥६८॥
उत्तरं त्रियवोत्सेधधावने यव उच्छ्रयः ।
मात्रा अर्ध कृता याः स्युः कपोताश्रय उच्छ्रयः ॥६९॥
यवौ द्वौ निम्नउत्सेधप···ष्टं त्रियवोच्छ्रयम् ।
प्रत्युत्सेधोर्द्ध मात्रः स्याद्द्वियवः पट्टिकोच्छ्रयः ॥७०॥

कम्पोयवद्ध्योत्सेध उत्तरार्धे कदाकणि ।
श्वासेराणिमि सव निष्प्रमैतत्सुरं ' येन् ॥७१॥
आयासाणिषु तेष्वाविस्तारोऽर्कयवो भवेत् ।
अणाद्धिद्वेतेदि   भूसम्मिते ॥७२॥
कोणोप्वयसपट्टे थर   येत्सुद्दढं यथा ।
गभिरूपं खियोरूप विशु मद्धान्तरे भवेत् ॥७३॥
उपरि फलकान्यस्य   स्यस्युर्मिरन्तरम् ।
सम कुमुदक येन घन पश्चादपि स्थलम् ॥७४॥
मादकस्यल्तुल्यस्तत्पार्श्वमिन्यफ्रयो भवेत् ।
सन्निस्तिस्थलमिति व यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥७५॥
समद्रो षा कल्पोऽय   स्यो भवेत् ।
धासोऽस्मिन्पञ्चताल स्यादुच्चांशशापितोच्छ्रये ॥७६॥

× × – ×

जिनसंहिता (प्रतिष्ठापाठ) की इस भवन की प्रति में प्रशस्ति न होने की वजह से इसके प्रणेता भट्टारक एकसन्धि के सम्बन्ध में सर्वथा मौनधारण करना पड़ रहा है। इधर उधर टटोलने से भी किसी उल्लेखनीय बातों का पता लगाने में सफलता नहीं मिली।

आर्यप, अय्यपार्य या अर्यपार्य नाम के विद्वान् के द्वारा शक सम्वत् १२४१* अर्थात् वि० सम्वत् १३७६ में जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नाम का एक ग्रन्थ रचा गया है। बल्कि इस ग्रन्थ का कुछ परिचय "प्रशस्ति संग्रह" पृष्ठ ८ १२ में दिया भी जा चुका है। इस ग्रन्थ में लेखक ने वीराचार्य आदि के साथ 'एकसन्धि भट्टारक' का भी उल्लेख निम्न प्रकार से किया है —

"वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो
य पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जित ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धिस्तत
तेभ्य स्वाहृत सारमध्यरचित स्याज्जैनपूजाक्रम ॥"

बल्कि खेद के साथ लिखना पड़ता है कि "प्रशस्ति संग्रह" में दिये गये ग्रन्थकर्त्ता के परिचय

*शकाब्दे विधुवार्धिनेत्रहिमगौ सिद्धार्थसम्वत्सरे
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्यर्क्षवारेऽहनि ।
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धूर्जित ॥

में प्रमाद एवं दृष्टि-दोष से एकसन्धि भट्टारक के नाम पर मेरा ध्यान ही नहीं गया था। फल-स्वरूप उपर्युक्त श्लोक में नौ प्रतिष्ठा-पाठ के प्रणेताओं का स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी वीराचार्य आदि आठ ही प्रतिष्ठापाठ रचयिताओं का मैंने नाम निर्देश कर दिया है। खैर, प्रमाद का लक्ष्य होना हम जैसे अल्पज्ञ मानवों का प्रकृत धर्म है।

जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय (विद्यानुवादाङ्ग) के उल्लिखित श्लोक से प्रकट है कि जिनसंहिता के कर्त्ता एकसन्धि भट्टारक विक्रमसम्वत् १३७६ के पहले हो चुके हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि यह पण्डित-प्रवर आशाधर जी के समकालीन १३ वीं शताब्दी में या इससे भी कुछ पीछे हुए हों।

भवन की संगृहीत जिनसंहिता की यह प्रति भीषण अशुद्धियों से भरी पड़ी एवं अपूर्ण है। अतः किसी शास्त्र-संग्रहीता के संग्रह में यदि इस की पूर्ण प्रति हो तो उसका प्रशस्ति-मय अन्तिम भाग भेजकर भास्कर में प्रकाशित करा देने की कृपा करेंगे।

---

(१६) ग्रन्थ नं० २२७/ख

गीतवीतराग

कर्त्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्त्ति

विषय—जिनस्तुति

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३।।। इञ्च चौड़ाई ६।। इञ्च पत्रसंख्या ३३

प्रारम्भिक-भाग —

विद्याव्याप्तसमस्तवस्तुविसरो विम्बैर्गुणैर्भासुरो-
दिव्यध्वनवचःप्रतुष्टसुरः सद्ध्यानरत्नाकरः।
यः संसारविषाब्धिपारसुतरो निर्वाणसौख्यादरः
स श्रीमान् वृषभेश्वरो जिनवरो भक्त्यादरान् पातु नः॥१॥
पूर्वस्मिञ्जयवर्मनामनृपति विद्याधराधीश्वरम्
पश्चात्सल्ललिताङ्गदेवममलं श्रीवज्रजङ्घाधिपम्।

आर्यं श्रीधरनिर्जरं च सुविधिं कल्पान्तदेवेश्वरम्
चक्राधीश्वरवज्रनाभिजनपं सर्वार्थसिद्धीश्वरम् ॥२॥
साकेताधिपनाभिराजतनयं कल्याणपञ्चाश्रितम्
प्राप्तानन्तचतुष्टयं जिनवरं सौवर्णदेहाऽहम् ।
सौधर्माधिपतीन्द्रवृन्दविनतश्रीपादपद्मद्वयम् ।
वन्देऽहं वृषभेश्वरं गुणनिधिं सद्धर्मचक्राधिपम् ॥३॥
मेरोः पश्चिमगन्धिने जनपदे विद्याधराणां पद-
स्याद्रेरुत्तरदिक्स्थिते सदलकानाम्ना प्रतीते पुरे ।
राजा शस्तमहाबलस्सचिवकैर्युक्तश्चतुर्भिस्सदा
राजन्तं समुवाच धर्मसुफलं शुद्धस्वयंपूर्वक ॥४॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ २५ पंक्ति ९ से)

मध्यपदम्—सदरुणकिसलयचरणयुगेन मृदुसरसिजनयधृतसुभगेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥१॥
वर्तुलकान्तिमृदूरुभरेण विस्तसवणाधिवृत्तिधरेण ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥२॥
मञ्जुलकान्तिसुनेत्रयुगेन पुञ्जितकान्तसुमध्यगुणेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥३॥
ललितसुबिसनिभभुजयुगलेन दलितसुरतरुविटपचलनेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥४॥
विचलितहारविलासच्छन्नेन कुचयुगविलसत्कुरुविभवेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥५॥
शशधररुचिधरसुरमसुखेन विकसत्कुवलयनयनसखेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥६॥
अलिकुलकुन्तलभरनिटिलेन विलसितवाक्छलसमकुटिलेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥७॥
कुण्डलमण्डितश्रुतियमलेन खण्डितकुमतवचनसुबलेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता ॥८॥

× ×

अन्तिम-भाग—

गुणिपर्वशाम्बुधिपूर्णचन्द्रो यो देवराजोऽजनि राजपुत्रः ।
तस्यानुरोधेन च गीतवीतराग-प्रबन्धं मुनिपश्चकार ॥१॥
आर्यिस्देशविशिष्टे सिंहपुरे लब्धशस्तजन्मासौ ।
बेल्गोलपण्डितवर्यश्चकार श्रीवृषभनाथचरितमिदम् ॥२॥
स्वस्तिश्रीबेल्गुलं दोर्बलिजिननिकटे कुन्दकुन्दान्वये नोऽ-
भूत्स्तुत्यः पुस्तकाख्यः गुणगणकलितः ख्यातदेशीगणार्थः ।
विस्तीर्णाशेषरीतिप्रगुणरसभृतं गीतवृत्तीर्निकामम्
शास्त्रार्थज्ञबन्धं सुधनुतमतनोत् पण्डिताचार्यवर्यः ॥

इति श्रीमद्रायराजगुरुभूमण्डलाचार्यवर्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्तिबल्लालरायजीवरक्षापाल(?)इत्याद्यनेकबिरुदावलिविराजमानबेल्गोलनिवाससिंहासना-धीश्वरश्रीमदभिनवचारुकीर्तिपण्डिताचार्यवर्यप्रणीतगीतवीतरागाभिधानाष्टपदी समाप्ता ।

यह गीतवीतराग जयदेव (ई० ११८०) प्रणीत गीतगोविन्द के ढंग पर रचा गया है। जिस प्रकार गीतगोविन्द का अपर नाम अष्टपदी प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस गीतवीतराग का भी दूसरा नाम अष्टपदी ही है। इस बात का खुलासा इसके रचयिता पण्डिताचार्य चारुकीर्ति जी ने अपनी इस कृति में स्वयं कर दिया है। गीतगोविन्द महाकाव्य में गिना जाता है। इसके प्रणेता जयदेव बंग के लक्ष्मण सेन (ई० ११९९—१२०१) के सभा-पण्डित थे। इनके पिता का नाम भोजदेव एवं माता का राधादेवी था। यह बिन्दुबिल्व के निवासी थे। बिन्दुबिल्व बंगदेश के वीरभूम जिले में है। यह जयदेव श्रीकृष्ण के अनन्यभक्त थे। भक्तिमाला में इनकी भक्ति की अनेक कथाएँ मिलती हैं। इनका विरचित एक हिन्दी ग्रन्थ भी है, जो सिक्खों के आदि ग्रन्थों में सब से प्राचीन माना जाता है। संस्कृत में जयदेव-विरचित संस्कृत का यह छोटा सा एक ही महाकाव्य होने पर भी इस कवि का यश इतना प्रसृत हुआ है कि कवि के जन्म-स्थान पर इनकी पुण्यतिथि के उपलक्ष में अभीतक बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता है, जिसमें गीतगोविन्द के पद्य गाये जाते हैं। ई० १४९९ में उत्कल के प्रताप रुद्रदेव ने सब वैष्णवनर्तक तथा गायकों को सर्वदा गीतगोविन्द के ही पद्य गाने की आज्ञा दी थी। गेटे सदृश पाश्चात्य रसिक-शिरोमणियों ने कालिदास के साथ इस कवि की भूरि भूरि प्रशंसा की है। गीतगोविन्द १२ सर्गों का महाकाव्य है। इस में श्रीकृष्ण और राधिका का प्रेम वर्णित है। प्रतिसर्ग के पद्य के पूर्व में राग ताल आदि दिये गये हैं। इससे यह अनुमान होता है कि इसके रचयिता बड़े भारी गवैया थे। इस में विप्रलंभ

आर्यं श्रीधरनिर्जरं च सुनिधिं कल्पान्तदेवेश्वरम्
वज्राधीश्वरवज्रनाभिजनपं सर्वार्थसिद्धीश्वरम् ॥२॥
साकेताधिपनाभिराजतनयं कल्याणपञ्चाश्रितम्
प्राप्तानन्तचतुष्टयं जिनवरं सौवर्णदेहाग्रहम् ।
सौधर्मादिशतेन्द्रवृन्दविनतश्रीपादपद्मद्वयम् ।
वन्देऽहं वृषभेश्वरं गुणनिधिं सद्धर्मचक्राधिपम् ॥३॥
मेरो पश्चिमगन्धिले जनपदे विद्याधराणां पर-
स्याद्रेरुत्तरदिक्स्थिते सद्‍लकानाम्ना प्रतीते पुरे ।
राजा शस्तमहाबलस्सचिवकैर्युक्तश्चतुर्भिस्सदा
राजन्ते समुराव धर्मसुफलं बुद्धस्वयंपूर्वकः ॥४॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ २५ पंक्ति ६ से)

अष्टपदम्—सदरुणकिसलयचरणयुगेन मृदुसरसिजनयधृतसुभगेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥१॥
वतुलकान्तिमृदूरुभरेण चित्तप्रवाणधिवृत्तिधरेण ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥२॥
मञ्जुलकान्तिसुवेश्वयेन पुञ्जितकान्तसुमध्यशुभेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥३॥
नलिनसुबिसनिभभुजयुगलेन दलितसुरतरुविटपचलनेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥४॥
विचलितहारविलासशिखेन कुचयुगविलसदुदधिभवेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥५॥
शशधररुचिधरसुखमुखेन विशदसुसुन्दरलनयनसखेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥६॥
अलिकुलकुन्तलभरविलिखेन विलसितशशिदलसमतुटिलेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥७॥
कुण्डलमण्डितश्रुतियमलेन खण्डितकुमनरजनमलेन ।
सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥८॥

× × ×

इस की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि गंगवंशज राजकुमार देवराज के अनुरोध से ही आपने इस "गीतवीतराग" का प्रणयन किया है। इस गंगवंश का राज्य मैसूर प्रान्त में लगभग ईसा की ४थी शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक रहा। आधुनिक मैसूरु का अधिकांश भाग गंगवंश के राज्य के अन्तर्गत था जो गंगवाडि ६६००० कहलाता था। मैसूरु में जो आजकल गङ्गडिकार (गंगवाडिकार) नामक किसानों की भारी जनसंख्या है वे गंगनरेशों की प्रजा के ही वंशज हैं।

गंगवंशीय राजाओं की प्राथमिक राजधानी 'कुवलाल' या 'कोलार' थी। यह पूर्वी मैसूरु में पालार नदी के तट पर अवस्थित है। पीछे यह राजधानी कावेरी के तट पर 'तलकाड' नामक स्थान में आ गयी। आठवीं शताब्दी में श्रीपुरुष नामक गंगनरेश सुविधा के लिये अपनी राजधानी का कार्य बेङ्गलूरु के समीपस्थ मराणे या मान्यपुर से भी सञ्चालित करते थे। गंगवंश के अभ्युदय का यह मध्याह्न समय था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब तलकाड चोलनरेशों के हस्तगत हुआ तभी से गंगराज्य की क्षति श्री हुई। शुरू से ही गंगराज का जैनधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। श्रवणबेल्गोळ के शिलालेख नं० ५४ (६७) के उल्लेख से ज्ञात होता है कि गंगराज्य की नींव डालने में जैनाचार्य सिंहनन्दी जी का अधिक हाथ था। आचार्य सिंहनन्दी जी की इस सहायता की चर्चा गंगनरेशों के भिन्न भिन्न शिलालेखों में भी पायी जाती है।* इसके अतिरिक्त गोम्मटसार की वृत्ति के प्रणेता अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्ती ने भी अपने ग्रन्थ की उत्थानिका में इस बात का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि आचार्य पूज्यपाद इसी वंश के सातवें नरेश दुर्विनीत के राजगुरु थे। गंगवंश के अन्यान्य प्रकाशित लेखों से भी जैनाचार्यों का सम्बन्ध सिद्ध होता है।

पर इस वंश में देवराज का कुछ पता नहीं लगता। पुरातत्त्व के सहृदय मर्मज्ञ मित्रवर गोविन्द पै का भी कहना है कि तलकाड के पश्चिम गंगवंश में देवराज नामक शासक का नाम मिलता नहीं है। हाँ, कलिङ्ग के पूर्व गंगवंश में देवेन्द्र वर्म नामक शासक ई० सन् १०७० में सिंहासनारूढ़ हुआ था अवश्य (Historical inscriptions of southern India page 358 & 346—348; 415—416)

किन्तु चारुकीर्त्ति जी के द्वारा "गीतवीतराग" में प्रतिपादित देवराज प्रायः यह नहीं हो सकता है। इसीलिये साधनाभाव से देवराज के सम्बन्ध में इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। अस्तु इस "गीतवीतराग" के प्रणेता भट्टारक चारुकीर्त्ति जी शक सम्वत् १३२१ के बाद के हैं।

* देखें "जैन शिलालेख-संग्रह" पृष्ठ ७३—७४

और संभोग-शृङ्गार का बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है। इस काव्य की लोकप्रियता इसकी टीका की संख्या से भी विदित होती है। इस काव्य पर ३० टीकायें उपलब्ध होती हैं। इन टीकाकारों में उदयनाचार्य और शङ्कर मिश्र सदृश बड़े बड़े नैयायिक और नागाभट्ट सदृश मीमांसक भी हैं।*

इस गीतवीतराग में प्रथम तीर्थंङ्कर ऋषभदेव का चरित चित्रित है। इस में भी प्रत्येक पद्य के पूर्व में राग-ताल आदि दिये गये हैं। इससे जयदेव के समान इस गीतवीतराग के कर्त्ता पण्डिताचार्य चारुकीर्ति जी भी संगीत के मर्मज्ञ विदित होते हैं। इन्होंने अपने गीतवीतराग में गीतगोविन्द का खाका खींचने का प्रचुर प्रयास किया है। बल्कि इस विषय में इन्होंने सफलता भी प्राप्त की है। इसकी संस्कृत भाषा भी मंजी हुई एवं प्रशस्त है। संख्या की दृष्टि से इसमें ५७२ पद्य माने जाते हैं। गीतवीतराग के प्रणेता चारुकीर्ति जी "दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ" के मतानुसार (१) पार्श्वाभ्युदय की टीका (२) चन्द्रप्रभ-काव्य की टीका (३) आदिपुराण (४) यशोधर-चरित (५) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका के भी कर्त्ता हैं। इनमें आदिपुराण, यशोधर चरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका अभी तक मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुई हैं। बल्कि भवन में चारुकीर्ति के रचित अर्थ-प्रकाशिका और प्रमेयरत्नमालालङ्कार नाम के सुप्रसिद्ध प्रमेयरत्नमाला नामक न्यायग्रन्थ के दो टीका ग्रन्थ भी संगृहीत हैं, जिनका परिचय यथावसर इसी प्रशस्ति-संग्रह में प्रकाशित किया जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उल्लिखित इन ग्रंथों के रचयिता चारुकीर्ति जी एक बहुदर्शी एवं विविध विषयों के मर्मज्ञ उद्भट संस्कृत के विद्वान् थे।

इस गीतवीतराग के कर्त्ता चारुकीर्ति जी ने द्राविड़ (मद्रास) देशान्तर्गत सिंहपुर को अपना जन्मस्थान बतलाया है। यह सिंहपुर सम्भव है कि टिंडीवनम् तालुक के अन्तर्गत सिंगवरम् हो। बाद आप लोक-विश्रुत श्रवण बेल्गोळ मठ के अधीश बनाये गये। चारुकीर्ति जी रायराजगुरु, भूमण्डलाचार्य, महावादवादीश्वर आदि अनेक उपाधियों के धारक थे। पर ये सभी उपाधियाँ पट्टपरम्परागत हैं। बल्कि इनकी 'बल्लाळ जीवरक्षक' जो एक विशिष्ट उपाधि है वह विष्णुवर्द्धन के बड़े भाई बल्लाल प्रथम (११००—११०६) को एक भयानक रोग से मुक्त करने के उपलक्ष में तत्कालीन श्रवण बेल्गोळ के मठाधीश चारुकीर्ति जी को प्राप्त हुई थी।‡

* देखें—"संस्कृत-साहित्य का संक्षिप्त-इतिहास," पृष्ठ १७८ से १८१।

† देखें—"प्रशस्ति संग्रह" पृष्ठ १—४।

‡ देखें—श्रवणबेलगोळ के शिलालेख नं० २५४ (१०५) सन् १३९८ तथा २५८ (१०८) सन् १४३२

धीमदित्यादि। अवगाहनमन्तःप्रवेशः। स च निगूढतत्त्वकलनरूपः। तात्पर्यविषयी-भूतार्थज्ञानसम्पादनमिति यावत्। पोतप्रायम् पोतसदृशम् तत्प्रतिपाद्यार्थैकदेशं प्रति सम्पादकमिति यावत्। तत्प्रकरणस्येति। सम्बन्धादिविषयकज्ञानरूपकारणाभावे प्रवृत्तिरूपकार्यं न स्यादिति भावः। अयमर्थ "स्तत्प्रकरणस्य" इत्यत्र षष्ठ्यर्थो विषयत्वम् प्रेक्षावतामिति षष्ठ्यर्थः सम्बन्धितत्वम्। तथा च एतत्प्रकरणविषयकप्रेक्षावत्सम्बन्धि-प्रवृत्तिर्न जन्यत इति शास्त्रविषयकप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति सम्बन्धादिज्ञानानां कारणतायाः व्यवस्थापयिष्यमाणात्। प्रेक्षावन्तो ज्ञानिनः तत्र योऽनुवाद इति। अनुवादो नाम अत्र न निष्टप्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोगः। ननु पूर्वमुक्तस्य पुनरपि कथनं तस्य प्रकृतेर-संभवात्। संबन्धादीनां प्रमाणादिति श्लोकात् पूर्वं मूलकृतानुक्तेः। अतः सम्बन्धादिविषय-निष्ठं प्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोग एव अत्रानुवादशब्दार्थो ग्राह्यः।

× × × × × ×

मध्य-भाग (पत्रपृष्ठ ११८ पंक्ति ५)

प्राकट्यं फलजनकत्वावस्था। तथा च अव्यवहितोत्तरक्षणे फलजनकत्वरूपोद्बोधन-विशिष्टसंस्कारजन्या स्मृतिरित्यर्थः। एवं च संस्कारजन्यत्वं स्मृतेर्लक्षणम् इतरत्स्व-रूपकीर्त्तनमिति योऽयम्। "दर्शनस्मरणकारणकम्" इत्यादि। इदमिति प्रत्यक्षं तदिति स्मरणमेतदुभयजन्यं तदिदमिति यज्ज्ञानं जायते तत्प्रत्यभिज्ञानम्। तत्र संकलनमिति स्वरूपकथनम्। तथा च प्रत्यक्षजन्यत्वे सति स्मरणजन्यत्वं प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम्। प्रत्यक्षजन्यत्वमात्रोक्तौ अवग्रहात्मकप्रत्यक्षजन्येहात्मकप्रत्यक्षेतिव्याप्तिः। अतः स्मरण-जन्यत्वं स्मरणजन्यत्वमात्रोक्तौ स्मरणध्वंसेऽतिव्याप्तिः। अतः प्रत्यक्षजन्यत्वं तत्र दर्शनस्मरणकारणकत्वादिति सर्वत्र ग्रन्थान्तरेषु शास्त्रान्तरेषु च। तदिदं सोऽयं देवदत्त इत्यादि तत्तेदन्तावग्राहिज्ञानस्यैव प्रत्यभिज्ञानत्वमुक्तम्। तद्देशतत्कालसंबधित्वं तत्ता एतद्देश एतत्कालसम्बन्धित्वं इदं ता। तथा च कथमस्मिन्सूत्रे तत्सदृशं तद्विलक्षणमित्यादि-ज्ञानानामपिप्रत्यभिज्ञानत्वमुच्यते इति शंका। तत्र च दर्शनस्मरणकारणकं यज्ज्ञानं तत्सर्वं प्रत्यभिज्ञानमिति तावत्केषु च ग्रन्थेषु कंठतः उक्तं केषुचिच्च सूचिता। तथा च तदिद-मित्यादिज्ञानस्यैव तत्सदृशमित्यादिज्ञानस्यापि दर्शनस्मरणकारणकत्वाविशेषात् सूक्तमिति-सूत्राशयः।

× × × × ×

(२०) ग्रन्थ नं० २२१/ख

अर्थप्रकाशिका (प्रमेयरत्नमाला की टीका)

कर्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इञ्च चौड़ाई ६॥। इञ्च पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक-भाग —

श्रीमन्नेमिजिनेन्द्रस्य वन्दित्वा पादपङ्कजम् ।
प्रमेयरत्नमालार्थः संक्षेपेण विविच्यते ॥१॥
प्रमेयरत्नमालायाः व्याख्याः सन्ति सहस्रशः ।
तथापि पण्डिताचार्यकृतिर्ग्राह्यैव कोविदैः ॥२॥
भानौ देदीप्यमानेऽपि सर्वलोकप्रकाशके ।
न गृह्यते किं भुवने जनेन करदीपिका ॥३॥

प्रारिप्सितस्य प्रबन्धस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं स्वेष्टदेवतानमस्काररूपं मंगलमाचरन् शिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थतो निबध्नाति ।

नतामरेति । अस्मिन् श्लोके वृत्त्यनुप्रासशब्दालंकारः । रेफादिवर्णानामसकृत् द्वयादिवर्णानामावृत्तौ वृत्त्यनुप्रासस्य अभिहितत्वात् । तदुक्तं—"एकद्विप्रमुखा वर्णा व्यवधानेन यत्र वै । आवर्त्तन्ते सदा तत्र वृत्त्यनुप्रास इष्यते ॥" कर्मारातीन् जयतीति जिनः । कर्माराति-जेतृत्वमेव जिनपदप्रवृत्तिनिमित्तच्छेदकम् । एतच्च दुर्वारमारवीरमदच्छिदे इत्यनेन समर्थित-मिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमर्थालङ्कारः । "हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्" इति लक्षणात् । अनयोश्शब्दार्थालङ्कारयोस्संसृष्टिः तिलतण्डुलन्यायेन उभयोर्मेलनात् । "तिल-तण्डुलन्यायेन मेलनं संसृष्टि" इतिलक्षणात् । अकलङ्क इति । अत्र रूपकालङ्कारः—धर्मास धर्म्मोधिस्वस्य रूपणात् । उपमानोपमानयोरभेदकथनं हि रूपकम् । तदुक्तम्—"विषय-भेदताद्रूप्यरञ्जनं विषयस्य यत् रूपकं तत्" इति । न्यायविद्यामृतमित्यत्राप्ययमेव रूपकालङ्कारो बोध्यः । प्रभेन्दुवचनेनेति । प्रभेन्दुवचनोदारचन्द्रिकेत्यत्र निरुक्तमेव रूपकम् । ज्योति-रिङ्गणसन्निभा इत्यत्र उपमालङ्कारः । "उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः" इतिलक्षणात् ।

पृथ्वीमण्डलमण्डनायितमहाराजाधिराजोत्तम-
श्रीराजद्धिमशीतलक्षितिपतेर्गोष्ठीमते सौगतान्।
वादायापततो-मदोद्धततया यो वाग्भरैर्जित्वरैः
जित्वा श्लाघ्यतमोऽभवत्सपदि तं वन्देऽकलंकं मुनिम् ॥२॥
यत्सूत्रव्रजचन्द्रिकारसभरं नित्यं समास्वादयन्
भव्योत्तंससुधीचकोरनिकरस्सर्वोऽपि संमोदते।
सोऽयं सार्वपदीनधीबुधमनस्सौधाग्रकेलीशुको
हर्षं वर्षतु सन्ततं हृदि गुरुर्माणिक्यनन्दी मम ॥३॥
जयतु प्रभेन्दुसूरिः प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तण्डेन।
यद्वदननिस्सृतेन प्रतिहतमखिलं तमो हि बुधवर्गाणाम् ॥४॥
श्रीचारुकीर्त्तिधुर्यस्सन्तनुते पण्डितार्यमुनिवर्यः।
व्याख्यां प्रमेयरत्नालङ्काराख्यां मुनीन्द्रसूत्राणाम् ॥५॥
माणिक्यनन्दिरचितं क्वनुसूत्रवृन्दं
क्वाल्पीयसी मम मतिस्तु तदीयभक्त्या।
तादृक्प्रभेन्दुवचसां परिशीलनेन
कुर्वे प्रमेन्दुमधुना बुधहर्षकन्दम् ॥६॥
"प्रमाणादर्थसंसिद्धिः तदाभासाद्विपर्ययः।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मसिद्धमल्पं लघीयसः॥"

श्रीमन्न्यायमहार्णवस्याखिलप्रमेयरत्नगर्भस्यावगाहनमन्युत्पन्नप्रज्ञैः कर्तुमशक्यमितिमन्यमानैः न्यायशास्त्रप्रवर्तनशिरोमणिभिर्भट्टाकलङ्कमुनिभिस्तदवगाहनाय पोतप्राये निखिलवस्तुस्वरूपप्रकाशनप्रवणे प्रकरणप्रणीते तत्रापि मन्दमतीनां दुरवगाहनतामालोच्य कारुणिको माणिक्यनन्द्याचार्यः सुस्पष्टं तदर्थं प्रतिपादयितुं परीक्षामुखनामकं सूत्रात्मकं प्रकरणमिदं प्रणिनाय। तत्र सम्बन्धाभिधेयेष्टसाधनत्वकृतिसाध्यत्वानां प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थं अवश्यं प्रतिपाद्यत्वात् तत्प्रतिपादकं सकलशास्त्रार्थसंग्राहकं श्लोकमादावचीकथत्।

× × × × × ×

मध्य-भाग (पूर्वपृष्ठ १३९, पंक्ति १०)

ब्रह्माद्वैतवादिनस्तु—सत्तारूपं ब्रह्मैव सर्वसाक्षात्कारि सर्वावच्छिन्नचैतन्याभिन्नत्वात्। चैत्रस्य घटादिसाक्षात्कारित्वं हि घटावच्छिन्नचैतन्याभेद एव घटसाक्षात्कारकाले इन्द्रियद्वारा [illegible]र्घटादिविषयदेशगमनेन घटावच्छिन्नचैतन्यस्य रूपांतःकरणावच्छिन्नचैतन्येना-

अन्तिम-भाग —(पूर्वपृष्ठ २४८, पंक्ति ७)

इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दा इन्दनशकनपूर्दारणादिपर्यायभेदेन भिन्नार्थबोधका इति ज्ञानं समभिरूढनयः। तादृशज्ञाने पर्यायभेदप्रयोज्यो योऽर्थभेदः इन्दनादिरूपपर्यायभेदप्रयोज्य इन्द्रशक्रादिपदार्थभेदः तद्बोधकत्वनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वसत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। समभिरूढनयाभासस्तु इन्द्रशक्रपुरन्दरादिशब्दाः अभिन्नार्थबोधका इति ज्ञानादिरिति। एवम्भूतनयस्तु शक्रादिशब्दः शकनक्रियापरिणतिकाल एव शक्रबोधको न पूजादिकालेऽपीति ज्ञानं तल्लक्षणन्तु तत्तत्पर्यायसमानकालीनार्थबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वं शकनकाल एव शक्रबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वम्। शकनकाल एव शक्रबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वप्रकारकत्वस्य सत्त्वाल्लक्षणसङ्गतिः। सर्वदा शक्रपदं शक्ररूपार्थबोधकमिति ज्ञानमित्यभूतनयाभासमित्यत्र विस्तरः।

× × ×

---

(२१) ग्रन्थ नं० २२६/ख

प्रमेयरत्नमालालंकार

कर्ता—पण्डिताचार्य चारुकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इञ्च   चौड़ाई ६॥। इञ्च   पत्रसंख्या १७६

प्रारम्भिक-भाग—

भक्त्युद्रेकनमत्सुराधिपलसत्कोटीरकोटील्लसन्-
माणिक्याम्बुजबान्धवांशुनिकरस्मेरांघ्रिपंकेरुहम्।
तत्ताद्दगुणभृन्मुमान्तिकवसद्योगीन्द्रचित्ताम्बुज
व्यूहानन्ददिवाकरं हृदि सदा श्रीवर्धमानं भजे ॥१॥

तद्व्याख्यानमभूत्प्रमेन्दुवचनोदारार्थसंशीलनात्
किञ्च श्रीगुमटेश्वरस्य कृपया विन्ध्याद्रिचूडामणेः ॥
श्रीमद्वेल्गुल्मस्यभासुरमहाविन्ध्याद्रिचिन्तामणिः
श्रीमद्बाहुबली करोतु कुशलं भव्यात्मनां सन्ततम् ।
यत्पादाम्बुरुहं सुरेन्द्रमुकुटीमाणिक्यनीराजितम्
कल्पद्रुमकरायते शुभदृशां पूजां सदा तन्वताम् ॥

बहुत कुछ संभव है कि गीतवीतराग, पार्श्वाभ्युदय की टीका, चन्द्रप्रभकाव्य की टीका, आदिपुराण, यशोधरचरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका* इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्त्ति ही उल्लिखित अर्थप्रकाशिका एवं प्रमेयरत्नमालालङ्कार के प्रणेता हों। चारुकीर्त्ति यह श्रवणबेल्गोल के पट्टाधीशों का परम्परागत नाम है। वहाँ के आधुनिक मठाधीश भी चारुकीर्त्ति के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसीलिये विशेष प्रमाण के अभाव में स्पष्टतया लिखना बड़ा दुरूह है कि अमुक चारुकीर्त्ति ही अमुक ग्रन्थ के रचयिता हैं। फिर भी इन ग्रन्थों के वाक्य-विन्यास की ओर ध्यान देने पर उल्लिखित मेरा अनुमान निराधार नहीं कहा जा सकता। साधनाभाव से इस समय इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। मालूम होता है कि ये दोनों ग्रन्थ "प्रमेयरत्नमाला" के अन्तर्गत जटिल गुत्थियों को सुलझाने के लिये ही प्रणीत हुए हैं। "प्रमेयरत्नमाला" दिगम्बर जैनदर्शन का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अपनी विशेषताओं के कारण कई प्रसिद्ध परीक्षा-संस्थाओं की पाठ्य-पुस्तकों में भी यह सन्निविष्ट है। क्या ही अच्छा होता परीक्षामुख-सूत्र पर जितनी ये छोटी-मोटी टीकायें उपलब्ध होती हैं ये एकीकरण-रूप में प्रकाशित होतीं। तुलनात्मकदृष्टि से अध्ययन करनेवालों को इससे विशेष लाभ होता। साथ ही साथ प्रमेयरत्नमाला जो एक गम्भीर ग्रन्थ है इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता। विद्यालय के अध्यापकों को भी पढ़ाते समय इन सभी टीकाओं का उपयोग करना चाहिये। इससे ग्रन्थगत विशेषता अध्ययनावस्था में ही तुलनात्मक अध्ययन का विचार रखनेवाले विद्यार्थियों को ज्ञात हो जाती। बल्कि श्रीयुत एस० सी० घोषाल, एम० ए० बी० एल० का जैनगजट में "Pareekshámukham" नाम से जो इस सूत्र का धारावाहिक रूप से अंग्रेजी अनुवाद निकल रहा है उसमें उन्होंने "भवन" की "अर्थप्रकाशिका" एवं "न्यायमणिदीपिका" का जहाँ तहाँ उपयोग किया है। कारणवश उन दिनों में आपके पास "प्रमेयरत्नमालालङ्कार" नहीं भेज सका। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्त्ति जी एक बहुदर्शी एवं संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे।

* देखें—"दिगम्बर जैन ग्रंथकर्त्ता और उनके ग्रंथ।"

भेदोत्पत्ते एकदेशस्योपाध्यो भेदकत्वायोगात् गृहावच्छिन्नाकाशे घटावच्छिन्नाकाश घटावच्छिन्नाकाशभेदवत्। मायावच्छिन्नचैतन्ये घटावच्छिन्नचैतन्याभिन्नरूपं सत्वसाक्षात्कारित्वं च घटस्सन् पटस्सन् इत्यादि प्रत्यक्षेण गृह्यते। घटस्सन्निति प्रतीतौ घटसतो स्तादात्म्यभानात्। तादात्म्यस्य च भिन्नत्वे सत्यभिन्नसत्ताकत्वरूपत्वेन घटावच्छिन्न सत्तारूपचैतन्याभेदस्य प्रत्यक्षरूपे सति भानात्। न च घटादिरूपभेदस्य प्रत्यक्षगम्यत्वे आगम स्याद्वैतबोधकस्य न सम्भवति प्रत्यक्षविरुद्धार्थे आगमस्य प्रामाण्यायोगादिति वाच्यम्। प्रत्यक्षं हि सविकल्पकं निर्विकल्पकं चेति द्विविधम्। तत्र चक्षुरुन्मीलनानन्तरं सत्तामात्र विषयकं निर्विकल्पकं जायते तदेव प्रमाणभूतं प्रत्यक्षम्। तत्र भेदो न भासते। अप्रमाण भूतसविकल्पकप्रत्यक्षे च भेदो भासत इति न तेनागमस्य बाधः। तदुक्तं "अस्ति ह्यालोचनाज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्। बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम्॥ आहुर्विधातृ प्रत्यक्षं न निषेद्धृ विपश्चितः। नैकत्वे आगमस्तेन प्रत्यक्षेण प्रबाध्यते॥" प्रत्यक्षं विधातृ विधायकं सन्मात्रग्राहकमेवाहुः। न निषेद्धृ न निषेधकं न बाधग्राहकम्। तेन कारणेन एकत्वे प्रतिपादकतासम्बन्धेन विद्यमानः आगमो न प्रत्यक्षेण बाध्यत इति श्लोकार्थः। तथा च प्रत्यक्षस्यापि सन्मात्रग्राहित्वेन तद्विरोधाभावात्। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुत्याऽद्वैतं ब्रह्म सिध्यति। ब्रह्मणोऽद्वैतत्वं च सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यत्वम्। तदुक्तम्—"वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्रपुष्पफलादितः। वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयश्शिलादितः। एवं भेदत्रयं प्राप्तं शून्या ब्रह्मणि बाध्यते। एकावधारणद्वैतप्रतिषेधैस्त्रिभिः क्रमात्" इति।

× × × ×

अन्तिम भाग (पूर्व पृष्ठ २७५, पंक्ति ५)—

मात्स्यस्संविद इति—अत्रापि हेयोपादेयतत्त्वयोरित्यनुवर्त्यते। मात्स्यमन्दप्रज्ञस्य हेयोपादेयतत्त्वज्ञानार्थं शास्त्रकरणमित्यर्थः। अल्पप्रज्ञस्य कथं महाशास्त्रकरणं तत्करणे वा कथं अल्पप्रज्ञत्वं परस्परविरोधादिति चेन्न पूर्वाचार्यापेक्षया अल्पप्रज्ञत्वस्य विवक्षितत्वात्। आत्मनः औद्धत्यपरिहाराय प्रयुक्तत्वा तथोक्तिसम्भवाच्च। यद्वा 'मादृशोबाल' इत्यत्र अबाल इति पदच्छेदः। एवञ्च शास्त्रकरणात् अनल्पप्रज्ञोऽहं शास्त्रार्थग्रहणात् अनल्पप्रज्ञस्य शिष्यस्य हेयोपादेयज्ञानार्थमिदं शास्त्रं कृतवानस्मीत्यर्थः।

इति श्रीमद्दिग्गणाग्रगण्यस्य श्रीमच्चेल्लुकुलपुरनिवासरसिकस्य चारुकीर्तिपण्डिताचार्यस्य कृतौ परीक्षामुखसूत्रव्याख्यायां प्रमेयरत्नमालालङ्कारसमाख्यायां षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः।

मिथ्यावादतमःप्रभाकरनिभसद्धर्मनन्दिप्रभो
यस्यास्य विमलं विपश्चितमहाद्युतिरत्नमौलिगुरुम्।

अन्तिम भाग—

श्रीशान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां पञ्चमः स्तवकः समाप्तः ।

प्रमेयकण्ठिका जीयात्प्रसिद्धानेकसद्गुणा ।
लसन्मार्त्तण्डसाम्राज्ययौवराज्यस्य कण्ठिका ॥
सनिष्कलङ्कं जनयन्तु तर्के वा बाधितर्को मम तर्करत्ने ।
केनानिशं ग्रहकृतः कलङ्कश्चन्द्रस्य किं भूषणकारणं न ॥

इस प्रमेयकण्ठिका के प्रणयन-द्वारा श्रीशांतिवर्णी जी ने माणिक्यनन्दिकृत परीक्षामुख-सूत्र के आधार पर अन्यान्य सांख्य, सौगत, भाट्ट एवं प्रभाकरादि दार्शनिकों के प्रमाणलक्षण आदि सदोष सिद्ध किये हैं। गुरुपरम्परा एवं गण-गच्छादि की चर्चा इस ग्रन्थ में नहीं होने के कारण शांतिवर्णी जी के विषय में अभी कुछ कहना असम्भव है। इसमें पाँच स्तवक हैं। प्रत्येक में अपने दार्शनिक सिद्धांत का मण्डन तथा अन्य मत का खण्डन है। रचना-शैली परिष्कृत है।

---

(२३) ग्रन्थ नं० २३१/ख

शृंगारार्णवचन्द्रिका

कर्त्ता—विजयवर्णी

विषय—अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८॥ इञ्च चौड़ाई—७ इञ्च पत्रसंख्या १०९

प्रारम्भिक भाग—

जयति संसिद्धकाव्यालापपद्माकरेयम् (?)
बहुगुणयुतजीवन्मुक्तिपंस············ ।
···स्वाणीसारनिकाणस्यो—
जिनपतिकलहंसश्चारुसंनीति (?) वक्ष्ये ॥१॥

(२२) ग्रन्थ नं० १३०/ख

प्रमेयकण्ठिका

कर्त्ता—शान्तिवर्णी

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८।। इन्च   चौड़ाई—७ इन्च   पत्रसंख्या १८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीवर्धमानमानम्य विश्वं विश्वार्थदं हरम्।
परं सामुखसूत्रस्यार्थमयार्थं विवृणुमहे ॥१॥

अथ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणम् आचार्येण माणिक्यनन्दि-भट्टारकेणाभिहितम्। ननु स्वापूर्वार्थनिश्चयात्मकं यानि विशेषणान्युक्तानि तानि निरर्थकानीति चेन्न परमतनिराकरणेन तेषां सार्थकत्वात्। तथा हि किं तद् व्यवसायात्मकं तदर्थं "ज्ञानं प्रमाणम्" इत्युक्तेऽपि निर्विकल्पकस्यापि प्रामाण्यं स्यादिन्द्रियादीनामपि सन्निकर्षादीनां तत्तन्निराकरणेन व्यवसायविशेषणस्य सार्थकत्वम्। एवमितरेषां विशेषणानां सार्थकत्वं योजनीयम्।

× × × ×

मध्यभाग (पत्र पृष्ठ १६, पंक्ति ६)—

अविसंवादिज्ञानं सौगतीयं प्रमाणं तदपि न परमतनिराकरणप्रसंगात्। तथा हि अविसंवादित्वं ज्ञाने स्वरूपकाले ज्ञानान्तरेणाबाध्यत्वं तस्य कदाचिद्भ्रमेऽपि सम्भवात्तत्रापि प्रामाण्यप्रसंगात्। किञ्चाविसंवादित्वाभावः विसंवादित्वं बाध्यत्वम्। तच्च सतो न सम्भवति स्थितिप्रसंगस्यान्यथा नष्टीकारात्। नाप्यसतो सम्भवात्। तथा चाप्रसिद्धस्य विसंवादित्वस्याभावः कथं निरूपणायामतिप्रसंगात्। ततो विसंवादिविज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणमविचारितरमणीयमेव।

इति शान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां द्वितीयः स्तबकः।

अन्तिम भाग—

श्रीशान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां पञ्चमः स्तवकः समाप्तः ।

प्रमेयकण्ठिका जीयात्प्रसिद्धानेकसद्गुणा ।
लसन्मार्त्तण्डसाम्राज्ययौवराज्यस्य कण्ठिका ॥
सनिष्कलङ्कं जनयन्तु तर्कं वा बाधितर्कौ मम तर्करत्ने ।
केनानिशं ग्रहग्रहतः कलङ्कश्चन्द्रस्य किं भूषणकारणं न ॥

इस प्रमेयकण्ठिका के प्रणयन-द्वारा श्रीशांतिवर्णी जी ने माणिक्यनन्दिकृत परीक्षामुख-सूत्र के आधार पर अन्यान्य सांख्य, सौगत, भाट्ट एवं प्रभाकरादि दार्शनिकों के प्रमाणलक्षण आदि सदोष सिद्ध किये हैं। गुरुपरम्परा एवं गण-गच्छादि की चर्चा इस ग्रन्थ में नहीं होने के कारण शांतिवर्णी जी के विषय में अभी कुछ कहना असम्भव है। इसमें पाँच स्तवक हैं। प्रत्येक में अपने दार्शनिक सिद्धांत का मण्डन तथा अन्य मत का खण्डन है। रचना-शैली परिष्कृत है।

---

(२३) ग्रन्थ नं० २३१/ख

श्रृंगारार्णवचन्द्रिका

कर्त्ता—विजयवर्णी

विषय—अलङ्कार
भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८॥ इञ्च   चौड़ाई—७ इञ्च   पत्रसंख्या १०९

प्रारम्भिक भाग—

जयति संसिद्धकाव्यालापपंआकर्त्र्यम् (?)
बहुगुणयुतजीवन्मुक्तिपंस············ ।
···स्वाणीसारगिकाणारम्भो—
जिनपतिकलहंसश्चाहसंनीति (?) वक्ष्ये ॥१॥

अमन्दानन्दसन्दोहपीयूषरससारयिनीम् ।
स्तवीमि शारदां दिव्यां सज्ज्ञानफलशालिनीम् ॥२॥
समन्तभद्रादिमहाकवीश्वरे कृतप्रबन्धोज्ज्वलसत्सरोवरे ।
लसद्रसालंकृतिनीरपकजे सरस्वती क्रीडति भावबन्धुरे ॥३॥
श्रीमद्विजयकीर्त्यन्दोस्सूक्तिसन्दोहकौमुदी ।
मदीय चात्मसन्ताप हत्वानन्द क्रिया स्वयम् ॥४॥
श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम् ।
मदीयचित्तकासारं श्रययात्सशुद्धधीजले ॥५॥
मलयानिलसकाशो गुणसौरभवर्द्धक ।
सन्तापहज्जनानन्द सुजनो जायताचिरम् ॥६॥
गुणदमादिकर्णाटकथानां सूक्तिसञ्चय ।
धार्मिकास सदयान् रसिकानन्ददायिनम् ॥७॥
राजनीतिमहाशास्त्रनिरूपितफलप्रदाम् ।
नानामडाककामारनदानमयिभूषिताम् ॥ ॥
सं दे पुरसंकाशनानानगरभासुराम् ।
जिनराजमहाधर्मधारकोत्तमराजिताम् ॥९॥
श्रावकमहाश्रेणीभूषितां श्रीमतातराम (?) ।
पश्चिमाणवपर्यन्ता क्ष्मा भवसुखप्रदाम् ॥१०॥
श्रीमन्नरेन्द्रराजेन्द्रनामवज्रधरोपम् ।
श्रीदेवनरसिंहाख्यपगभूमीश्वरो महान् ॥११॥
पालयत्यमलां घणवाडीपुरसमन्विताम् ।
कादम्बयशसाजितानेकभूमीशपालिताम् ॥१२॥
तस्यानुजो गुणा दा पाण्ड्यनरेश्वर ।
सत्येन रामचन्द्रोऽभूद्धर्मेण भरतेश्वर ॥१३॥
रत्नत्रयमहाधर्मरत्नको राजशेखर ।
महाकविजनस्तूयन् (?) मानसत्कीर्तिनायक ॥१४॥
सोऽपि श्रीपाण्ड्यवंशोऽयं जिनपादाब्जषट्पद ।
अनुत्तमगतीं भूमिं पूर्वकीं रक्षतिस्म वै ॥१५॥
तस्य श्रीपाण्ड्यभूपस्य भागिनेयगुणार्णव ।
जिनाम्बा महादेवी पुत्रो राजेन्द्रपूजित ॥१६॥

श्रीकामरायवंगोऽभून्नाम्ना नृपतिकुञ्जरः ।
वैरिसन्दोहगन्धेभघटाकण्ठीरवोपमः ॥१७॥
क्रमागतामिमां भूमिं पश्चिमाम्भोधिभूषिताम् ।
श्रीकामिरायवंगेन्द्रः पालयत्यमलश्रियम् ॥१८॥
सराजकां···गोष्ठीषु सभाजनविभूषितः ।
अपृच्छद्वितीयं (?) नाम्ना कविताशक्तिभासुरम् ॥१९॥
काव्यस्य लक्षणं किस्वा वर्णशुद्धिश्च कीदृशी ।
रसभावौ कथम्भूतौ ते नृभेदाश्च कीदृशाः ॥२०॥
कीदृश्यलंकृती रीतिः कीदृग्वृत्तिश्च कीदृशी ।
कीदृग्दोषो गुणो कीदृक् पृच्छतिस्मेति मां नृपः ॥२१॥
इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः ।
क्रियते सूरिणा(?) नाम्ना शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ॥२२॥

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ ३६, पंक्ति २)

सुकुमारत्वमौदार्यं श्लेषः कान्तिः प्रसन्नता ।
समाधिरोजोमाधुर्यमर्थव्यक्तिस्तु साम्यकम् ॥४॥
एते दशगुणाः प्रोक्ता दश प्राणाश्च भाषिताः ।
यथासंख्यं मया तेषां लक्षणं प्रतिपाद्यते ॥५॥
श्रुतिचेतोद्वयानन्दकारिणां कोमलात्मनाम् ।
वर्णानां रचना-न्यासः सौकुमार्यं निरूप्यते ॥६॥
श्रीरायवंगक्षितिनायकस्य कीर्त्तिर्विशाला वरचन्द्रिकेव ।
न चेत्त्रिलोकीजनचित्तजातं सन्ताप-जालं क्व निराकरोति ॥७॥
अर्थचारुत्वगमकं पदान्तरविराजितम् ।
पदानां यदुपादानं तदौदार्यं मतं यथा ॥८॥
शब्दानामभिप्रेयानां गुणोत्कर्षो यथाथवा । -
तदौदार्यं मतं लोके तदुदाहरणं यथा ॥९॥
कादम्बनाथस्य मदान्धशुण्डोणीधरोत्तुंगमहागजेन्द्रः ।
दिग्दन्तिनैरावतनामकेन स्पर्धां विधत्ते जगदद्भुतोऽसौ ॥१०॥
परस्परं प्रयुक्तानि स्यूतानीव पदानि वै ।
निबिडानि प्रवर्त्तन्ते यत्र स श्लेष उच्यते ॥११॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

× × × ×

अन्तिम भाग :—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्रिकानिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्तिमुनीन्द्रचरणाब्जचञ्चरीकविजयवर्णिविरचिते श्रीवीरनरसिंहकामिराजबङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे दोषगुणनिर्णयो नाम दशमः परिच्छेदः समाप्तः।

सुप्रसिद्ध प्राचीन अलङ्कारग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' की तरह इस में भी भिन्न भिन्न दस के निम्नलिखित दस परिच्छेद हैं पर है यह स्वतन्त्र पद्य रूप अलङ्कार-ग्रन्थ —

(१) वर्ण गण-फल-निर्णय (२) काव्यगत शब्दार्थ-निर्णय (३) रस-भाव-निर्णय (४) नायक-भेद-निर्णय (५) दश-गुण-विचार (६) रीति-विचार (७) वृत्ति-निर्णय (८) शय्या-भाग-निर्णय (९) अलङ्कार-निर्णय (१०) दोष-गुण-निर्णय।

मङ्गलाचरण के पाँचवें श्लोक से ज्ञात होता है कि इस 'शृङ्गारार्णवचन्द्रिका' के प्रणेता विजयवर्णी विजयकीर्ति के शिष्य थे। किन्तु इन विजयकीर्ति के सम्बन्ध में साधनाभाव

के कारण इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। दक्षिण कन्नड जिला में शासन करनेवाले जैनराज-वंशों में वंगवंश तुळु राज्य में सर्वमान्य सम्मान प्राप्त किये हुआ था। यह सम्मान आज भी इस वंश को पूर्ववत् प्राप्त है। शालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) के पहले का इस वंश का कोई विश्वस्त परिचय नहीं मिलता। वंगवंश के मूल चरित्र के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विद्वानों में मतभेद है। इसीलिये शालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) से इस वंश का प्रामाणिक चरित्र वीरनरसिंह वंगराज से प्रारंभ होता है। बल्कि इस चरित्र में किसी को कोई आपत्ति भी नहीं है। मैसूर में जो गंगवंश चिरकाल तक शासन कर चुका है वही यह वंगवंश माना जाता है। वास्तव में 'गंग' और 'वंग' इन नामों में अक्षर-साम्य स्पष्टतया प्रतीत होना ही इसके एकीकरण का समर्थन करता है।

इनके वंशज पहले मैसूर प्रांतान्तर्गत गंगवाडि नामक स्थान में दीर्घकालतक राज्यशासन करते रहे। पीछे होय्सळ राजा विष्णुवर्द्धन के द्वारा युद्ध में इन वीरनरसिंह के पूज्यपिता चन्द्रशेखर के मारे जाने पर वहाँ का राज्यशासन-सूत्र विष्णुवर्द्धन के हस्तगत हुआ। इनके बाद स्वर्गीय चन्द्रशेखर के शुभ-चिन्तक मन्त्री पुरोहित आदि इनके पुत्र वीरनरसिंह को लेकर कुछ कालतक मलेनाडु में छिप-छुक कर जीवन बिताते रहे। पश्चात् विष्णुवर्द्धन के लोकान्तरित होने पर ये निर्भीक होकर पश्चिम-घाटी से उतर कर वंगवाडि (दक्षिण कन्नड ज़िला) में आकर रहने लगे। ज्ञात होता है कि 'गंग' 'वंग' के नामानुकूल ही क्रमशः इनकी राजधानी का नाम गंगवाडि एवं वंगवाडि रक्खा गया था। वास्तव में याद की यह वंगवाडि उनकी पूर्वराजधानी गंगवाडि की याद दिला रही है।

अस्तु, एक समय विष्णुवर्द्धन के पुत्र त्रिभुवनमल्ल अपनी प्रजाओं की देख-रेख करने के निमित्त जब दक्षिण कन्नड ज़िला में आये तब वह वंगवाडि भी गये। इस सुअवसर को पाकर मन्त्री पुरोहित आदियों ने राजकुमार को उक्त त्रिभुवनमल्ल के समक्ष उपस्थित कर दिया। इन्होंने इस राजकुमार को होनहार देख एवं प्रसन्न हो इन्हें उस प्रांत का शासक बनाकर अपने ही नामानुसार इनका नाम भी वीरनरसिंह रक्खा। इनका भी पूरा नाम त्रिभुवनमल्ल वीरनरसिंह ही था। यह बात वंगचरित्र आदि पुस्तकों में विस्तृतरूप से प्रतिपादित है।

शालिवाहन शक ११३० (ई० सन् १२०८) में इन वीरनरसिंह का पुत्र चन्द्रशेखर वंग सिंहासनारूढ हुए। इनके बाद शालिवाहन शक ११४७ (ई० सन् १२२४) में इनके छोटे भाई पाण्ड्यप्प वंग शासक हुए। इनके बाद शालिवाहन शक ११६२ (ई० सन् १२३९) में इनकी बहन विट्ठलादेवी राज्यशासन की सञ्चालिका नियत हुई। तत्पश्चात् शालिवाहन

यस्योत्तुङ्गसिताब्जकीर्तितिमिरं दृष्ट्वा नग मोदने
सीतापिर्दिगिभो(?) महायशन्मिया व्योमापगा यत्पुरा ।
नानाकारविचित्रमाधवमहामेरावगं त्रोद्गमन्-
र्वल्गनाचलसूरिमिरमिति वा मन्ता(?)नगजाभिनाम् ॥१२॥

× × × ×

अन्तिम भाग।—

निर्दोषे सगुणे काव्ये सालङ्कारे रसान्विते ।
राजवङ्गमहीनाथ तव कीर्ति प्रवर्ततम् ॥११४॥
स्याद्वादधर्मपरमामृतरसतिक्त सर्वोपकारिजिननाथपदाब्जभृङ्ग ।
कादम्बवंशजलराशिसुधानिधान श्रीरायवंगनृपतेर्जगतीह जीयात् ॥११५॥
गर्जल्लक्षितलक्षदन्तमथनाद्धुताडम्बर
मन्त्रोद्गीर्णविषोरमीरमहामन्दोहकर्मोन्नति ।
श्रीचक्रायुधपूजनाभिविदितस्यालानस्तम्भसत्सु-
दुर्गोद्धाम्बुदृशिद्गुणमसल्लनं यशस्कोकूट ॥११६॥
कर्णोत्सवे विमल सदा वरगुणा वाणी जयश्रीपरा
लक्ष्मी मयहिता पुन भुजभुजे दान विधान महत् ।
ज्ञानं ध्यानमिदं परात्मगुणस्तुङ्गो भव कोमलः
रूप कान्ततर जयतमिद(?) भो श्रीरायभूमीश्वर ॥११७॥

इति परमजिनेन्द्रवदनचन्द्रविनिर्गतस्याद्वादचन्द्रिकाचकोरविजयकीर्तिमुनीन्द्रचरणाब्ज-चञ्चरीकविजयवर्णिविरचिते श्रीवीरनरसिंहकामिरायवङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशक शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे दोषगुणनिर्णयो नाम दशम परिच्छेद समाप्त ।

सुप्रसिद्ध प्राचीन अलङ्कारग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' की तरह इस में भी भिन्न भिन्न नाम के निम्नलिखित दश परिच्छेद हैं पर है यह स्वतन्त्र एवं सरल अलङ्कार-ग्रन्थ —

(१) वर्ण-गण-फल-निर्णय (२) काव्यगत शब्दार्थ-निर्णय (३) रस-भाव-निर्णय (४) नायक-भेद-निर्णय (५) दश-गुण-निर्णय (६) रीति-निर्णय (७) वृत्ति निर्णय (८) शय्या-भाग-निर्णय (९) अलङ्कार-निर्णय (१०) दोष-गुण-निर्णय ।

मङ्गलाचरण के पाँचवें श्लोक से ज्ञात होता है कि इस 'शृङ्गारार्णवचन्द्रिका' के प्रणेता विजयवर्णी विजयकीर्ति के शिष्य थे। किन्तु इन विजयकीर्ति के सम्बन्ध में साधनाभाव

संस्कारो हि यथाशौ शौचसंस्कारभिन्नकः ।
त्रिविधास्वपि वर्णेषु संस्कारोऽस्य समन्वितः ॥२॥
अनेन शुद्धा भूमिः स्यात् नहि तत्र प्रयुज्यते ।
शुद्धस्तु निर्मलात्मा मन्त्रमूलस्तदुच्यते ॥३॥
शुद्धत्वं निर्मलत्वाच्च ततो हि परमं तपः ।
ततो शुद्धिनिमित्तः स्यात् सौ हि परमं शुभम् ॥४॥
शुद्धं शास्त्रेषु सर्वेऽपि शौचं शुद्धं न जातुचित् ।
तस्मात्सुर्वैदिनो शौचः संस्कारस्याभिसम्मतः ॥५॥
शौचमाचारमार्गेऽपि संस्कार इति भाषितः ।
अस्मान्नैव यदि स्युश्चित्तैः कृत्याविकाम ॥६॥
फलतः शुद्धिस्तु शौचानां भवेत्कालादिसंस्थिता ।
यथा शुद्ध्यादि संस्कारं याथातथ्येन रक्षते ॥७॥
शौचस्याद्यजातिस्तु क्रियमाणापि दृश्यते ।
शुभ्रमिति स्नातो यादृशात्मा तु रक्ष्यते ॥८॥
देहाचारविशुद्धिश्च स्नानमाचमनादिकम् ।
सूतकात् पशुद्धिश्च शौचमित्यत्र भाषितम् ॥९॥
आचारो बहुधा प्रोक्तो गर्भाधानादिभेदतः ।
पश्यन्तेऽस्माद्विद्वान्तु शौचस्य विधिरुच्यते ॥१०॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २२, पंक्ति ४)—

अथ नत्वा जिनाधीशमनघं विश्ववेदिनम् ।
ब्राह्मणादित्रिवर्णानामघभेदोऽभिधीयते ॥
इज्यादि कर्म यत्ते नास्मिन्निति निरुच्यते ।
अघमाशौचशब्देनाप्येतदेवाभिलप्यते ॥
चतुर्विधं भवेदेतदार्तवादिविभेदतः ।
आर्तवं सौतिकं शावं तत्संसर्गजमित्यपि ॥
आर्तवं पुष्परजसि ऋतुश्चेत्यभिधीयते ।
प्रकृतं विकृतं चेति स्त्रीणां तद् द्विविधं भवेत् ॥
मासे मासे समुद्भूतं प्रायः प्रकृतमुच्यते ।
द्रव्ययोगादिभिर्जातमकाले विकृतं रजः ।

शक ११६६ (ई० सन् १२६४) में इनका पुत्र प्रथम कामरायबंग राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्हीं की प्रेरणा एवं प्रार्थना से श्रीमान् कविवर विजयवर्णी जी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। उल्लिखित ये ऐतिहासिक बातें इनकी प्रतिपादित राजपरम्परा-वर्णन से भी अक्षरशः मिलती हैं। इस अलंकार-ग्रन्थ में गुण, रीति, दोष एवं अलङ्कारादि के लक्षणों के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सभी अपने प्रेरक कामराय बंग के प्रशंसा-परक पद्यमय हैं। कवि के "श्रीवीर-नरसिंह-कामरायबंगनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णव चन्द्रिकानाम्नि अलङ्कारसंग्रहे" इस अन्तिम वाक्य से भी उक्त राजा का प्रशंसा-परक काव्य लिखना ही सिद्ध होता है। कवि वर्णी जी प्रारंभिक सातवें पद्य में सुप्रसिद्ध कन्नड कवि गुणवर्मा का भी स्मरण करना नहीं भूले हैं। इसी के प्रारंभिक अन्य कई पद्यों से बंगवाडि की प्राचीन समृद्धि स्पष्ट झलकती है। बारहवें पद्य से कदम्बराजवंश भी इस प्रांत का शासक रह चुका है—यह बात पुष्ट होती है। ग्यारहवें से १७वें तक के पद्यों में वीरसिंह पांड्यवंश एवं कामराय की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है। वर्णी जी ने इस ग्रन्थ के कई पद्यों में छन्दोभंग न हो इस लिहाज से 'श्रीराय' 'रायचन्द्र' आदि संक्षिप्त संकेतों के द्वारा ही अपने आश्रयभूत कामराय का उल्लेख किया है। १९५ के पद्यगत "कादम्बवंश-जलराशिसुधामयूख" इस कथन से तो यह बंगवंश 'नाग' वंश न होकर 'कदम्ब' सा ज्ञात होता है—यह बात अवश्य विचारणीय है।

---

(२४) ग्रन्थ नं० २३५/ज

त्रैवर्णिकाचार

कर्ता—श्रीब्रह्मसूरि

विषय—श्रावकाचार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १७ इञ्च   चौड़ाई [illegible] इञ्च   पत्रसंख्या ४६

प्रारंभिक भाग—

अथोच्यते त्रिवर्णानां शौचाचारविधिक्रमः ।
शौचाचारविधिप्राप्तौ देहं संस्कर्तुमर्हसि ॥१॥

मधुगिरि तालुक में अङ्गडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम शशकपुर रहा। यहाँ पर सळ नाम के सामन्त ने व्याघ्र से एक जैन मुनि की रक्षा करने के कारण पोयिसळ (होयिसळ) नाम प्राप्त किया। विद्वानों का कहना है कि प्रारंभ में यह वंश पहाड़ी था, पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी वल्लाळ ने अपनी राजधानी शशकपुर से वेलूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हळेवीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय में होयिसळ नरेशों का प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य भी सब उनके अधीन हो गया था और उन्होंने कई प्रदेशों को विजय-द्वारा हस्तगत कर लिया था। प्रारंभ में विष्णुवर्द्धन जैन रहा, किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। पर फिर भी इनको तथा इनके परिवार-वर्ग को जैनधर्म से सदा सच्ची सहानुभूति रही। होयिसळ राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था, बाद नरसिंह के पुत्र वीरवल्लाळ के समय में यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। यह वंश सदा से जैनियों का प्रधान पृष्ठ-पोषक रहा।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्त्ता ब्रह्मसूरि जी ने 'छत्र-त्रयपुरी' लिखा है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वंश की राजधानी सिर्फ तीन स्थानों में ही सिद्ध होती है; जिनके नाम क्रमशः (१) शशकपुर (२) वेलूरु (३) और द्वारसमुद्र या हळेवीडु हैं। पता नहीं कि सूरि जी द्वारा निर्दिष्ट छत्रत्रयपुरी कहाँ थी और कब इस राज्य के अन्तर्भुक्त हुई। संभव है कि द्वारासमुद्र को ही इन्होंने छत्रत्रयपुरी लिखा हो। क्योंकि एक जमाने में यह द्वार-समुद्र जैनियों का केन्द्र सा बन गया था। बल्कि कहा जाता है कि उन दिनों यहाँ साढ़े सात सौ भव्य जिनमन्दिर थे और वैष्णव धर्म स्वीकार करने के बाद विष्णुवर्द्धन ने ही इन भव्य मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया। वहाँ के जिनमन्दिरों के ध्वंसावशेष से भी यह पता चलता है कि उल्लिखित घटना वास्तविक है। अब हळेवीडु में केवल आदिनाथ, शान्तिनाथ एवं पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के तीन ही मनोज्ञ मन्दिर रह गये हैं, जो भारतीय शिल्पकला के आदर्शभूत बने हुए हैं। कविवर हस्तिमल्ल जी के सुपुत्र निर्दिष्ट पार्श्वपण्डित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल (होन्नूरु) में जा बसे। अवशिष्ट दो भाई भी अन्यान्य स्थानों में जाकर बस गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के सुपुत्र इस त्रैवर्णिकाचार ग्रन्थ के प्रणेता पण्डित ब्रह्मसूरि जी हैं।

सूरि जी ने पूर्वोक्त प्रतिष्ठाग्रन्थगत अपनी वंश-प्रशस्ति में अपने पूर्वजों का निवास-स्थान पाण्ड्य देशान्तर्गत 'गुडिपत्तन द्वीप' बतलाया है। वर्तमान तंजोर जिलान्तर्गत 'नगुडि' का ही यह प्राचीन 'गुडिपत्तन द्वीप' होना बहुत कुछ सम्भव है। मालूम होता है कि

प्राप्ते श्रद्धमानौर्चं तद्गोवर्द्धनात्परम् ।
ग्रन्थपतान्यं तच्छेन्द्रभातापथमिष्यते ॥

× × ×

अन्तिम भाग —

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
इत्याश्रमास्तु चत्वारो जैनानामागमोदिताः ॥

तत्रोपनयनादारभ्य समावर्तनपर्यन्तमुपनयनब्रह्मचारी। ... कुर्वाणो गुरुकुल्या गुरुकुलमध्ये तन्निवृत्तः आलम्बनब्रह्मचारी। विवाहपूर्वकं त्रिभुवनतिलकजिनमन्दिरमादिराग्निसहितो गृहस्थः। परिग्रहानुमत्युद्दिष्टनिवृत्तो वानप्रस्थः। वैराग्यशान्तिको महामुनिर्भिक्षुः। इत्याश्रमलक्षणम्।

भारद्वाजाचार्यविशुद्ध सम्यक्पुत्रपुरुषमताभिधाम (?)
भव्य सेव्यो वर्णिभिर्गम्यमान यादवस्यतो (?) ब्रह्मसूरिशास्त्र तत् ॥

इति ब्रह्मसूरि विरचिते जिनसंहितासारोद्धारे प्रतिष्ठा (?) तिलकनाम्नि त्रैवर्णिकाचारग्रंथे (संग्रहे) गर्भाधानादिविवाहपर्यन्तकर्मणां मन्त्रप्रयोगो नाम पञ्चमं पर्व समाप्तम् ।

इस त्रैवर्णिकाचार के कर्ता ब्रह्मसूरि हैं। इसमें इन का कोई आत्मपरिचय नहीं है, किन्तु इन्हीं के प्रणीत 'प्रतिष्ठासारोद्धार' नामक प्रतिष्ठा-ग्रन्थ में जो इनका परिचय उपलब्ध होता है—वह इस प्रकार है :—

पाण्ड्य देश में गुडिपत्तन नामका एक द्वीप था। वहां का शासक पाण्ड्य नरेन्द्र था। वह बड़ा ही धर्मात्मा, शूरवीर, कला-कुशल और पण्डितसेवी रहा। वहीं वृषभ तीर्थङ्कर का एक मनोज्ञ रत्न एवं सुवर्णखचित मन्दिर था; उसमें विद्यानन्दी आदि अनेक परम विद्वान् मुनिगण निवास करते थे। इसके बाद वह आगे सुप्रसिद्ध पुराण-प्रणेता जिनसेनाचार्य की आचार्य-परम्परागत गोविन्दभट्ट को ही अपना पूर्वपुरुष बतलाकर निम्न-रीति से अपनी वंशपरम्परा का उल्लेख करते हैं —

उक्त गोविन्दभट्ट के श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्द्धमान नाम के छः लड़के थे। तत्पश्चात् कवि हस्तिमल्ल का पुत्र पण्डित पार्श्व जी थे। यह अपने पिता के समान ही यशस्वी, धर्मात्मा एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे यह पार्श्व पण्डित वशिष्ठ काश्यपादि गोत्रज अपने बन्धुबान्धवों के साथ होयिसल देश में जाकर रहने लगे। यह होयिसल राज्य पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में कडूर जिले के

मधुगिरि तालुक में अङ्गडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम शशकपुर रहा। यहाँ पर सळ नाम के सामन्त ने व्याघ्र से एक जैन मुनि की रक्षा करने के कारण पोयिसळ (होयिसळ) नाम प्राप्त किया। विद्वानों का कहना है कि प्रारंभ में यह वंश पहाड़ी था, पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी बल्लाळ ने अपनी राजधानी शशकपुर से वेलूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हळेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय में होयिसळ नरेशों का प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य भी सब उनके अधीन हो गया था और उन्होंने कई प्रदेशों को विजय-द्वारा हस्तगत कर लिया था। प्रारंभ में विष्णुवर्द्धन जैन रहा, किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। पर फिर भी इनकी तथा इनके परिवार-वर्ग की जैनधर्म से सदा सच्ची सहानुभूति रही। होयिसळ राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था, बाद नरसिंह के पुत्र वीरबल्लाळ के समय में यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। यह वंश सदा से जैनियों का प्रधान पृष्ठ-पोषक रहा।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्त्ता ब्रह्मसूरि जी ने 'छत्र-त्रयपुरी' लिखा है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वंश की राजधानी सिर्फ तीन स्थानों में ही सिद्ध होती है; जिनके नाम क्रमशः (१) शशकपुर (२) वेलूरु (३) और द्वारसमुद्र या हळेबीडु हैं। पता नहीं कि सूरि जी द्वारा निर्दिष्ट छत्रत्रयपुरी कहाँ थी और कब इस राज्य के अन्तर्भुक्त हुई। संभव है कि द्वारासमुद्र को ही इन्होंने छत्रत्रयपुरी लिखा हो। क्योंकि एक जमाने में यह द्वार-समुद्र जैनियों का केन्द्र सा बन गया था। बल्कि कहा जाता है कि उन दिनों वहाँ साढ़े सात सौ भव्य जिनमन्दिर थे और वैष्णव धर्म स्वीकार करने के बाद विष्णुवर्द्धन ने ही इन भव्य मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया। वहाँ के जिनमन्दिरों के ध्वंसावशेष से भी यह पता चलता है कि उल्लिखित घटना वास्तविक है। अब हळेबीडु में केवल आदिनाथ, शान्तिनाथ एवं पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के तीन ही मनोज्ञ मन्दिर रह गये हैं, जो भारतीय शिल्पकला के आदर्शभूत बने हुए हैं। कविवर हस्तिमल्ल जी के सुपुत्र निर्दिष्ट पार्श्वपण्डित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल (होन्नूरु) में जा बसे। अवशिष्ट दो भाई भी अन्यान्य स्थानों में जाकर बस गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के सुपुत्र इस त्रैवर्णिकाचार ग्रन्थ के प्रणेता पण्डित ब्रह्मसूरि जी हैं।

सूरि जी ने पूर्वोक्त प्रतिष्ठाग्रन्थगत अपनी वंश-प्रशस्ति में अपने पूर्वजों का निवास-स्थान पाण्ड्य देशान्तर्गत 'गुडिपत्तन द्वीप' बतलाया है। वर्तमान तंजोर जिलान्तर्गत 'दीपनगुडि' का ही यह प्राचीन 'गुडिपत्तन द्वीप' होना बहुत कुछ सम्भव है। मालूम होता है कि

लेखक की कृपा से ही 'दीपन' का 'द्वीप' लिखा गया है। क्योंकि यहाँ पर द्वीप का होना किसी तरह से सिद्ध नहीं होता। इस स्थान में जैनियों का प्रभाव अच्छा रहा है।

जैन समाज के कुछ विद्वान् इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानने के लिये सहमत नहीं है। क्योंकि उनका कहना है कि जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल श्राद्ध, तर्पण, गो-दान आदि की बातें इस में विधिरूप में पायी जाती हैं। उन विद्वानों का कहना है कि ब्रह्मसूरि जी के मूल पूर्वज हिन्दू धर्मावलम्बी थे—इसमें इनके रचे ग्रन्थ पर हिन्दुत्व की छाप पड़ गयी है। कुछ विद्वान इस आक्षेप का उत्तर यह देते हैं—प्रत्येक धर्म पर देश, काल आदि का बिना प्रभाव पड़े नहीं रह सकता, इसलिये इस अनिवार्य नियमानुसार बहुत कुछ सम्भव है कि बहुसंख्यक हिन्दू समाज में अपनी सत्ता कायम रखने और हिन्दुओं से सहानुभूति प्राप्त करने के लिये तात्कालिक कुछ जैनग्रन्थ-कर्त्ताओं को कुछ आचार ग्रन्थों में आपद्धर्म के रूप में उनका उद्देश जैनधर्मके अनुकूल बता कर स्थान देना पड़ा होगा।

---

(२५) ग्रन्थ नं० $\frac{२२०}{ख}$

रत्नमञ्जूषा

कर्त्ता— ×

विषय छन्द

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च   चौड़ाई ६।।। इञ्च   पत्रसंख्या ११

प्रारम्भिक भाग—

यो भूतभव्यभवदर्थयथार्थवेदी देवासुरेन्द्रमुकुटार्चितपादपद्मः ।
विद्यानदीप्रभवपर्वत एव तं श्रीवर्धमानजिनं प्रणमामि वीरम् ॥

मायारा—मायारा इत्यस्य सर्वगुरुत्रिकस्य आकार संज्ञा भवति मकारो च स्वरोऽन्त्यस्तदन्तस्य अथवा चेतिवचनात्। सुविमुखिया इत्याकारस्य मद्रविराड्यिकि इति ककारस्य। अथैव माया इति गुरुद्वयस्य यकार संज्ञा भवति व्यञ्जनञ्च तदन्तस्येति वचनादेवाविघ्नेनेति। पुनश्च भतेन मा इति गुर्वेकस्य मकार संज्ञा भवति। एवमेव

तदन्तस्येति वचनादेव। म इति अत्तरे एकस्मिन्नप्याद्यन्तवद्भावात्। संयोगे नपिमिति। अत्राह—नत्याकारादयस्तेषामेवात्तराणां संज्ञा यथा वृद्धिरादैजिति वृद्धिसंज्ञा तेषामेवात्तराणां इति न तद्रूपसंज्ञाकरणे प्रयोजनाभावात्तन्मात्राणाम्। यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वत्तराण्युपदिष्टानि तेषां संज्ञाकरणानि प्रयोजनमितितन्मात्राणां सर्वासां संज्ञास्ताः प्रत्यवगन्तव्याः। अथवा शालिनि मालयेदित्यत्र छेदवचनं ज्ञापकमन्येषां इति तन्मात्राणां संज्ञा इति। यदि तेषामेव संज्ञा मायाक्ता इति छेदवचनमनर्थकं भवति तस्मात्तन्मात्राकरणमेव।

× × × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ४६ पंक्ति ३०)

उपेन्द्रवज्रा गेगे—यदि गेगे इति न्यासो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम।

उपेन्द्रवज्रायुतपाण्डवेषु स्थितेष्वपि ख्यातपराक्रमेषु।
पुराभिमन्युं यदि नेज्जयेनां जयद्रथो रक्षति कस्त्वमन्यः॥

इन्द्रमाला द्वयम्—यदीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रे सहैकस्मिन् श्लोके भवतः, भवति इन्द्रमाला नाम।

अम्लानमाला सुरसुन्दरीभिः वृतेन्द्रमाला च्यवते दिवश्चेत्।
कालेन नार्या इव भुक्तमाला मर्त्या वयं किं जलबुद्बुदाभाः॥

दोधकं लुगे—यदि लुगे इति न्यासो भवति, भवति दोधकं नाम।

कालविधाविव नाटकवृत्तं दर्शयितुं भुवि सर्वजनेभ्यः।
अम्बररंगमसौ गिरिकूटात् सूर्यनटः प्रविशन्निव भाति॥

रथोद्धता तिलौ—यदि तिलाविति न्यासो भवति, भवति रथोद्धता नाम।

सर्वभावविधितत्त्वदर्शिनः सर्वसत्त्वहितधर्मदेशिनः।
अर्हतोऽहमघराशिनाशिनः संस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिनः॥

स्वागता तिले—यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम।

धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभवबीज नमस्ते।
बद्धसर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनाभजिनमान नमस्ते॥

× × × ×

अन्तिम भाग:—

एकद्व्यादिलगक्रियांकसमसंख्यानेषु कोष्ठान्तरे-
ष्वेकादीन्द्विगुणानधो विरचयेत्तांश्चोर्ध्वमेकोनकान्।
इत्यन्तावधिमेरुरेष महितः स्याद्धर्ममानाह्वयः
छन्दःस्वेकलगादिवृत्तजननस्थानं त्विह ज्ञायते॥९॥

एवं छन्द्यादिलघ्वनियातगणनामानप्रमाणाख्यै-
र्मेरुः साधयबुद्धिरत्र खटिकोत्कार्योऽथवाख्ये ।
वृत्तं न्यस्य तदादिमं द्विगुणयस्तस्याप्यधः स्थापये-
देकोनेन तदोपरि परिलिखेदेवं हि मेरुक्रिया ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा—

सैकामेकगणोऽग्रलग्नमभिमतच्छन्दोऽन्तरागारिका-
मेकां श्रीणिमुपस्थिपद्मधरतोऽन्यैर्वैकहीनाश्च ताः ।
ऊर्ध्वं द्विद्विगृहाकमेलनमघोध स्थानकेष्वालिखे-
देकच्छन्दसि खण्डमेरुममलं पुंनागचन्द्रोदितं ॥११॥

एतत्प्रोक्तक्रमेण प्रस्तारे कृते निर्वर्तितछन्दस लघुक्रियया सह ततः पूर्वस्थितसकल-छन्दसां लगक्रियाः सर्वाः समायान्तीत्यर्थः ॥

(इनके नीचे प्रस्तार के तीन कोष्ठक भी हैं)

दिगम्बर जैन-साहित्य-भाण्डार में छन्दोग्रन्थ-सम्बन्धी अजितसेन के छन्दःशास्त्र वृत्तवाद एवं छन्दःप्रकाश, आशाधर के वृत्तप्रकाश, चन्द्रकीर्ति के छन्दःकोष (प्राकृत) एवं वाग्भट के प्राकृतपिङ्गल सूत्र ये ही नाम मिलते हैं। परन्तु इन में अभीतक कोई ग्रन्थ मुद्रित नहीं हुआ है। अब रही प्रस्तुत पुस्तक 'रत्न-मञ्जूषा' की बात। पं० नाथूराम जी प्रेमी के द्वारा संगृहीत 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थनामिका में इसके कर्त्ता हेमचन्द्र कवि बतलाये गये हैं। परन्तु इस छन्दोग्रन्थ के अन्तिम भाग के अन्तिम श्लोकान्तर्गत 'पुन्नागचन्द्रोदित' इस वाक्य से तो ज्ञात होता है कि पुन्नागचन्द्र या नागचन्द्र ही इसके प्रणेता हैं। प्रेमी जी के कथनानुसार अगर इस 'रत्नमञ्जूषा' के रचयिता हेमचन्द्र कवि होते तो 'पुन्नागचन्द्रोदित' के स्थान पर बड़ी आसानी से 'श्रीहेमचन्द्रोदित' लिख देते। क्योंकि ऐसा करने से छन्दोभङ्ग का उन्हें ज़रा भी भय नहीं रह जाता था। साधनाभाव से इस समय इसके कर्त्ता के बारे में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। यदि थोड़ी देर के लिये अर्थात् प्रेमी जी ने किस आधार पर इस का कर्त्ता हेमचन्द्र कवि लिखा है—यह बात जब तक स्पष्ट नहीं होती तब तक के लिये नागचन्द्र को ही इसका प्रणेता माना जाय तो महाकवि धनञ्जय-कृत विषापहार-स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार कवि नागचन्द्र* की ओर मेरी दृष्टि कुछ कुछ आकृष्ट हो जाती है। पर यह एक अनुमान

* देखें—'प्रशस्ति संग्रह' पृष्ठ २०।

मात्र है। जब तक इस सम्बन्ध में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है तबतक इसे कोई मानने को तैयार क्योंकर हो सकता है ?

अब रहा इस छन्दोग्रन्थ का विषय। यह ग्रन्थ छोटे छोटे आठ अध्यायों में विभक्त है। इस प्रति की मैसूर राजकीय 'प्राच्यपुस्तकागार' से मैंने ही कन्नड लिपि से नागराक्षर में प्रतिलिपि कराई थी। इसके प्रथम अध्याय का कुछ अंश लुप्त सा ज्ञात होता है। इस लुप्तांश के बाद ही तीन पृष्ठों में मेरुसम्बन्धी प्रस्तार के पद्यबद्ध लक्षण सकोष्ठक दिये गये हैं। कवि ने इस ग्रन्थ में प्रायः प्रत्येक छन्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसके छन्दो-लक्षण पिंगलसूत्र के समान सूत्रमय है जो नितांत स्वतन्त्र है। छन्दों के दिये गये दृष्टांतों में यत्र-तत्र जैनत्व की छाप सुस्पष्ट प्रतिभासित होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस के कर्त्ता काव्यशास्त्र के एक उद्भट मर्मज्ञ थे। इसकी अन्यान्य प्रतियाँ जहाँ तहाँ से अन्वेषण एवं मिलान कर इस रत्नभूत 'रत्नमंजूषा' के प्रकाशन से दिगम्बर जैनसाहित्य के एक अङ्ग की पूर्त्ति हो जायगी। अन्यान्य पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं और जैन परीक्षालयों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आजतक सभी जैन परीक्षालयों के पाठ्य ग्रन्थों में जैनेतर छन्दोग्रन्थ ही समाविष्ट होते आ रहे हैं।

---

(२६) ग्रन्थ नं० २३७/ख

सरस्वतीकल्प

कर्त्ता—मलयकीर्त्ति

विषय—मंत्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥। इञ्च *चौड़ाई ६ इञ्च* *पत्रसंख्या ७*

प्रारम्भिक भाग—

बारहअंगं गिज्जा दंसणनिलया चरित्तवत्थहरा।
चउदसपुव्वाहरणा ठावे दव्वाय सुददेवी ॥
आचारशिरसं सूत्रकृतवक्त्रां (सरस्वतीं) सकण्ठिकाम्।
स्थानेन समयोद्य (स्थानांगसमयांघ्रि तां) व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥

वाग्देवतां ज्ञातृकथोपासकाध्ययनस्तनीम् ।
अन्तकृद्दशसन्नाभिमनुत्तरदशांगताम् ॥
मुनितम्बां सुजघनां प्रश्नव्याकरणाश्रिताम् ।
विपाकसूत्रदृग्वादचरणां चरणाम्बराम् ॥
सम्यक्त्वतिलकां पूर्वचतुर्दशविभूषणाम् ।
तावत्प्रकीर्णकोद्दीर्णचारुपत्राङ्कुरश्रियम् ॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ३, पंक्ति ७)—

स्याद्वादकल्पतरुमूलविराजमानां रत्नत्रयाम्बुजसरोवरराजहंसीम् ।
अङ्गप्रकीर्णकचतुर्दशपूर्वकायामाम्नायवाङ्मयवधूमहमाश्रयामि ॥

शारदाभिमुखीकरणम्—

अविरलशब्दमहौघा प्रक्षालितसकलभूतलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीं मन्त्ररूपे विबुधजननुते देवि देवेन्द्रवन्द्ये
चञ्चच्चन्द्रावदाते क्षपितकलिमले हारनीहारगौरे ।
भीमे भीमाट्टहासे भवभयहरणे भैरवि भीरु धीरे
ह्रां ह्रीं ह्रूं कारनादे मम मनसि सदा शारदे तिष्ठ देवि ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

परमहंसहिमाचलनिर्गता सकलपातकपंकविवर्जिता ।
अमितबोधपयःपरिपूरिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
परममुक्तिनिवाससमुज्ज्वलं कमलयाकृतवासमनुत्तमम् ।
वहति या वदनाम्बुरुहं सदा दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
सकलवाङ्मयमूर्तिधरा परा सकलसत्त्वहितैकपरायणा ।
………नारदतुम्बुरुसेविता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
मलयचन्दनचन्द्ररजःकणा प्रकरशुभ्रदुकूलपटावृता ।
विशदहंसकहारविभूषिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्वती ॥
मलयकीर्तिकृतामितिर्धस्तुतिं (पठति यो) सततं मतिमानरः ।
विजयकीर्तिगुरुकृतमादरात् स मनिकल्पलताफलमश्नुते ॥

इस 'सरस्वतीकल्प' के अन्तिम पद्य से इसके रचयिता मलयकीर्त्ति ज्ञात होते हैं। साथ ही साथ इसी पद्य से यह भी विदित होता है कि यह मलयकीर्त्ति प्रायः विजयकीर्त्ति-गुरु के शिष्य हैं। पर "विजयकीर्त्तिगुरुकृतमादरात्" इस चतुर्थ चरण का सम्बन्ध किसके साथ है—यह अभी ठीक नहीं समझ पड़ता। बहुत कुछ संभव है कि इस श्लोक की प्रतिलिपि करने में लेखक ने भूल की हो। इसलिये जबतक इसकी शुद्ध प्रति नहीं मिलती तबतक सन्देह-निवृत्ति होती नहीं दीख पड़ती।

अस्तु, 'एपिग्राफिका कर्नाटिका' जिल्द ८ के शिलालेख नं० १०४ में एक विजयकीर्त्ति-गुरु का उल्लेख मिलता है। मलयकीर्त्ति के द्वारा प्रतिपादित विजयकीर्त्तिगुरु यदि यही हों तो उक्त शिलालेख के ही आधार से इनका समय सन् १३५४ अर्थात् १४ वीं शताब्दी सिद्ध होता है।* अतः इस सरस्वतीकल्प के रचयिता मलयकीर्त्ति का समय भी लगभग यही होना चाहिये। अस्तु, अर्हद्दास-रचित भी एक 'सरस्वतीकल्प' सुना जाता है। वह इससे भिन्न होना चाहिये। इस कृति के आदि और अन्त में 'सरस्वतीकल्प' लिखा मिलता है। मन्त्रशास्त्र में कल्प का लक्षण यों बतलाया है—जिन ग्रन्थों में मन्त्र-विधान, यन्त्र-विधान, मन्त्र-यन्त्रोद्धार, बलिदान, दीपदान, आह्वान, पूजन, विसर्जन और साधनादि बातों का वर्णन किया गया हो वे ग्रन्थ 'कल्प' कहलाते हैं।† प्रधानतया इस प्रस्तुत कृति को एक मंत्र-स्तोत्र ही कहना चाहिये। फिर भी यन्त्रोद्धार, जाप्य एवं होममन्त्र आदि का इसमें उल्लेख पाया जाता है—इसी से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता ने कल्पनाम की सार्थकता समझी होगी। मंत्रशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये इसके निम्नलिखित कतिपय श्लोक उपयोगी हैं:—

"जाप्यकाले नमःशब्दं मन्त्रस्यान्ते नियोजयेत्।
तदन्ते होमकाले तु स्वाहा शब्दं नियोजयेत्॥
सवृन्तकं समादाय प्रसूनं ज्ञानमुद्रया।
मन्त्रमुच्चार्य सन्मन्त्री मुञ्चेदुच्छ्वासरेचनात्॥
महिषाक्षगुग्गुलेन प्रविनिर्मितचणकमात्रवटिकानां।
मधुरत्रययुक्तानां होमैर्वागीश्वरी वरदा॥
त्रिकालकुन्दासनपल्लवानां भेदं परिज्ञाय जपेत् स मन्त्री।
न चान्यथा सिध्यति तस्य मन्त्रः कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमम्॥

* देखें—'मद्रास व मैसूर प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक' पृष्ठ २११

† मन्त्रशास्त्र के विषय में विशेष बात जानने के इच्छुक विद्वान् भास्कर भाग ९, किरण ३ में प्रकाशित 'जैनमन्त्र-शास्त्र' शीर्षक लेख देखें।

द्वादशसहस्रजाप्यैर्दशांशहोमेन सिद्धिमुपयाति।
मन्त्रो गुरुप्रसादात् ज्ञातस्त्रिभुवने सारः॥
अकारोऽनन्तवीर्यात्मा रेफो विश्वावलोकदृक्।
हकारः परमो बोधो बिन्दुः स्यादुत्तमं सुखम्॥
नादो विश्वात्मकः प्रोक्तो बिन्दुः स्यादुत्तमं पदम्।
कलापीयूषमिति स्यन्दीत्याहुरेवं त्रिलोकमा॥"

इसकी रचना साधारणतया अच्छी है।

---

(२७) ग्रन्थ नं० २४१/ख

वज्रपंजराधना-विधान

कर्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६।।। इन्च | चौड़ाई ६ इन्च | पत्रसंख्या ६

प्रारंभिक भाग —

चन्द्रप्रभुधिय इ चन्द्रार्क चन्द्रकान्तसंकाशम्।
चन्द्रप्रभजिनमर्चे कुन्देन्दुस्फारकीर्तिकान्तानाम्॥
ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभ जिनदेवागच्छ—
तोयापनीतैर्घनसारनीरैः पानप्रायैः घुसृणाद्युपेतैः।
चन्द्रप्रभाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रभनाथनाथम्॥
ॐ ह्रीं चन्द्रप्रभजिनदेवाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।
सुगन्धसारैर्घनगन्धसारैः सिताभ्रभारैः सितधामगौरैः।
चन्द्रप्रभाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रभतीर्थनाथम्॥ गन्धम्
शालयतनैरक्षतमौक्तिकश्रीकदातबिम्बैश्चरुकतैः॥
चन्द्रप्रभाभास्करदिव्यदेहं महामि चन्द्रप्रभतीर्थनाथम्॥ अक्षतान्

× × × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३, पंक्ति ३)

इत्थं श्रीपद्मनन्दिप्रवचनवदि (?) मिर्यन्त्रराजप्रवृत्तौ
वृद्धार्याराधितं यो विधिवदिह सदा पूजयन्त्यादरेण।
तैर्भव्यैर्धर्मनिष्ठैरमृतपदसुखं प्राप्तुमिच्छद्भिरारात्
ध्यानं निःश्रेयसाप्तौ त्रिभुवनमहिता प्राप्यते मोक्षलक्ष्मीः ॥

× × × ×

अन्तिम भाग :—

यस्यार्थं क्रियते पूजा सुप्रीतो नित्यमस्तु ते।

ॐ ह्रीं रं रं रं रं ज्वालामालिनि ह्रां आं क्रों च्लीं ह्रीं क्लीं ब्लूं द्रां द्रीं ह्मलवर्यूं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रौं ह्रः ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल धग धग धूं धूं धूम्रांधकारिणि शीघ्रं यन्त्राधिपतये देवदत्तस्य सर्वग्रहोच्चाटनं कुरु कुरु हूं फट् नमः स्वाहा। मन्त्रपुष्पम्।

इस आराधना-विषयक हस्तलिखित पुस्तिका में सर्वप्रथम चन्द्रप्रभ प्रतिबिम्ब का अभिषेक, भूमिशुद्धि, पंच-गुरुपूजा, चत्तारि अर्घ्य का विधान बतलाया गया है। इसके बाद चन्द्रप्रभ तीर्थङ्कर की पूजा उनकी स्तुति, श्याम यक्ष, ज्वालामालिनी यक्षी की पूजा एवं पंच-परमेष्ठी की पूजा दी गई हैं। आगे वज्रपंजरयन्त्र का फल, यन्त्र या यन्त्र की अधिष्ठात्री देवी ज्वालामालिनी और अष्टमातृका की पूजा निर्दिष्ट है। फिर यन्त्रस्थ प्रत्येक पिण्डान्तर्गत बीजाक्षरोंका आह्वान, स्थापन एवं अर्घ्यादि वर्णित है। अनन्तर ब्रह्म यक्ष, पद्मावती यक्षी की पूजा तथा अन्त में मन्त्रपुष्प का मन्त्र दिया गया है। यन्त्रका फल ग्रह, रोग, महामारी, चौरादि की शान्ति बतलायी गयी है।

इस में ग्रन्थकर्ता का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। किन्तु मध्य भाग-गत श्लोक से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता श्री पद्मनन्दी हैं। मगर पता नहीं कि यह पद्मनन्दी कौन हैं। क्योंकि इस नाम के अनेक ग्रन्थकार हुए हैं। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' नामक ग्रन्थ तालिका में एक पद्मनन्दी (भट्टारक) वि० सं० १३६२ का उल्लेख मिलता है, साथ ही साथ उनकी कृतियों में 'आराधनासंग्रह' नामक एक आराधनाग्रन्थ का जिक्र भी उपलब्ध होता है। बहुत कुछ संभव है कि यही पद्मनन्दी भट्टारक इस 'वज्रपंजराराधनविधान' के रचयिता हों। मल्लिषेण और इन्द्रनन्दि के नाम से भी 'वज्रपञ्जराराधना पूजा' प्राप्त होती हैं।

(२८) ग्रन्थ नं० २४२/ख

मृत्युंजयाराधना-विधान

कर्त्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इन्च   चौड़ाई ६ इन्च   पत्रसंख्या ।

प्रारम्भिक भाग—

चन्द्रनाथस्तुतमधरमृत्युञ्जयचन्द्रमित्येतेषामभिषेकं कृत्वा भूमिशुद्धिमवतार्य ध्यानं चन्द्रप्रभपूजा ।

चन्द्रपुराम्बुधिचन्द्रं चन्द्रार्कं चन्द्रकान्तसंकाशम् ।
चन्द्रप्रभजिनमर्चे कुन्देन्दुस्फारकीर्तिकान्ताशान्तम् ॥
नानामणिप्रचयभासुरकाञ्चपीठभृङ्गारनालकलितामलदिव्यतोयैः ।
संसारतापविनिवारणहेतुभूतं श्रीचन्द्रनाथपदपद्मयुगं यजेऽहम् ॥ (जलं नि०
नाकाङ्गनाकरसरोरुहमध्यवर्तिकर्पूरकुङ्कुमविमिश्रितदिव्यगन्धैः ।
मुक्तोपमानघरगन्धरमासमेतं श्रीचन्द्रनाथपदपद्मयुगं यजेऽहम् ॥ (गन्ध नि०

× × ×

मध्य भाग (पत्र ३, पंक्ति ७)—

यस्यार्थं क्रियते पूजा सुप्रीतो नित्यमस्तु ते ।
चन्द्रोज्ज्वलां चक्रशरासिपाशां वामत्रिशूलेषु झषासिहस्तां ।
श्रीज्वालिनीं सार्धधनुश्शतोच्चजिनानतां कोणगतां यजामि ॥

■ × ×

अन्तिम भाग—

अत्यन्तभक्त्यानतदेवचन्द्रसूर्याभिवन्द्याश्च जिनेन्द्रभक्ताः ।
प्रकाशिकाद्या उग्ररोक्तसाध्याः सर्वापमृत्युं विनिवारयन्तु ॥
ॐ ह्रीं क्रों अष्टमातृकाभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामि स्वाहा ।
अणिमादिगुणैश्वर्यशालिन्येत्यष्टमातरः ।
याजकानां सुशान्त्यर्थं सुप्रसन्ना भवन्तु ताः ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पांजलिः। ॐ नमो भगवते देवाधिदेवाय सर्वोपद्रवविनाशनाय सर्वापमृत्युंजयकारणाय सर्वमन्त्रसिद्धिकराय ह्रीं ध्रीं क्रों अस्य देवदत्तस्य सर्वापमृत्युं घातय घातय आयुष्यं वर्द्धय वर्द्धय झं वं ह्रः पः हः क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः असिआउसा अर्हन्नमः स्वाहा।१०८ मन्त्रपुष्पार्चनम्।

इस 'मृत्युंजयाराधना' के प्रारंभ में चन्द्रनाथ, श्रुत, गणधर एवं मृत्युंजय यन्त्र का अभिषेकपूर्वक भूमिशुद्धि, चत्तारि अर्घ्य तथा चन्द्रप्रभ स्वामी की पूजा अङ्कित की गयी है। बाद श्यामयक्ष, ज्वालामालिनी यक्षी की पूजा दी गयी है। इसके पश्चात् मृत्युंजय यंत्र में लिखे जानेवाले बीजाक्षरोंके क्रमादि बतलाये गये हैं। साथ ही साथ इस यंत्र की पूजा विधि भी निर्दिष्ट है। सर्वान्त में अष्टमातृका की पूजा देकर यह कृति समाप्त की गयी है।

जैनसमाज में एक ऐसा भी पक्ष है जो आराधना ग्रन्थों को उपेक्षा-दृष्टि से देखता है। इसका कहना है कि ये जो आराधनायें हैं वे जैनियों के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं और कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुयायी जैनी इन आराधनाओं को मानने को तैयार नहीं हो सकते। साथ ही इसका यह भी कहना है कि ये आराधनायें जैनेतर आराधनाओं के अनुकरण हैं। किन्तु दूसरे पक्ष का यह कहना है कि एक गृहस्थ जैनी अपने परिवार में आये हुए आगन्तुक उपद्रवों की शान्ति के लिये अगर इन आराधनाओं से लाभ उठाता है तो अनुचित नहीं है। अन्यथा कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुसरण का परिणाम यही होगा कि कच्चे दिलवाले जैनी अपने ऊपर आई हुई असाताजन्य दुर्घटनाओं को दूर करने के लिये आर्त्तावस्था में अन्यान्य तामसिक देव-देवियों की आराधना आरंभ कर देंगे और यों करते-करते अन्ततः विपथगामी होने का उन्हें अवसर मिल जायगा। आज भी ऐसे अनेकों दृष्टान्त हम लोगों की नजरों से गुजरते रहते हैं। बहुत कुछ संभव है कि तमःप्रकृतिक देव-देवियों की ओर लौकिक सिद्धि के लिये दौड़ पड़ने और चंचलचित्त वाले जैनियों को स्वधर्म में स्थिर रखने की दूर दर्शिता से ही कुछ ग्रन्थकर्त्ताओं ने आराधनाओं की सृष्टि की होगी। जब वे अपने धर्म का सैद्धान्तिक मर्म समझने लगेंगे तब तो आप ही आप ये आराधनायें इनसे दूर भाग खड़ी होंगी। व्यवहारिक दृष्टि से यह नीति लचर नहीं कही जा सकती क्योंकि पीने में सुविधाजनक होनेके लिये ही वैद्य कड़वी दवा में शक्कर मिला देते हैं। अस्तु अभी इसके कर्त्ता का पता आदि नहीं लग सका।

(२६) ग्रन्थ नं० $\frac{२४३}{घ}$

सहस्रनामाराधना

कर्त्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इञ्च | चौड़ाई ६ इञ्च | पत्रसंख्या ६

प्रारम्भिक भाग—

सुधामभुपिन पूर्वं शुद्धं सिद्धं निरंजनम्
नमस्कारमिाशय नौमि प्रारब्धसिद्धये ॥ १ ॥
तत्रक्षों नमस्तुभ्यं शास्त्रां विद्यसारदाम् ।
गौतमादिगुरून् सम्यक्दर्शनज्ञानमण्डितान् ॥ २ ॥
पत्रेशं सुप्रसादेन स्तवयामि प्रपूजनम् ।
सहस्रनामपूजस्य जिनेन्द्रस्य गुणाम्बुधे ॥ ३ ॥
× × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ३५, पंक्ति ७)

धूतकमलपरागै सज्जलैस्तीर्थजातै कनककलशशस्तै तापसन्तापनाशैः ।
सुरनिकरसुमेरुस्नापितान्ते पदाधे सकलविमलबोध श्रीजिन पूजयामि ॥
ॐ ह्रीं जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
मलयगिरिसुजातै सद्रवै कुङ्कुमाद्यै रविकुलकलितोद्यद्गुणितैरिदुयुक्तै ।
सहजसुरभिदेहं मुक्तिकान्ताकलाभ मकलविमलबोध श्रीजिन पूजयामि ॥ (गन्धम
धवलशालिकपुष्पैर्मञ्जुलैः पुण्यपुञ्जैरिव कृतनननतोयैर्मुक्तमालिन्यदोषैः ।
क्षयरहितपदेशं(?) दत्तभव्योपदेशं ... श्रीजिन ...
कमलबकुलजातातकतकीचम्पकाद्यैः
ललितकुसुमघाय
रुधिरकसहितान्नैः

तुहिनजगृहरत्नैः निर्जितामर्त्यरत्नैः सकलसदृशपीतैः वातघातैरधूतैः ।
विदितसकललोकं दिव्यमानं विलोकं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (दीपम्)

अगरुजवरधूपैर्धूपिताशामुखाभैः अमरनिकरनाथानिष्टधूमैर्मनोज्ञैः ।
वसुविधदुरिताग्धदाहकं दाहमुक्तं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (धूपम्)

बकुलजलवलीश (?) दाडिमस्वादुकाम्रक्रमुकमुफलपूराद्यै रनिन्द्यैः फलौघैः ।
शिवसुखफललब्धिं सर्वतत्त्वेद्धबुद्धिं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (फलम्)

अमलकमलगन्धाक्षुणतराडु(?)लपुष्पैश्चरुगृहमणिदीपैः धूपकृत्सत्फलार्घ्यैः ।
शतमखनुतमेद्वारुपरत्नत्रयाढ्यं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (अर्घ्यम्)

× × × ×

अन्तिम भाग :—

विशालकीर्तिर्वरपुण्यमूर्तिः शतेन्द्रसंचर्चितपादपद्मः ।
श्रीमज्जिनेन्द्रः सुसहस्रनामा जिनेश्वरः पातु स भव्यलोकान् ॥
पद्षष्टिसूत्रोकपद्मप्रमाणां त्र्यष्टयाधिकं चात्र सहस्रयुक्तम् ।
मद्धे द्विरष्टौ (?) च पदानिलुता (?) पद्मं च कृत्वाष्टदलाष्टकं वै ॥
इत्थं पुरोत्थं पुरुदेवयन्त्रं सम्भाव्य मध्ये जिनमर्चयामि ।
सिद्धादिधर्मादिजिनालयान्तं पत्रेषु नामाङ्किततत्पदेषु ॥

इस 'सहस्रनामाराधना' में जिनसेनकृत सहस्रनामान्तर्गत प्रत्येक नाम के लिये प्रत्येक अर्घ का विधान पद्यमय अङ्कित है। यह ग्रन्थ दस परिधियों (मण्डलों) में विभक्त है। प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ में जिनेन्द्र का प्रत्येक अष्टक (पूजा) निर्दिष्ट है। साथ ही साथ प्रत्येक परिधि की समाप्ति में जयमाला भी अन्तर्मुक्त की गयी है। अर्थात् प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, (अष्टक) उस परिधि के अन्तर्गत नामों के लिये अर्घ्य एवं अन्त में पूर्णार्घ और जयमाला है। इस हिसाब से दस अष्टक साधिकसहस्र अर्घ्य और दस जयमालायें हैं। इस में ग्रन्थकर्त्ता के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु १म और ९म को छोड़ कर प्रत्येक परिधि के अन्त में कुछ हेर-फेर करके दिये गये निम्नाङ्कित पद्य अवश्य विचारणीय हैं :—

"मुनीन्द्रदेवेन्द्रसुकीर्त्तये तत् श्रीधर्मचन्द्रः कृतधर्मभूपः ।
सुरेन्द्रकीर्त्तिवरधर्ममूर्त्तिः बभुर्जिनेन्द्रा वरसंघशान्त्यै ॥"

(द्वितीय परिधि का अन्तिम श्लोक)

(२६) ग्रन्थ नं० २४३/ख

सहस्रनामाराधना

कर्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ९॥ इन्च चौड़ाई ६ इन्च पत्रसंख्या ६०

प्रारंभिक भाग—

सुत्रामपूजितं पूज्यं शुद्धं सिद्धं निरंजनम्
नमस्कारविनाशाय नौमि प्रारब्धसिद्धये ॥ १ ॥
तद्वज्जां भमस्तुर्ये भारतीं विश्वमारकाम् ।
गौतमादिगुरून् सम्यक्दर्शनज्ञानमण्डितान् ॥ २ ॥
एतेषां सुप्रसादेन रचयामि प्रपूजनम् ।
सहस्रनामयुक्तस्य जिनेन्द्रस्य गुणाम्बुधे ॥ ३ ॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ३५, पंक्ति ७)

धूतकमलपरागै सज्जनैस्तीर्थजातै कनककलशशस्तै तापसन्तापनाशै ।
सुरनिकरसुमेरुस्नापितान्तै पयाधे सकलविमलबोध श्रीजिन पूजयामि ॥
ॐ ह्रीं जलं निर्वपामीतिस्वाहा ।
मलयगिरिसुजातै सद्द्रवै कुङ्कुमाद्यै परिमलकलितोद्यद्गुञ्जितैरिन्दुयुक्तै ।
सहजसुरभिरेहं मुक्तिकान्तारताम सकलविमलबोध श्रीजिन पूजयामि ॥ (गन्धम्)
धवलशालकपुञ्जैर्मञ्जुलै पुण्यपुञ्जैरिव रतजनतोषैर्मुक्तमालिन्यदोषै ।
स्वरहितपदेशं(?) व्रतभव्योपदेशं सकलविमलबोध श्रीजिन पूजयामि ॥(अक्षतान्)
कमलबकुलजातीकेतकीचम्पकाद्यै सुरभिगुणसुदेशानन्दकै सुप्रसूनै ।
दलितकुसुमबाणं सर्वविद्याप्रमाणं सकलविमलबोध श्रीजिनं पूजयामि ॥ (पुष्पम्)
दधिघृतसहितान्नै शर्करापायसान्नै प्रचुरघृतपक्वैर्व्यञ्जनै सन्निवेद्यै ।
सकलविमलबोधं श्रीजिन पूजयामि ॥ (चरुम्)

(३०) ग्रन्थ नं० २४४/ख

कलिकुण्डाराधनाविधान

कर्ता— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्रसंख्या १३

प्रारम्भिक भाग—

सत्पुण्यधाम्ना(?)प्रविराजितेन पुण्पेण पूर्णेन सुपल्लवेन ।
सन्मङ्गलार्थं कलिकुण्डदेवमुपाग्रभूमौ समलङ्करोमि ॥

(कलशस्थापनम्)

शुद्धेन शुद्धह्रदकूपवापीगङ्गातटाकादिसमावृतेन ।
शीतेन तोयेन सुगन्धिनाहं भक्त्याभिषिञ्चे कलिकुण्डयन्त्रम् ।

(तीर्थोदकाभिषेकः)

नीरैः सुगन्धैः कलमाक्षतौघैः पुष्पैर्हविभिर्वरधूपधूमैः ।
भास्वत्फलार्घ्यैः कलिकुण्डयन्त्रं संपूजयाम्यच्युतया सुभक्त्या ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ६, पंक्ति ७)—

प्रणम्य देवेन्द्रनुतं जिनेन्द्रं सर्वज्ञमज्ञप्रतिबोधसंक्षम् ।
स्तोष्ये सदाहं कलिकुण्डयन्त्रं सार्वं च विघ्नौघविनाशदक्षम् ॥
नित्यं स्मरन्तोऽपि हितो (?) पि भक्त्या सदास्तुवन्तोऽपि जपं सुमन्त्रम् ।
पूजां प्रकुर्वन् हृदये ददाति सच्चेप्सितं यच्छतु यन्त्रराजम् ॥
ग्रहांगणे कल्पतरुप्रसूनं चिन्तामणिश्चिन्तितदानदाने ।
गावश्च तुल्याश्च हि कामधेनुर्यस्यास्ति भक्ति कलिकुण्डयन्त्रे ॥
नमामि नित्यं कलिकुण्डयंत्रम् सदा पवित्रं कृतरत्नपात्रं ।
रत्नत्रयाराधनमावलम्ब्यम् सुपासरैर्वन्दितमादय मोक्षं.............

"इत्थ स्तुतो जिनवरो जगतां हितार्थ...... ...... भवाब्धिसु नृणां पतता (?) सुरक्षां ।
सद्धर्मचन्द्र इह धर्मसुभूषणाख्या देवेन्द्रकीर्तिविनयन्ना ददतां सतां स ॥

(३य परिधि का अन्तिम श्लोक)

"इति यत्स्तुतिपूज्यो देवदेवेन्द्रवृन्दैर्विगतसकललोको ज्ञानरूपो जिनेन्द्र ।
प्रथयतु शुभलक्ष्मीं धर्मचन्द्रो मुनीन्द्रस्तुतपदकमलोऽसौधर्मभूषस्तु नृणाम् ॥"

(४थ परिधि का अन्तिम श्लोक)

"श्रीधर्मचन्द्र श्रुतसिन्धुचन्द्रो त्रिभुवनलोकशरण्यधर्मभूष ।
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशःस्वरूप स पातु भव्यजिनसौख्यकर ॥"

(५म परिधि का अन्तिम श्लोक)

"इतिस्तुतोऽभूत्त्रिजगैकभूषणस्सुधर्मचन्द्राचितधर्मभूषण ।
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशःस्वरूप स पातु भव्यजिनसौख्यरूप ॥"

(६ष्ठ परिधि का अन्तिम श्लोक)

'सुधर्मचन्द्रो जिनधर्मभूषो देवेन्द्रसत्कीर्तितपादपद्म ।
सुरेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रपूज्य पायात् स व श्रीजिनप पवित्र ॥"

(७म परिधि का अन्तिम श्लोक)

"संसारमुक्तो जिनधर्मचन्द्र सद्धर्मभूषो धरधर्ममूर्ति ।
देवेन्द्रकीर्ति स्तवदेवकीर्ति पायाज्जिनो वो नरनाथपूज्य ॥"

(८म परिधि का अन्तिम श्लोक)

विशालकीर्तिर्धरपुण्यमूर्ति शतेन्द्रसंचितपादपद्म ।
श्रीमज्जिनेन्द्र सुसहस्रनामा जिनेश्वर पातु स भव्यलोकान् ॥"

(१०म परिधि का अन्तिम श्लोक)

परिधियों के उल्लिखित इन अन्तिम श्लोकों की ओर ध्यान देने से यह पता लगता है कि इसके कर्ता देवेन्द्रकीर्ति हैं और इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् के विशेषणरूप में अपना, अपने गुरु का एवं प्रगुरु का क्रमशः—धर्मचन्द्र, धर्मभूषण देवेन्द्रकीर्ति इन नामों से उल्लेख किया है। देवेन्द्रकीर्ति के नामसे कई व्यक्ति हुए हैं, इसलिये नहीं कहा जासकता कि अमुक देवेन्द्रकीर्ति ही इसके प्रणेता हैं।

अरहन्ताणं, ओं ह्रीं अर्हं णमो सिद्धाणं, ओं ह्रीं अर्हं णमो आइरियाणं, ओं ह्रीं अर्हं णमो उवज्झायाणं ओं ह्रीं अर्हं णमो साहूणं इति पञ्चपदैर्वेष्टयेत्। ततः षट्कोणयन्त्रं लिखेत्। अग्रे स्वस्तिकं लाञ्छितं ततः षट्कोणेषु सव्यक्रमेण अप्रतिचक्रे फट् इति मन्त्रावयवस्यैक-कोणेऽप्येकैकाक्षरं दद्यात्।

× × × ×

मध्यभाग (परपृष्ठ ५, पंक्ति ४)—

मध्ये षट्कोणचक्रं लिखितजिनपतेः (?) क्ष्माधरं पीडबंधम्
वामे ह्रीं दक्षिणे भ्र्वीं श्रियमधरतले तेषु सव्यापसव्यम्।
कोष्ठेष्वप्रतिचक्रे फडिति सविचक्राय होमान्तमन्त्रम्
देवीनां चैव पराणां बहिरपि विलिखेन्मन्त्रमग्रे च कोणे॥

× × ×

अन्तिम भाग—

अन्तश्चन्द्रावृतं हंस इति युतमतो दिक्षु पं वं विदिक्षु
नालाग्रे भ्र्वीं तदादावमृतमतिसितं सप्तपत्रं द्विपक्षम्।
लं पीताम्भोजपत्रे मुखकमलदले वं घटीरूपयन्त्रम्
झं क्ष्मं ह्रः ठः पोहोग्रे गतमुदवपुः संक्षमैतत्प्रशस्तम्॥

यन्त्रमध्ये लं वं झं वं क्ष्मं ह्रः ठः पः हः झ्वीं क्ष्वीं हं सः देवदत्तस्य शीतोष्णज्वरहरं कुरु कुरु स्वाहा। इति संलिख्य ततो झ्वीं क्ष्वीं हंसः इत्येतैर्बहिरावेष्ट्य बाह्ये कलशाकारं संवेष्ट्य तस्य नालाग्रे झ्वीं नालादौ क्ष्वीं पीतगतसप्तपत्रेषु प्रतिपत्रं लं। मुखगतसप्तदलानां मध्ये वं तदग्रेषु झं वं क्ष्मं ह्रः ठः पः हः इत्येकैकमक्षरमग्रं प्रति संलिखेत्॥

इस 'कल्प' में सर्वप्रथम यन्त्र लिखने का क्रम, मूलमन्त्र, इन मूलमन्त्रों के वश्यादि प्रत्येक कार्य में जपने की विधि एवं आगे गणधरयन्त्र का उल्लेख किया गया है। इसी यन्त्र-प्रकरण में अक्षि, कुक्षि, कर्ण एवं शिरोरोग आदि के लिये प्रत्येक मन्त्र का जप निर्दिष्ट है। इसके [illegible] क ज्ञानवृद्धि, आयुःपरिज्ञानादि के लिये भी जाप्य मंत्र दिये गये हैं। बाद [illegible] न्त्र की पूजा, नवग्रह पूजा के साथ विस्तार से बतलायी गयी है। इसमें किस [illegible] किस वृक्ष की लकड़ी एवं कुण्ड की किस दिशा में किन किन की [illegible] भी दिग्दर्शन कराया गया है। आगे "जंघया मध्यभागे तु संश्लेषो [illegible] प्रोक्तं तदासनविचक्षणैः॥ तत्र पद्मासनं पादौ जंघाभ्यां अयतो [illegible] क [illegible]॥" इत्यादि रूप से आसनों का लक्षण कहा [illegible], शान्ति आदि होम में "सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तद्रजोभिर्गुडान्वितैः।

सिंहेभसर्पाग्निजलाब्धिचौरैर्विषाद्यो‌ऽन्ये च समुद्भवाः।
व्याध्यादयो राजकुलोद्भवं भयं नश्यत्यवश्यं कलिकुण्डपूजया ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

कलिलदहनदक्षं योगियोगोपलक्ष्यम्
अविकलकलिकुण्डो दण्डपार्श्वप्रचण्डम्।
शिवसुखमभवद्वा दासवल्लीवसन्तम्
प्रतिदिनमहमीडे वर्धमानस्य सिद्धयै ॥

इस 'कलिकुण्डाराधना' के आदि में कलिकुण्डयन्त्र एवं श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा का अभिषेक, भूमिशुद्धि, पञ्चगुरुपूजा और चत्तारि अर्घ्य निर्दिष्ट हैं। बाद पार्श्वनाथ पूजा एवं इन्हीं की मन्त्रस्तुति, धरणेन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षी की पूजा तथा इनके मन्त्र-स्तोत्र दिये गये हैं। इसके उपरांत मंत्र लिखने की विधि और फल इत्यादि का निर्देश करते हुए प्रस्तुत यंत्र की पूजा बतलायी गयी है। अन्त में यन्त्रीय मंत्र की स्तुति, यंत्रस्थ पिण्डाक्षरों का अर्घ्य, अष्टमातृका की पूजा, मन्त्रपुष्प और जयमाला लिखी गयी है। इसके कर्त्ता भी अभी अज्ञात ही हैं।

---

(३१) ग्रन्थ नं० २४५/ख

गणधरवलयकल्प

कर्त्ता— ×

विषय—मन्त्रशास्त्र
भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च *पत्र संख्या १०*

प्रारम्भिक भाग—

देवदत्तस्य नामाहंकारेण वेष्टयेत्।

ततो‌ऽनाहतेन तस्याधः कर्मक्षयार्थं अर्थप्राप्त्यर्थं पद्मासनम्। शांतिकपौष्टिकसारस्वताय श्रींकारासनम्। शत्रुविनाशार्थं दुष्टनिग्रहार्थं च ह्रूंकारासनम्। ततः ओं [illegible] अर्ह णमो

देहिनः सुखासुखावाप्तिपरिहाररूपपुरुषार्थद्वयाविगानकारणं सद्धर्मं शर्मकामाः समाराधयन्तु भवन्तः। तथाथ पुरातनैर्निरूपितम्;—

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं भवतु सुकीर्त्तिः सदा धर्मः॥

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ २६, पंक्ति ७)

अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवदिति।

न चेदं साधनमसिद्धं प्रत्यक्षादिनामन्यतमस्यापि प्रमाणस्य सर्वज्ञबाधकस्यासंभवात्तदुक्तम्।

सर्वज्ञत्वं न चासिद्धं कस्यचिद्बाधकात्ययात्।
सर्वत्र बाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः॥
न तस्य बाधकं तावत्प्रत्यक्षमुपपद्यते।
तस्याक्षजत्वादत्यक्षे न विधिर्न निषेधनम्॥
न चानुमानोपमानं च युक्तमिष्टविघाततः।
तथा हि खचरादीनां न स्यात् खगमनादिकम्॥
तस्मान्नरविशेषोऽसौ यस्य सा सकलज्ञता।
तथा खरविशेषश्चेदिष्टा तस्यापि शृंगिता॥
न चार्थापत्तिरप्यस्ति सर्वज्ञाभावसाधनी।
कोह्यर्थो संभवी तेन विना यस्तं प्रकल्पयेत्॥
नाप्यागमेन सर्वज्ञः कृतकेनेतरेण वा।
बाध्यते कर्तृहीनस्य तस्यात्यन्तमसम्भवात्॥
कर्तुरस्मरणादिभ्यः कर्त्रभावो न सिध्यति।
अज्ञातकर्तृकैर्वाक्यैर्व्यभिचारस्य संभवात्॥
न च कश्चिद्विशेषोऽस्ति पौरुषेयष्वसंभवी।
अतीन्द्रियार्थसंवादः सर्वज्ञोक्तेऽपि संभवेत्॥
विवादविषयापन्नं ततः शास्त्रं सकर्तृकम्।
दृष्टकर्तृकतुल्यत्वादकलङ्कादिशास्त्रवत्॥
तस्मादकर्तृकं शास्त्रं नास्तिसर्वज्ञबाधकम्।
कृतकञ्च द्विधा भिन्नं सर्वज्ञेतरहेतुकम्॥
असर्वज्ञकृतं तावन्नप्रमाणमतीन्द्रिये।
सकलज्ञप्रणीतं तु तस्य प्रत्युत साधनम्॥

चन्दनागरुकर्पूरगुग्गुलान्नघृतादिभि ॥ पायसान्नाद्यतैर्मिश्रै र्मधुदुग्धाद्यादिभि । सा धामिश्चरुद्धाम प्रतिष्ठानोतिपौष्टिके ॥" इस विधि से हवनद्रव्य का उल्लेख कर पौष्टिक कार्य के लिये "चन्यादृष्टिम्नभननिरोधद्वेषचलनशान्तिकपुष्टं । कुर्यात् सोमदमामपहरां मस्तकेऽघिनिर्मुं तदिम्यदन ॥" इस प्रकार अलग अलग क्रियायें बतलायी गयी हैं। इ में प्रत्येक कार्य के लिये समय, आसन, मुद्रा, पीनाक्षर आदि का विशद विवेचन कि गया है। वश्याकर्षण कार्य म त्रिकोण, चतुष्कोण आदि भिन्न-भिन्न कुण्ड तथा भि भिन्न वर्ण वाले पुष्पों की उपयोगिता लिखी गयी गयी है। जिस जिस कार्य के लिये जि जिस अङ्गुली में जप करना विधेय है, इस बात को "मोक्षशान्त्योर्वशाकर्षस्तम्भे पायस मधुमध्यमानामितर्जनाभिर्मोक्षे चरेत् ।" यों अङ्कित किया है। अन्त में षोडशोपचार द्रव्यों को गिना कर अग्निमण्डलों का लक्षण दिया गया है। अस्तु, इसके क अज्ञात हैं, पर निम्न लिखित तीन विद्वान गणधरवलय पूजा के कर्ता अब तक प्रसि हैं —(१) भट्टारक धर्मकीर्ति (२) शुभचन्द्र (३) हस्तिमल्ल।

---

(३४) ग्रन्थ नं० २४६/ख

प्रवचनपरीक्षा

कर्ता—नेमिचन्द्र

विषय—खण्डनमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥ इन्च | चौडाई ६ इन्च | पत्रसंख्या ५८

प्रारम्भिक भाग—

त्रिलोकीतिलकायार्हत्पुरवराय नमो नमः ।
वाचामगोचराचिन्त्यबहिरभ्यन्तरश्रिये ॥

अथ निखिलचराचरचमत्कारीजनिजानुभावप्रभावानुरूपोपनतसकलभोगसाधनससिद्ध समिद्धाभिमानीकसुखसुधाम्भोनिधिनिमज्जद्राजाधिराजमहाराजार्धमण्डलीकमहामण्डलीकार्ध चक्रवर्तिसकलचक्रवर्तीन्द्रादिपदलक्षणाभ्युदयलक्ष्मीलाभाय पुरुषार्थपराकाष्ठागतनित्यनिरुपम निर्बाधपरमानन्दमन्दिरनिःश्रेयससमधिगमाय चतुर्विधदुरन्तदुःखैकनिबन्धनाहंसंहाराय इहो

हिनः सुखासुखावाप्तिपरिहाररूपपुरुषार्थद्वयविगानकारणं सद्धर्मं शर्मकामाः समाराधयन्तु
वन्तः। तथाथ पुरातनैर्निरूपितम्:—

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं भवतु सुकीर्त्तिः सदा धर्मः॥

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ २६, पंक्ति ७)

अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवदिति।
न चेदं साधनमसिद्धं प्रत्यक्षादिनामन्यतमस्यापि प्रमाणस्य सर्वज्ञबाधकस्यासंभवात्तदुक्तम्।

सर्वज्ञत्वं न चासिद्धं कस्यचिद्बाधकात्ययात्।
सर्वत्र बाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः॥
न तस्य बाधकं तावत्प्रत्यक्षमुपपद्यते।
तस्यातज्जत्वाद्दृष्टे न विधिर्न निषेधनम्॥
न चानुमानोपमानं च युक्तमिष्टविघाततः।
तथा हि खचरादीनां न स्यात् खगमनादिकम्॥
तस्मान्नरविशेषोऽसौ यस्य सा सकलज्ञता।
तथा खचविशेषस्वेद्दिष्टा तस्यापि श्रृंगिता॥
न चार्थापत्तिरप्यस्ति सर्वज्ञाभावसाधनी।
कोह्यर्थो संभवी तेन विना यस्तं प्रकल्पयेत्॥
नाप्यागमेन सर्वज्ञः कृतकेनेतरेण वा।
बाध्यते कर्तृहीनस्य तस्यात्यन्तमसम्भवात्॥
कर्तुरस्मरणादिभ्यः कर्त्रभावो न सिध्यति।
अज्ञातकर्तृकैर्वाक्यैर्व्यभिचारस्य संभवात्॥
न च कश्चिद्विशेषोऽस्ति पौरुषेयष्वसंभवी।
अतीन्द्रियार्थसंवादः सर्वज्ञोक्तेऽपि संभवेत्॥
विवादविषयापन्नं ततः शास्त्रं सकर्तृकम्।
दृष्टकर्तृकतुल्यत्वादकलङ्कादिशास्त्रवत्॥
तस्मादकर्तृकं शास्त्रं नास्तिसर्वज्ञबाधकम्।
कृतकञ्च द्विधा भिन्नं सर्वज्ञेतरहेतुकम्॥
असर्वज्ञकृतं तावन्नप्रमाणमतीन्द्रिये।
सकलज्ञप्रणीतं तु तस्य प्रत्युत साधनम्॥

प्रस्तुतस्यानुमानस्य साधकत्वेन समागात् ।
प्रमाणपञ्चकाभावोऽप्यस्तित्वे न बाध्यते ॥
तस्मात्सर्वज्ञः कश्चिदस्तीत्यागमसमथा ।
प्रमाण बाधकाभावाद्बुद्धिस्तादिबुद्धियत् ॥

सदेव प्रमाणबलाद्ज्ञानादिदोषरहितं सामान्यतो यः सिद्ध स चार्हन्नेव सर्वज्ञः युक्तिशास्त्राविरुद्धवाक्यात् ।

× × × ×

अंतिम भाग :—

इदममल्पमतस्यात्ममीमांसितादेः प्रवचननिकरस्याशय बोधाय सारम् ।
रचितमुचितमायामिर्विवेकिकार्त्ता प्रकटयितुमशक्तं भेदमस्माद्वचानाम् ॥
इति प्रवचनस्येह परीक्षा विहिता मया । अन्ययोगव्यवच्छेदाद्भेदानां प्रतिपत्तय
स्खलितमिह विहायान्यत्पद किञ्चिदर्थं प्रभवति यद् मन्तु बालकस्यादरामे ।

× × ×

यतदद्यतननिर्मितं कथं स्यात्प्रमाणमिति मास्म मन्यथा ।
अर्थतस्त्विदं सूरीन्द्रभाषितं नापरं किमपि कल्पितं मया ॥
परमामृतदानेन प्रीणयद्विबुधान् परं ।
शरणं भवितमन्नेमिचन्द्रचक्रिणशासनम् ॥

इस 'प्रवचनपरीक्षा' के कर्ता कवि नेमिचन्द्र हैं। 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस तालिका में निम्नलिखित ग्रन्थ भी इन्हीं नेमिचन्द्र के द्वारा प्रणीत कहे गये हैं —

(१) द्विसन्धानकाव्य की टीका (२) द्विसन्धान काव्य द्वितीय (श्लोक सं० १०० (३) उत्सवपद्धति (४) प्रतिष्ठातिलक (श्लोक सं० ६०००) (५) त्रैवर्णिकाचार (श्लोक सं० ३०००)। इनमें द्विसन्धान काव्य (द्वितीय) तथा उत्सवपद्धति ये दो ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आये हैं। हाँ, शेष ग्रन्थों को मैंने देखा है। त्रैवर्णिकाचार और प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा इनमें नाम-निर्देश के सिवा भवन की प्रतियों में कवि नेमिचन्द्र का कुछ भी परिचय नहीं मिलता है। द्विसन्धान काव्य की टीका में निम्नलिखित दो श्लोक मिलते हैं अवश्य —

"जीयान्मृगेन्द्रो विनयेन्दुनामा सवित्सदापाजितकण्ठपीठः ।
प्रतीववादीभकपोलभित्ति प्रमात्तरैः स्वैर्नखरैर्विदाय ॥
तस्याय शिष्योऽजनि देवनन्दी सद्ब्रह्मचर्यव्रतदेवनन्दी ।
पदाम्बुजद्वन्द्वमनिन्द्यमस्य तस्योत्तमाङ्गेन नमस्करोमि ॥

इन श्लोकों से सिद्ध होता है कि कवि नेमिचन्द्र के प्रगुरु विनयचन्द्र एवं गुरु देवनन्दी थे। बल्कि निर्णयसागर प्रेस बंबई से प्रकाशित इसी द्विसन्धान काव्य के नवीन टीकाकार पं० बदरीनाथ जी ने इस नेमिचन्द्र को विनयचन्द्र का शिष्य लिखा है; यह इस नवीन टीकाकार की भूल है। क्योंकि विनयचन्द्र नेमिचन्द्र के गुरु नहीं थे किन्तु प्रगुरु। अब लीजिये 'प्रतिष्ठातिलक' को। 'सखाराम नेमिचंद जैन ग्रन्थमाला' सोलापुर से मुद्रित इस ग्रन्थ के इस संस्करण में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। पर 'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ १६५ में श्रवणबेलोल-निवासी स्वर्गीय पं० दोर्बली शास्त्री के गृहग्रन्थालयस्थ इस प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ की एक ताड़पत्राङ्कित प्रति पर से ली गई 'शास्त्रावतार' नामक ४५ पद्यों की एक लम्बी चौड़ी प्रशस्ति प्रकाशित हुई है। इस प्रशस्ति में इस कवि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इसमें ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र ने अपने वंश आदि का स्पष्ट परिचय दिया है। प्रशस्ति में ब्राह्मणकुल की प्राचीनता को दिखलाते हुए उन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान में अकलङ्क, इन्द्रनन्दी, अनन्तवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसेन, वादिराज और हस्तिमल्ल आदि अनेक विद्वानों का जन्म (?) लेने का कथन इन्होंने किया है और इन विद्वानों की वंशपरम्परा में अपने कुटुम्ब का क्रम विस्तार से बतलाया है। विस्तारभय से इस परम्परा को मैं उद्धृत नहीं कर सका। कवि नेमिचन्द्र ने अपने वंश को चोल राजवंश के द्वारा सम्मानित एवं अन्यान्य शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वानों से अलंकृत लिखा है। जैसे—समयनाथ को तार्किक, राजमल्ल को कवि, चिन्तामणि को वादी और वाग्मी, अनन्तवीर्य को षट्वाद-विशारद, पार्श्वनाथ को गीत और आगमशास्त्र का ज्ञाता (बहुत कुछ संभव है कि यही संगीत-समयसार के कर्ता हों), आदिनाथ को आयुर्वेद में निपुण, कोदण्डराम को धनुर्वेद का वेत्ता, ब्रह्मदेव को बड़ा बुद्धिमान् तथा षट्कर्मकर्मठ और देवेन्द्र को संहिताशास्त्र में निष्णात एवं राजमान्यतादि गुणों से सम्पन्न लिखा है। चन्द्रपार्य, ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ इन तीन को कवि ने अपना मातुल बतलाया है। यह ब्रह्मसूरि वही हैं जिन्होंने प्रतिष्ठापाठ, त्रैवर्णिकाचारादि ग्रन्थों की रचना की है। नेमिचंद्र के पिता देवेन्द्र और माता आर्यदेवी थीं। इन्हें आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप्प नाम के तीन पुत्र हुए। नेमिचन्द्र नाम का पुत्र ही प्रस्तुत कवि नेमिचन्द्र हैं। आपने अपने तीन भाइयों के सुपुत्रों का नाम-निर्देश करते हुए इन्हें भी विद्वान् लिखा है। नेमिचन्द्र जी ने इस ग्रन्थ में अपने को अभयचन्द्र का शिष्य स्पष्ट बतलाया है। इससे मालूम होता है कि द्विसन्धान काव्य के टीकाकार देवनन्दी का शिष्य नेमिचन्द्र इनसे भिन्न है।

इस प्रशस्ति में इन्होंने अपने को 'सत्यशासन-परीक्षा' आदि ग्रन्थों का प्रणेता बतलाया है। वह सत्यशासनपरीक्षा प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा ही मालूम होती है। राजसम्मानित

यह कवि नेमिचन्द्र स्थिरकदम्ब नामक नगर में रहते थे। पता नहीं है कि यह स्थिरकदम्ब किस स्थान का प्राचीन नाम है। कर्णाटक प्रांत में ही कहीं इसे होना चाहिये। साथ ही साथ इनके सम्बन्ध में यह कह देना भी आवश्यक है कि यह कवि नेमिचन्द्र जी गृहस्थ थे और लगभग १६वीं शताब्दी में मौजूद थे। इसमें कोई शक नहीं है कि यह एक प्रौढ कवि थे। इस प्रवचनपरीक्षा की श्लोक संख्या १००० मानी गयी है। इसकी भाषा विशुद्ध एवं प्रसादादिगुणों से सम्पन्न है। किन्तु भवन की यह प्रति यत्र-तत्र अशुद्ध है।

इस प्रवचनपरीक्षा में ग्रन्थकर्ता ने निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला है —

(१) अहिंसाधर्म की प्रधानता पर जैनधर्म में ही इसकी परिपूर्णता (२) वेद की समालोचना एवं मीमांसक, सांख्य आदि दर्शनों की वेद-बाह्यता तथा इनमें भी अहिंसा की मान्यता (३) "अर्हन्नमिषाम्" आदि वाक्यों में अर्हन्त का और "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" आदि वाक्यों में अहिंसा का वेद में उल्लेख (४) वेद-प्रतिपादित कई बात अधार्मिक हैं यदि वे धर्मबाह्य नहीं हैं तो मीमांसक आदि ने ईश्वर के अस्तित्व का जो खण्डन किया है, वह भी धर्मबाह्य नहीं होना चाहिये आदि (५) वेद-प्रतिपादित अर्हन् आदि शब्दों का अर्थ अर्हन्त न करके इन्द्रादिक करना युक्तियुक्त नहीं है (६) वेदप्रतिपादित अहिंसादि धर्मों को माननेवाले जैनी वेदबाह्य नहीं कहला सकते हैं (७) वेद का समीचीन बोध नहीं होने से यदि जैनी वेदबाह्य हैं तब बहुसंख्यक वैदिक मतावलम्बी भी वेदबाह्य ठहरेंगे, अन्यथा आपस में वेदोक्त बातों पर इतना मतभेद क्यों उठ खड़ा हुआ? (८) जैनियों के वेद उनके प्रतिपादक, उनमें वेदनाम एवं संख्या की सार्थकता (९) अर्हन् की सर्वज्ञता तथा उनकी वेदप्रतिपादकता (१०) धर्म का भेद एवं गृहस्थ धर्म का वर्णन (११) एकेन्द्रिय जीवों के हिंसक गृहस्थ पञ्चेन्द्रिय जीवों के हिंसक नहीं कहला सकते (पञ्चानां पञ्चानां यद्यपि पञ्चनकारत। तद्रुपञ्चादाताय न पञ्चैकादाघातत) (१२) मांस जीव का शरीर है अवश्य, पर जीव शरीर मांस हो भी सकता है और नहीं भी (मांसं जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मांसम्। यद्वा निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः॥) (१३) जैनियों के वाक्य अ पूर्वापर अविरुद्ध हैं और वे कथञ्चित् पौरुषेय-रूप हैं (१४) अपौरुषेयता ही प्रमाण की मूलभित्ति नहीं है पर वचन में प्रमाणता गुणविशिष्ट वक्ता के ऊपर निर्भर है। (१५) प्रणव (ॐ) एवं यज्ञादिकर्म भी जैनग्रन्थों में निर्दिष्ट हैं (१६) आप्त का यथार्थ स्वरूप (१७) बारह अङ्गों का विस्तृत वर्णन (१८) जैनियों में सन्ध्यावन्दन सकलीकरण गायत्री (अपराजितमन्त्र), तर्पण, श्राद्ध भी कथञ्चित् उपादेय हैं (१९) नित्य क्रियाओं का वर्णन (२०) द्विज का लक्षण एवं कर्तव्य।

इस ग्रन्थ को आमूलचूल देखने से पता लगता है कि वेद तर्पण, श्राद्ध, सन्ध्या एव

गायत्री आदि को कथञ्चित् जैनागमानुकूल सिद्ध करना ही ग्रन्थकर्त्ता का लक्ष्य रहा है। हाँ, इसमें यह विशेषता है कि इन शब्दों का अर्थ और प्रतिपादित विषय जैन आगम के अविरुद्ध ही बतलाया गया है। मालूम होता है कि एक जमाने में इन चीजों का बड़ा बोलबाला था। इसी से जैनधर्म में भी यह सब कुछ है इस बात का परिदर्शन कराते हुए धर्म की रक्षा एवं सर्वमान्यता सिद्ध करने के लिये जैनग्रन्थकर्त्ताओं को भी इन चीजों की शरण लेनी पड़ी थी। धर्म पर कालदेशादि का प्रभाव पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है। इस प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। धर्म की रक्षा ही इन ग्रन्थकर्त्ताओं का मूल लक्ष्य रहा होगा इसलिये इनका यह कार्य सामयिक एवं उपादेय कहा जा सकता है। इसके लिये एक वर्तमान दृष्टान्त को ही लीजिये—मेरे जानते राष्ट्रीय ध्वजाभिवन्दन एक कट्टर जैनी के लिये धर्मसंगत नहीं हो सकता; फिर भी आजकल प्रायः प्रत्येक कार्य में इसे अपनाया जाता है। अगर इस समय इसका कोई विरोध करेगा तो वह अलौकिक ही नहीं प्रत्युत देशद्रोही करार दिया जायगा। इसी दृष्टान्त को विचारशील एक कट्टर जैनी को अपने सामने रख कर उल्लिखित ग्रन्थवर्णित बातों पर विचार करना चाहिये। अस्तु, इसमें अपनी बातों को पुष्ट करने के लिये ग्रन्थकर्ता ने आप्तपरीक्षा, गोम्मटसार, आदिपुराण, सागारधर्मामृत आदि ग्रन्थों के हवाले दिये हैं।

---

(३५) ग्रन्थ नं० २४७/ख

प्रतिष्ठाविधान

कर्त्ता—हस्तिमल्ल

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च | चौड़ाई ६ इञ्च | पत्रसंख्या १९

प्रारम्भिक भाग—

नमोऽर्हते सदा भूयादरिघातार्थजोऽर्हते।
रहस्यभावतो लोकत्रयपूजार्हभावतः॥

नम्रेन्द्रनन्दिमुकुटोत्करप्रतिष्ठाग्राम्भाविकृत्यमजित जिनदिव्यमूर्ते ।
तोयैर्भुवं शुभनमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलानि शोधयित्वा ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ १०, पंक्ति ६)—

इन्द्रं यमधरं शुचिं शिखिकरं वैवस्वतं क्षयिहनम्
रक्षोमुद्गरभृत्सुपाशमुशलिं वृत्रायुधं मारुतम् ।
यक्ष शक्तिभृतं त्रिशूलकुदालं रक्षाधृतं स्वस्तिकम्
शेषं सधृतकुम्भमिन्दुमपि तान्यस्यापि दिक्पालकान् ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

स्वस्तिश्रीसुखसिद्धिसिद्धिविभवं प्रख्यातयं पूज्यता
कीर्तिं क्षेममगण्यपुण्यमहिमा दीर्घायुरारोग्यकम् ।
सौभाग्यं धनधान्यसम्पद्भयं भद्रं शुभं मङ्गलम्
भूयाद्भव्यजनस्य भास्वति जिनाधीशे प्रतिष्ठापिते ॥

इति हस्तिमल्ल प्रतिष्ठाविधानं समाप्तम् ।

यह 'हस्तिमल्ल-प्रतिष्ठा विधान' मूडबिद्री से प्रतिलिपि करा कर आया है। इसमें कहीं भी ग्रन्थकर्त्ता का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ग्रन्थ के आदि और अन्त में 'हस्तिमल्लकृत' लिखा मिलता है अवश्य। इसी से इस प्रतिष्ठाग्रन्थ का कर्ता हस्तिमल्ल माना गया है। अय्यपार्य-कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' में निम्नलिखित यह श्लोक उपलब्ध होता है —

"वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो-
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरित-
स्तेभ्यस्स्वाहृतसारमार्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः ॥"

इस श्लोक में यह बात सिद्ध हो जाती है कि हस्तिमल्ल ने भी एक प्रतिष्ठा-पाठ रचा है। अतः यह ग्रन्थ उन्हीं का प्रणीत कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है। यदि यह प्रतिष्ठा-विधान विक्रान्तकौरव एवं मैथिलीकल्याण आदि नाटकों के प्रणेता प्रसिद्ध हस्तिमल्ल कवि का ही माना जाय तो इनका कुछ विशेष परिचय 'माणिक्यचन्द्र-ग्रन्थमाला' में प्रकाशित उक्त नाटकग्रन्थों की भूमिका में मिलता है। इस भूमिका के लेखक ... पं०

नाथूराम जी प्रेमी हैं। इस पाण्डित्यपूर्ण भूमिका में प्रतिपादित दो-एक बातों पर जो मेरा मतभेद है—यहाँ पर सिर्फ उसी का खुलासा कर देना मेरा ध्येय है।

(१) प्रेमी जी ने इस भूमिका में लिखा है कि कवि ने अपने पूज्य पिता के नाम के आगे 'स्वामी' तथा 'भट्टार' पद को जोड़ा है, इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता साधु अथवा भट्टारक रहे होंगे। पर मुझे यह बात अखरती है। क्योंकि अगर इनके पिता गोविन्द भट्ट साधु या भट्टारक होते तो कवि उनके दीक्षानाम का उल्लेख अवश्य करता। बल्कि वह अपने पूज्य पिता के उस दीक्षानाम का ही उद्धरण सगर्व करता। किन्तु हस्तिमल्ल अपनी कृतियों में "भट्टारगोविन्दस्वामिसूनुना" इतना ही लिखकर चुप हो बैठते हैं। गोविन्द स्वामी या गोविन्द भट्ट यह नाम बहुधा दाक्षिणात्य जैनेतर ब्राह्मणों में आज भी प्रचलित है। इस बात को प्रेमी जी भी मानते हैं कि गोविन्द भट्ट जैन होने के पहले वत्सगोत्रीय हिन्दू ब्राह्मण थे। अब रहा 'भट्टार' शब्द। यह शब्द पूज्य अर्थ में प्रयुक्त होता कोशों में बहुलता से पाया जाता है। कवि हस्तिमल्ल के लिये अपने श्रद्धेय पिता के नाम के आदि में ऐसे आदरसूचक शब्द का प्रयोग करना सर्वथा स्वाभाविक है। प्रेमी जी ने अपने उक्त पक्ष को प्रमाणित करने के लिये एक और प्रमाण उपस्थित किया है। आप का कहना है कि विक्रांतकौरवीय प्रशस्ति में वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र आदि आचार्यपरम्परा में गोविन्द भट्ट का उल्लेख मिलता है। मगर प्रेमी जी के इस प्रमाण के उत्तर में भी मेरी पहली दलील ही काफी मालूम पड़ती है। क्योंकि यहां भी उनका पूर्व नाम अर्थात् जैन होने के पहले का गोविन्द भट्ट नाम ही दिया गया है, न कि जैन आगमानुसार परिवर्तित दीक्षानाम। हां, यहां पर यह प्रश्न उठ खड़ा हो सकता है कि गुणभद्रांत उक्त गुरुपरम्परा में गोविन्द भट्ट का उल्लेख कैसे हुआ? मेरे जानते इसमें कोई विशेष विचित्रता नहीं है। क्योंकि एक गृहस्थ जैनी भी किसी गुरुपरम्परा का अपने को अनुयायी बतला सकता है। इसके लिये कोई रुकावट नहीं है। इस सम्बन्ध में एक नहीं, अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। उन दिनों दक्षिण प्रांत में सेनगणीय आचार्यों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः गृहस्थ गोविन्द भट्ट ने भी इस आदर्शभूत गुरुपरम्परा को ही अपनी गुरुपरम्परा मान लिया। अब यह भी एक शंका उठ सकती है कि जैनी होने के बाद गोविन्द भट्ट ने अपना नाम क्यों नहीं बदल लिया। पर यह कोई नई बात नहीं है। क्योंकि आज भी जैनियों में बहुत से लोग कट्टर जैनी होते हुए भी हिंदू नाम ही धारण किये हुए हैं। इतना ही नहीं, खास कर दक्षिण में आज भी बहुत से जैनवंशों में वत्स, वशिष्ठादि हिंदू गोत्र-सूत्र ही चले आ रहे हैं। जैनधर्म में दीक्षित होने के बाद भी उन्होंने अपने पूर्व गोत्र-सूत्रों का परित्याग नहीं

नम्रेन्द्रनन्दिमुकुटोत्सरत्प्रतिष्ठाप्राग्भावितत्यमर्जितं जिनबिम्बमूर्ते ।
तोयैर्भुव शुभतमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलान्यपि शोधयिन्त्या ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ १०, पंक्ति ६)—

इन्द्र वज्रधर शुचि निस्तिकर वैवस्वत दण्डिनम्
रक्षामुद्गरभृत्सुपाशमुर्नालि धूम्रायुध मारुतम् ।
यक्ष शक्तिभृत त्रिशूल्कुपाल कद्राधृतं स्वस्तिकम्
शेष सधृतकुम्भमिन्दुमपि तान्यस्यापि दिक्पालकान् ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

स्वस्तिश्रीसुखसिद्धिऋद्धिविभव प्रख्यातय पूज्यता
कीर्ति क्षेममगण्यपुण्यमहिमा दीर्घायुरारोग्यवत् ।
सौभाग्य धनधान्यसम्पदमय भद्र शुभ मङ्गलम्
भूयाद्भव्यजनस्य भास्वति जिनाधाम्नो प्रतिष्ठापिने ॥

इति हस्तिमल्ल प्रतिष्ठाविधान समाप्तम् ।

यह 'हस्तिमल्ल-प्रतिष्ठा विधान' मूडबिद्री से प्रतिलिपि करा कर आया है। इसमें कहीं भी ग्रन्थकर्त्ता का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ग्रन्थ के आदि और अन्त में 'हस्तिमल्लकृत' लिखा मिलता है अवश्य। इसी से इस प्रतिष्ठाग्रन्थ का कर्त्ता हस्तिमल्ल माना गया है। अय्यपार्य-कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' में निम्नलिखित यह श्लोक उपलब्ध होता है —

"वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसभाषितो-
य पूर्व गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जित ।
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरित-
स्तेभ्यस्स्वाहृतसारमार्यरचित स्याज्जैनपूजाक्रम ॥"

इस श्लोक से यह बात सिद्ध हो जाती है कि हस्तिमल्ल ने भी एक प्रतिष्ठा-पाठ रचा है। अत यह ग्रन्थ उन्हीं का प्रणीत कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है। यदि यह प्रतिष्ठा-विधान विक्रान्तकौरव एवं मैथिलीकल्याण आदि नाटकों के प्रणेता प्रसिद्ध हस्तिमल्ल कवि का ही माना जाय तो इनका कुछ विशेष परिचय 'माणिक्यचन्द्र-ग्रन्थमाला' में प्रकाशित उक्त नाटकग्रन्थों की भूमिका में मिलता है। इस भूमिका के लेखक श्रीयुत प०

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—"कर्णाटावनिमण्डलं* पदानतानेकावनीशेऽवति" से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाण्ड्यनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भुक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—"सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे ...." "श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः . . ." इन श्लोकों को अय्यपार्य कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त में ये दोनों श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारंभिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय है—"नत्रेन्द्रनन्दिमुकरोत्सरःप्रतिष्ठां प्राग्भाविकृत्यमजितं जिनबिम्बमूर्तेः। तोयैर्भुवं शुभतमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा॥" खास कर इस पद्य के प्रारंभ में आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता है, इसी से ठीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ; वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इंद्रनंदिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना चाहिये। संभव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो। अय्यपार्य ने भी अपने जिनेंद्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ का प्रणेता बतलाया है। बल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए हैं।

---

*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते हैं।

किया। इसके अतिरिक्त "तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसंख्येये विश्रुतो भुवि। गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जितः ॥" प्रेमी जी के जिनसेनगुरुपरम्परा को पुष्ट करने वाले इस श्लोक में गोविन्द भट्ट को साधु या भट्टारक सिद्ध करने वाला कोई शब्द नहीं है।

प्रेमी जी ने उक्त हस्तिमल्ल के द्वारा रचित विक्रांतकौरवीय नाटक के प्रथमाङ्क के अन्त में प्रतिपादित—"श्रीवत्सगोत्रजनभूषणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्। नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥४०॥" और इन्हीं के अञ्जनापवनंजय नाटक में वर्णित—"श्रीमत्पाण्ड्यमहेश्वरे निजभुजादण्डावलम्बीकृते कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति। तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिरासैः सम जैनागारसमेतसन्ततरमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥" इन श्लोकों में उद्धृत पाण्ड्यनरेश को मथुरा के निकटस्थ पाण्ड्यदेशका शासक बतलाकर उल्लिखित हस्तिमल्लकविको इस पाण्ड्य नरेश-द्वारा सम्मानित बताया है। पर 'राजावलिकथे' में देवचन्द्र ने लिखा है कि 'यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषाकविचक्रवर्ती थे'। बल्कि इसी के आधार पर प्रेमी जी का भी कहना है कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नड के भी कवि प्रमाणित होते हैं एवं इस भाषा में भी इनकी कोई रचना होनी चाहिये। किन्तु यह तो सर्वविदित बात है कि मथुरा की प्रान्तीय भाषा सदा से तमिलु चली आती है। ऐसी अवस्था में कवि हस्तिमल्ल को मथुरा के पाण्ड्यनरेश के आश्रित मानना ठीक नहीं जंचता। अगर देवचन्द्र प्रतिपादित उभयभाषाकविचक्रवर्ती का अर्थ संस्कृत एवं कन्नड भाषा ही माना जाय तो मेरा अनुमान है कि हस्तिमल्ल के आश्रयदाता उक्त पाण्ड्यनरेश पाण्ड्यदेश के न होकर वर्तमान दक्षिण कन्नडान्तर्गत कार्कल के माने जा सकते हैं। यह राजपरम्परा भी पाण्ड्यवंशीय ही था। बल्कि यह राजवंश शुरू से अन्त तक कट्टर जैनमतानुयायी ही रहा। इस वंश में कई विद्वान् राजा भी हुए हैं तथा इन्होंने अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं को आश्रय भी दिया है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जी जिस पाण्ड्यनरेश को हस्तिमल्ल कवि के सम्मानयिता बतला रहे हैं, वह सुन्दर पाण्ड्य प्रथम के उत्तराधिकारी हैं। मुझे जहां तक ज्ञात है कि यह सुन्दर पाण्ड्य जैन धर्म का एकान्त शत्रु था। ऐसी दशा में उसका उत्तराधिकारी एक कट्टर जैन विद्वान् को आश्रय दे यह बात जरा खटकती है। 'कन्नडकविचरिते' के मान्य लेखक श्रीमान् स्वर्गीय नरसिंहाचार्य ने भी हस्तिमल्ल कवि को कन्नडकवि माना है। इतना ही नहीं, इन्होंने इस कवि के प्रणीत 'आदिपुराण' नामक एक कन्नड [illegible] उल्लेख भी किया है। उल्लिखित बातों पर विचार करते हुए [illegible] को कार्[illegible]

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—"कर्णाटावनिमण्डल* पदानतानेकावनीशेऽवति" से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाण्ड्यनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भुक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—"सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे ...." "श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः . . " इन श्लोकों को अय्यपार्य कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त में ये दोनों श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारंभिक भागान्तर्गत यह २४ श्लोक विशेष विचारणीय है—"नत्वेन्द्रनन्दिमुकटोरुसरःप्रतिष्ठां प्राग्भाविकृत्यमजितं जिनदिव्यमूर्तेः। तोयैर्भुवं शुभतमैरभितो विशोध्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा॥" खास कर इस पद्य के प्रारंभ में आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता है, इसी से ठीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ; वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इंद्रनंदिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना चाहिये। संभव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो। अय्यपार्य ने भी अपने जिनेंद्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ का प्रणेता बतलाया है। बल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए हैं।

---

*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते हैं।

(३६) ग्रन्थ नं० २४९/ख

श्रीकल्याण-मन्दिर

कर्ता—कुमुदचन्द्राचार्य

विषय—स्तोत्र और यन्त्र मन्त्र
भाषा—संस्कृत (मंत्र तथा यन्त्र के विवरण में प्राकृत तथा हिन्दी भी है)

लम्बाई ७ इञ्च | चौड़ाई ५ इञ्च | पत्रसंख्या ४४

प्रारम्भिक भाग—

> कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।
> संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तुपोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ १ ॥
> यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम् ।
> तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥ २ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पास पासं पराणाणं । ॐ ह्रीं अर्हं णमो दुब्बं कराणं । मंत्र—ॐ नमो भगवते मम ईप्सितां कार्यसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा। यन्त्र—कमलाकार पंचकोण—२१ पांखड़ी मध्ये ऋद्धि मध्ये चन्यू, ऊपरि मंत्र दिन ६० जपै, प्रहर २ नित्यप्रति १०० जपै। पर्वत ऊपर, रक्त आसन, रक्त माला, पूर्व दिशामुख, धूप, कपूर, चन्दन, मृगमद से लाल रंग की लक्ष्मी लाभ मंत्र श्रीपार्श्वनाथ चूड़ारत्न करै, ब्रह्मचर्य पाले और एकान्त शुचि रहै ।

(आगे इसी मन्त्र का यन्त्र दिया है) ॥ १२ ॥

× × × ×

मध्य भाग (पत्र पृष्ठ २१, पंक्ति १)—

> स्वामिन् सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
> येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥ २२ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तवतवपयाणं । मंत्र—ॐ नमो पद्मावत्यै हम्ल्व्यूं नमः । यन्त्र—चम्पक पुष्पाकार पत्र अष्ट—९ मध्ये मन्त्राक्षराणि तदुपरि ऋद्धि, दिन २१, नित्य १००० जपै

बाग में अच्छा श्रेष्ठ फलनि जपै, आसन डाम (कुश), माला तुलसी, मुख नैर्ऋत्य कोण, धूप गुग्गुल, इंदीला घृत की देय गयो पुत्र नीपजै (कदम्बपुष्प) ॥ २२ ॥

(आगे चम्पक-वृक्षाकार में सुन्दर यंत्र बना हुआ है) ।

× × × ×

अन्तिम भाग :—

जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥ ४४ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः । मन्त्र—ॐ नमो धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः । यन्त्र—गुलाब पुष्पवत् पंच कर्णिका मध्ये ॐ कर्णिकायां ऋद्धि । तदुपरि मंत्र । दिन ४०, नित्य १००० जपै, लक्ष्मी प्राप्ति, आसन रक्त, माला विद्रुम, पूर्व मुख, धूप चन्दन मुख्य, कपूर पञ्चरस । प्रथम तो साधक जन ब्रह्मचर्य धारक हो, पञ्च अहिंसादि धर्म का धारी हो, लघु भुक्ति, दयावान हो, पवित्रातें चर्मांश्रित वस्तु घृत हींग आदि का त्यागी हो मन्त्र सिद्ध करे । मंत्र सिद्ध होने पर पद्मावती देवी का पूजन श्रावकाने भुक्त देय, चार प्रकार संघ दान दे । सर्व संकट टले, सर्वसिद्धि श्रीपार्श्वनाथ रत्न चूड़ा देय ॥ ४४ ॥

'भक्तामर' के समान इस स्तोत्र में भी ऋद्धि, मन्त्र, यन्त्र एवं साधनक्रम आदि प्रत्येक पद्य के अन्त में स्पष्ट दिये गये हैं । ग्रन्थ में कहीं मन्त्रादि विवरण-कर्ता का उल्लेख नहीं मिलता है । श्रीकुमुदचन्द्रजी केवल इस स्तोत्र के प्रणेता हैं ।

---

(३७) ग्रन्थ नं० २५०/ख

सिद्धचक्र

कर्त्ता—ललितकीर्ति भट्टारक

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इञ्च चौड़ाई ५। इञ्च पत्र संख्या ११६

प्रारम्भिक भाग—

प्रणम्य श्रीजिनाधीशं लब्धिसामस्त्यसंयुतम् ।
श्रीसिद्धचक्रयन्त्रस्याच्चांसिहस्त्रगुणां स्तुवे ॥ १ ॥

यजमान लक्षण— विनीतो बुद्धिमान् प्रीतो न्यायोपात्तधनी महान् ।
शीलादिगुणसम्पन्नो यष्टा सोऽत्र प्रशस्यते ॥ २ ॥

याजक लक्षण— देशकालविभागज्ञो निर्मदो बुद्धिमान् वरः ।
सद्धर्मादिगुणोपेतो याजकः सोऽत्र शस्यते ॥ ३ ॥

आचार्य लक्षण— दर्शनज्ञानचारित्रैः संयुतो ममतान्तगः ।
प्राज्ञः प्रशमसम्पन्नो गुरुः स्याच्छान्तिनिष्ठितः ॥ ४ ॥

मण्डप-लक्षण— निर्मलं पृथुलं घण्टातोरणतोरणान्वितम् ।
प्रलम्बपुष्पमालाढ्यं चतुर्द्वारं शुभमयुतम् ॥ ५ ॥
भेरीपटहकंसालतालमार्दलनिःस्वनैः ।
आकुलं, स्त्रैणगीताढ्यं मण्डपं कारयेद्बुधः ॥ ६ ॥

सामग्री लक्षण— स्वमात्योत्कर्षिणी पूता नेत्रमनःसहारिणी ।
सामग्री शस्यते सद्भिर्निर्विघ्नानन्दकारिणी ॥ ७ ॥

× × ×

गद्य भाग (पूर्वपृष्ठ ६६, पंक्ति १)

जयमाल— देवाधीशैर्महीशैः फणिपतिभिरिह प्रत्यहं पूज्यपादा
नर्हत्सिद्धानुगत्रीस्त्रिविधमुनिवरान् सूर्युपाध्यायसाधून् ।
दोषातीतानभिष्टान् निजगुणगणभूषणैर्भूषितांस्तान्
मत्या दृग्बोधवृत्तादिभिरपि सहितान्संस्तुवे सद्गुणाप्त्यै ॥ १ ॥
सदनन्तचतुष्टयगुणविलास हतघातिचतुष्टयकर्मपाश ।
सकलातिशयादिसुगुणसमृद्ध स्वक(?)मर्हन् जिन जय जय सुबुद्ध ॥ २
जय धर्मोपदेशकृतगौरसूर जय विश्वालोकनपरमशूर ।
जय जय सर्वोत्तमसुसमृद्ध सिद्धाधिप जय जय शुद्ध बुद्ध ॥ ३ ॥
जय पञ्चाचारधरणधीर जय शिष्यानुग्रहकरणवीर ।
स्थितकल्पदशादिसुगुणसमृद्ध जय सूरिवर सतत प्रबुद्ध ॥ ४ ॥
एकादशांगधृतकण्ठहार जय लब्धचतुर्दशपूर्वसार ।
जय श्रुतजलनिधिगुणसमृद्ध जय पाठक जय सतत प्रबुद्ध ॥ ५ ॥
आरंभपरिग्रहविनिर्मुक्त जय दर्शनबोधचारित्ररक्त ।
जय मूलोत्तरगुणनिधिसमृद्ध जय साधो जय सततं प्रबुद्ध ॥ ६ ॥
जय सम्यग्दर्शनधन्धुरस्त तपसा सह रत्नत्रयपवित्र ।
अष्टादशपरमगुणभेदपूर्ण सचितमुनिवरस्तुतकर्मचूर्ण ॥ ७ ॥

पञ्चैतान्परमेष्ठिनः सुतपसा रत्नत्रयेणान्वितान्
संसाराम्बुधितारकान् भुविजनाः ध्यायन्ति ये नित्यशः।
तं देवेन्द्रपदं नरेन्द्रपदवींप्राप्ता गुणैर्भद्रकैः
सार्द्धं जन्मजरादिदुःखरहितं पश्चाल्लभन्ते शिवम् ॥ ८ ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

श्रीकाष्ठसंघे ललितादिकीर्त्तिना भट्टारकेणैव विनिर्मिता वरा।
नामावली पद्यनिबद्धरूपिका भूयात्सतां मुक्तिपदाप्तिकारणम् ॥

इस 'सिद्धचक्रपूजा' के रचयिता काष्ठासंघीय भट्टारक ललितकीर्तिजी हैं। इन्हों ने ही आदिपुराण की एक संस्कृत टीका भी लिखी है। इनके अतिरिक्त त्रिलोकसार-पूजा नामका एक और ग्रन्थ इनका मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ सिद्धचक्रपूजा में रचयिता के नाम संघ और पद के सिवा और कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। हां, आदिपुराण की टीका की निम्न लिखित प्रशस्ति में अपने गुरु का नाम दिया है।

४ ८ ० १
वर्षे सागरनागभोगिकुमिते मार्गे च मासेऽसिते
पक्षे पक्षतिसत्तिथौ रविदिने टीका कृतेयं वरा।
काष्ठासंघवरे च माथुरवरे गच्छे गणे पुष्करे
देवश्रीजगदादिकीर्तिरभवत्ख्यातो जितात्मा महान् ॥
तच्छिष्येण च मन्दतान्वितधिशा भट्टारकत्वं यता
शुंभद्रे(?) ललितादिकीर्त्यभिधया ख्यातेन लोके ध्रुवम्।
राजच्छ्रीजिनसेनभाषितमहाकाव्यस्य भक्त्या मया
संशोध्यैवमुपग्रतां बुधजनैः शान्ति विधायादरात् ॥

'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' में पं० नाथूरामजी प्रेमी ने इनका समय वि० सं० ६०१।१ दिया है। किन्तु उल्लिखित प्रशस्ति में दिये गये समय से इसका विशेष अन्तर पड़ जाता है।

ललितकीर्त्तिजी का यह टीकाग्रन्थ ताड़पत्राङ्कित कन्नडाक्षरमें भवन में मौजूद है। उन्हों ने अपने पूज्य गुरु का नाम ऊपर श्रीजगत्कीर्त्ति देव लिखा है। प्रायः यही जगत्कीर्त्ति 'एकीभावनोद्यापना' के रचयिता हों। प्रस्तुत कृति की भाषा ललित एवं विशुद्ध है।

---

(३८) ग्रन्थ नं० $\frac{२११}{ख}$

लोकतत्त्व-विभाग

कर्त्ता—श्रीसिंहसूरि

विषय—भूगोल

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इन्च | चौड़ाई ८। इन्च | पत्रसंख्या

प्रारम्भिक भाग—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान् ।
व्याख्यास्यामि समासेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १ ॥
क्षेत्रं कालस्तथा तीर्थं प्रमाणपुरुषैः सह ।
चरितञ्च महत्तेषां पुराणं पञ्चधा विदुः ॥ २ ॥
समन्ततोऽप्यनन्तस्य नियतो मध्यमाश्रितः ।
त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्यग्लोकोऽस्य मध्यगः ॥ ३ ॥
जम्बूद्वीपोऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यगः ।
तस्माद्विभागो लोकस्य तिर्यगूर्ध्वोऽधरस्तथा ॥ ४ ॥
तिर्यग्लोकस्य बाहुल्यं मेर्वायामसमं स्मृतम् ।
तस्मादूर्ध्वं भवेदूर्ध्वो ह्यधस्तादधरोऽपि च ॥ ५ ॥

× × ×

मध्यभाग (पूर्वपृष्ठ ३७, पंक्ति १२)

शुक्रो जीवो बुधो भौमो राहुरिष्टशनैश्चराः ।
धूमाग्निकृष्णनीलाः स्युः रक्तः शीतश्च केतवः ॥
ध्वजकेतुर्जलाख्यश्च पुष्पकेतुरिति ग्रहाः ।
प्रतिचन्द्रः ग्रहाः पञ्च कृत्तिकादीनि भानि च ॥
षट्तारा कृत्तिका प्रोक्ता भाहस्था व्यञ्जनोपमा ।
शकटोद्धिसमा ज्ञेया रोहिण्यः पञ्चतारकाः ॥

मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिस्रः सौम्यस्य तारकाः ।
दीपिकावद्भवत्याद्रा एकतारा च सोदिता ॥
पुनर्वसोश्च षट्तारा व्याख्यातास्तोरणोपमाः ।
अनुराधाः षडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ताः ॥
वीणाशृंगसमा ज्येष्ठा तिस्रस्तस्याश्च तारकाः ।
मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारकाः ॥
आप्यं दुष्कृतवापीवच्चतस्रस्तस्य तारकाः ।
वैश्वस्य सिंहकुंभाभाश्चतस्रस्तारका ध्रुवम् ॥
अभिजिद्गजकुंभाभस्तिस्रस्तस्य च तारकाः ।
मृदंगसदृशो दृष्टः श्रवणश्च त्रितारकः ॥
पंचतारा धनिष्ठा च पतत्पक्षिसमाश्च ताः ।
एकादशशतं तारा वारुणासैन्यवच्च ताः ॥
पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिपूर्वतनूपमे ।
उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनोऽपरगात्रवत् ॥
रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारकाः ।
अश्वनी पञ्चतारा स्यान्मताः साश्वशिरस्समा ॥
भरण्योऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपाषाणसंस्थिताः ।
सैकादशशतं चैकसहस्रं स्वस्वतारकाः ॥
प्रमाणेनाहतं कृत्तिकादितारा प्रमा भवेत् ।
नवाभिजिन्मुखास्ताराः स्वातिः पूर्वोत्तरेति च ॥
द्वादशप्रथमे मार्गे चरन्तीन्दोर्मता इति ।
मघापुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि ॥
रोहिणी च तथा चित्रा षष्ठे मार्गे च कृत्तिका ।
विशाखा चाष्टमे चानुराधा च दशमे पथि ॥
ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे शेयाः पञ्चदशेष्टकाः ।
हस्तमूलत्रिकं चैव मृगशीर्षद्विकं तथा ॥
पुष्यद्वितयमित्यष्टौ शेषताराः प्रकीर्तिताः ।
कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्यं यन्त्यष्टमा मघाः ॥
उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेवं तु योजयेत् ।
भरणी स्वातिरश्लेषा चार्द्राशतभिषक्तथा ॥

(३८) ग्रन्थ नं० $\frac{२५१}{ख}$

लोकतत्त्व-विभाग

कर्त्ता—श्रीसिंहसूरि

विषय—भूगोल
भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इञ्च | चौड़ाई ८। इञ्च | पत्रसंख्या

प्रारम्भिक भाग—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान् ।
व्याख्यास्यामि समासेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १ ॥
क्षेत्रं कालस्तथा तीर्थं प्रमाणपुरुषैः सह ।
चरितञ्च महत्तेषां पुराणं पञ्चधा विदुः ॥ २ ॥
समन्ततोऽप्यनन्तस्य वियतो मध्यमाश्रितः ।
त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्यग्लोकोऽस्य मध्यगः ॥ ३ ॥
जम्बूद्वीपोऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यगः ।
तस्माद्विभागो लोकस्य तिर्यगूर्ध्वोऽधरस्तथा ॥ ४ ॥
तिर्यग्लोकस्य बाहुल्य मेवायामसमं स्मृतम् ।
तस्मादूर्ध्वं भवेदूर्ध्वो ह्यधस्तादधरोऽपि च ॥ ५ ॥

× × ×

मध्यभाग (पूर्वपृष्ठ ३७, पंक्ति १२)

शुक्रो जीवो बुधो भौमो राहुरिष्टशनैश्चरः ।
धूमाभिकृष्णनीलाः स्युः रक्तः शीतश्च केतवः ॥
श्वेतकेतुर्जलाख्यश्च पुष्पकेतुरिति ग्रहाः ।
प्रतिचन्द्रं ग्रहा एते कृत्तिकाद्यानि भानि च ॥
षट्ताराः कृत्तिका प्रोक्ता आकृत्या व्यजनोपमा ।
शकटाग्निसमा ज्ञेया रोहिण्यः पञ्चतारका ॥

मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिस्रः सौम्यस्य तारकाः ।
दीपिकावद्भवत्याद्रा एकतारा च सोदिता ॥
पुनर्वसोश्च षट्तारा व्याख्यातास्तोरणोपमाः ।
अनुराधाः षडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ताः ॥
वीणाशृंगसमा ज्येष्ठा तिस्रस्तस्याश्च तारकाः ।
मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारकाः ॥
आप्यं दुष्कृतवापीवच्चतस्रस्तस्य तारकाः ।
वैश्वस्य सिंहकुंभाभाश्चतस्रस्तारका ध्रुवम् ॥
अभिजिद्गजकुंभाभस्तिस्रस्तस्य च तारकाः ।
मृदंगसदृशो दृष्टः श्रवणश्च त्रितारकः ॥
पंचतारा धनिष्ठा च पतत्पक्षिसमाश्च ताः ।
एकादशशतं तारा वारुणासैन्यवच्च ताः ॥
पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिपूर्वतनूपमे ।
उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनोऽपरगात्रवत् ॥
रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारकाः ।
अश्विनी पञ्चतारा स्यान्मताः साश्वशिरस्समा ॥
भरण्योऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपाषाणसंस्थिताः ।
सैकादशशतं चैकसहस्रं स्वस्वतारकाः ॥
प्रमाणेनाहतं कृत्तिकादिताराप्रमा भवेत् ।
नवाभिजिन्मुखास्ताराः स्वातिः पूर्वोत्तरेति च ॥
द्वादशप्रथमे मार्गे चरन्तीन्दोर्मता इति ।
मघापुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि ॥
रोहिणी च तथा चित्रा षष्ठे मार्गे च कृत्तिका ।
विशाखा चाष्टमे चानुराधा च दशमे पथि ॥
ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे ज्ञेयाः पञ्चदशोष्टकाः ।
हस्तमूलत्रिकं चैव मृगशीर्षद्विकं तथा ॥
पुष्यद्वितयमित्यष्टौ शेषताराः प्रकीर्तिताः ।
कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्यं यन्त्यष्टमा मघाः ॥
उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेवं तु योजयेत् ।
भरणी स्वातिरश्लेषा चार्द्रा शतभिषक्तथा ॥

ज्येष्ठेति षड् जघन्याः स्युरुत्कृष्टास्त्रोत्तरात्रयम् ।
पुनर्वसु विशाखा च रोहिणी चेति षट् पुनः ॥
अश्विनी कृत्तिका चानुराधा चित्रा मघा तथा ।
मूलं पूर्वत्रिकं पुष्यं हस्त श्रवणरेवती ॥
मृगशीर्षं धनिष्ठेति त्रिपञ्च च मध्यमाः ।
रविर्जघन्यभे तिष्ठेत् सप्त द्वात्रिंशमांशकम् ॥
षड्दिनं मध्यमोत्कृष्टे भे तद्वृद्धित्रिगुणं क्रमात् ।
अभिजित्रामभे नेन सपञ्चमचतुर्दिनम् ॥
सप्तषष्ट्यात्मशून्यत्रिपञ्चमुहूर्ते विधुभ्रमेत् ।
चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे दिनार्धं मध्यमर्क्षके ॥
दिवस चोत्तमे भे च तिष्ठेत् सार्धदिनं ध्रुवम् ।
योगमानां सर्वेस्त्रिंशत् पद्धिश्च भवति क्रमात् ॥
जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रपरिमण्डलम् ।
अभिजि मण्डलस्तेत्रमध्यक्रकयोजनम् ॥
घटिका अपि तासां स्युः समसप्त्या हि मण्डले ।

× × ×

अन्तिम भाग—

[illegible]

कृष्णा दासतपाऽग्रना विरचितं कर्मापि सिद्धं मुनिः
सिद्धिं याति विहाय जन्मगहनं शार्दूलविक्रीडितम् ॥
भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्धमानार्हता
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः ।
आचार्यावलिकागतं विरचितं सिंहसूरर्षिणा
भाषाया परिवर्तनेन निपुणैः सम्मन्यतां साधुभिः ॥
वैश्ये स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे ।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पार्श्वपाण्ड्य राष्ट्रे
शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दी ॥

संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥
पञ्चादशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेष छन्दसानुष्टुभेन च ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ।

इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुषक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग एवं मोक्षविभाग नाम के ग्यारह अधिकार या अध्याय हैं। संक्षेप में यह त्रैलोक्यसार के ढंग का ग्रन्थ है। इसके अन्तिम श्लोक ये हैं—

"वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिक नामनि पाण(पाराड्य)राष्ट्रे,
शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥१॥"

"संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥२॥"

"पञ्चादशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेषः छन्दसानुष्टुभेन च ॥३॥"

उल्लिखित प्रथम श्लोक का यह अर्थ होता है कि जिस समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र में शनि, वृषराशि में गुरु तथा उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था, एवं शुक्लपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा थी) उस समय पाण (पाराड्य) राष्ट्र के पाटलिग्राम में इस शास्त्र का प्रणयन पहले सर्वनन्दी नामक मुनि ने किया।

श्लोकगत पाटलिग्राम शब्द के फुटनोट में जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ ५२६ में पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने पाटलिग्राम को पाटलिपुत्र मान कर लिखा है कि 'पाटलिपुत्र पटने का पुराना नाम है'। परन्तु वास्तव में यह पाटलिग्राम प्राचीन पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) न होकर प्राचीन पाराड्यदेशान्तर्गत वर्तमान कड्डलोर (Cuddalore) है।† इसे 'पेरियपुराण' आदि ग्रन्थों में त्रिप्पादिरिपुलियूर (Trippadiripuliyur) भी कहा गया है।

† "Some contributions of South India to Indian Culture" By Prof. Krishna Swami Iyangar.

ज्येष्ठेति षड् अघन्याः स्युरुत्कृष्टाश्चोत्तरात्रयम् ।
पुनर्वसु विशाखा च रोहिणी चेति षड् पुनः ॥
अश्विनी कृत्तिका चानुराधा चित्रा मघा तथा ।
मूलं पूर्वत्रिकं पुष्य हस्तं भरणीरेवती ॥
मृगशीर्षं धनिष्ठेति त्रिपञ्च च मध्यमा ।
रविर्जघन्यभे तिष्ठेत् सप्त द्वादशांशकम् ॥
षड्दिनं मध्यमोत्कृष्टे भे तद्द्विगुणं क्रमात् ।
अभिजिन्नामभे नेन सपञ्चमचतुर्दिनम् ॥
सततस्यास्यमुत्यजिरस्मुहूर्तं विधुश्चरेत् ।
चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे दिनार्धं मध्यमर्क्षके ॥
दिवसं चोत्तमे भे च तिष्ठेत् सार्धदिनं ध्रुवम् ।
योजनानां भवेच्छितात् पञ्चिश्च भवति क्रमात् ॥
जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रपरिमण्डलम् ।
अभिजि मण्डलक्षेत्रमष्टावशाकयोजनम् ॥
घटिका अपि तासां स्युः समसंख्या हि मण्डले ।

× × ×

अन्तिम भाग—

युक्तः प्राणिदयागुणेन विमले सत्यादिभिश्च व्रते
मिथ्यादृष्टिकषायनिश्चयशुचिर्जितेन्द्रियाणां वशम् ।
दग्ध्वा दीप्ततपोऽग्निना विरचितं कर्मापि सिद्धः मुनिः
सिद्धिं याति विहाय जन्मगहनं शार्दूलविक्रीडितम् ॥
भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्धमानार्हता
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः ।
आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मन्यतां साधुभिः ॥
वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे ।
ग्रामे च पाटलिकनामनि पाणराष्ट्रे
शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दी ॥

संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥
पञ्चादशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेष छन्दसानुष्टुभेन च ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ।

इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुषक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग एवं मोक्षविभाग नाम के ग्यारह अधिकार या अध्याय हैं। संक्षेप में यह त्रैलोक्यसार के ढंग का ग्रन्थ है। इसके अन्तिम श्लोक ये हैं—

"वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलिक नामनि पाण(पाण्ड्य)राष्ट्रे,
शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥१॥"

"संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥२॥"

"पञ्चादशशतान्याहुः षट्त्रिंशदधिकानि वै ।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेषः छन्दसानुष्टुभेन च ॥३॥"

उल्लिखित प्रथम श्लोक का यह अर्थ होता है कि जिस समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र में शनि, वृषराशि में गुरु तथा उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था, एवं शुक्लपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा थी) उस समय पाण (पाण्ड्य) राष्ट्र के पाटलिग्राम में इस शास्त्र का प्रणयन पहले सर्वनन्दी नामक मुनि ने किया।

श्लोकगत पाटलिग्राम शब्द के फुटनोट में जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ ५२६ में पण्डित नाथूरामजी प्रेमी ने पाटलिग्राम को पाटलिपुत्र मान कर लिखा है कि 'पाटलिपुत्र पटने का पुराना नाम है'। परन्तु वास्तव में यह पाटलिग्राम प्राचीन पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) न होकर प्राचीन पाण्ड्यदेशान्तर्गत वर्तमान कडलोर (Cuddalore) है।† इसे 'पेरियपुराण' आदि ग्रन्थों में तिरुप्पादिरिपुलियूर (Trippadiripuliyur) भी कहा गया है।

† "Some contributions of South India to Indian Culture" By Prof. Krishna Swami Iyangar.

क्योंकि उल्लिखित द्वितीय श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि 'कांची के राजा सिंहवर्मा के राज्यारोहण के बाईसवें संवत्सर और शक ३८० वें वर्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ'। कांचीश राजा यह सिंहवर्मा पल्लववंश के तत्कालीन शासक हैं; अतः लोकविभाग का रचनास्थान प्राचीन पाटलिपुत्र अर्थात् वर्तमान पटना न होकर दक्षिण भारत का उक्त स्थान मानना ही समुचित है। दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक में जो 'पाणराष्ट्र' शब्द आया है उसको कितने ही विद्वान् अभी तक पाण या बाण राष्ट्र के रूप में ही मानते आ रहे हैं। किन्तु वास्तव में यह पाण या बाण राष्ट्र न हो कर 'पाण्ड्य राष्ट्र' हो होना चाहिये, जिसकी राजधानी सिंहवर्मा के काल में भी कांची नगरी ही रही। ऊपर दिये ग्रन्थ के तीसरे पद्य से सिद्ध होता है कि इस लोक-विभाग में अनुष्टुप् छन्द के हिसाब से १५३६ पद्य हैं। साथ ही साथ निम्नलिखित पद्य तथा उक्त प्रथम पद्य के अन्तिम पाद से यह भी ज्ञात होता है कि इसके मूल प्राकृत के रचयिता मुनि सर्वनंदी हैं। सिंहनंदी केवल इसके संस्कृत भाषान्तरकार हैं :—

> "भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्द्धमानार्हता
> यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः ।
> आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
> भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानितं साधुभिः ॥"

इस ग्रन्थ में जो शक ३८० [वि० सं० ५१२] रचनाकाल दिया गया है, वह मूल प्राकृत लोकविभाग का है; न कि इस सिंहसूरिकृत संस्कृत लोकविभाग का। संभव है कि इसका रचनाकाल या तो लिखा ही नहीं गया है या लेखकों के प्रमाद से छूट गया है। इस संस्कृत लोकविभाग में 'तिलोय-पण्णत्ति' और 'आदिपुराण' आदि के अतिरिक्त 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ के भी उद्धरण मिलते हैं। इसलिये निर्विवाद सिद्ध होता है कि यह लोकविभाग विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। हाँ, इसका निश्चित समय अभी विचारणीय है।

उल्लिखित पंक्तियों का आशय यह हुआ कि उपलब्ध यह संस्कृत 'लोकविभाग' अधिक प्राचीन नहीं है। प्राचीनता से उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह शक संवत् ३८० [वि० सं० ५१२] के एक बहुत पुराने प्राकृत लोकविभाग का संस्कृत रूपान्तर है। परन्तु इस बात का निर्णय होना अभी बाकी है कि यह त्रिलोकसार से कितने समय पीछे बना। अगर इसके कर्ता श्रीसिंह सूरि जी के अन्य किसी ग्रन्थ का पता लगता तो उससे शायद इसका निर्णय हो जाता। मेरे जानते सिंहसूरि-नामक ग्रन्थकर्ता दो-तीन हुए हैं। यह सिंहसूरि उनमें से अन्यतम हैं या भिन्न हैं इसका भी निर्णय होना अवशिष्ट है।

प्रस्तुत लोकविभाग के कर्त्ता सिंहसूरि जी ने अपनी इस कृति में अपनी गुरुपरम्परा का कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह लोकविभाग जैनभूगोल के उल्लेखनीय ग्रन्थों में से एक है। बल्कि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ अपनी सरलता एवं शब्द-सुन्दरता से रचयिता के संस्कृत-पाण्डित्य को अभिव्यक्त करने से बाज नहीं आता। किसी जैनप्रकाशन-संस्था को इसे प्रकाशित कर जैनभूगोल-संबंधी उलझनों को सुलझाने में सहायक बनना चाहिये।

---

(३७) ग्रन्थ नं० २५२/ख

श्रीपुराण

कर्त्ता—सकलकीर्त्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इञ्च चौड़ाई ६ इञ्च पत्र संख्या ३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमते सकलज्ञानसाम्राज्यपदमीयुषे।
धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसारभीमुषे ॥१॥
पुराणं मुनिमानम्य जिनं वृषभमच्युतम्।
महतस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते ॥२॥
अनादिनिधनः कालो वर्तनालक्षणो मतः।
लोकमात्रः स सूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः ॥३॥
वर्त्तितो द्रव्यकालेन वर्तनालक्षणेन यः।
कालः पूर्वापरीभूतो व्यवहाराय कल्पते ॥४॥
उत्सर्पिण्यावसर्पिण्यौ द्वौ भेदौ तस्य कीर्त्तितौ।
उत्सर्पादवसर्पाच्च बलायुर्देहवर्ष्मणाम् ॥५॥
कोटीकोट्यो दशैकस्य प्रमा सागरसंख्यया।
शेषस्याप्येवमेवेष्टा तावुभौ कल्प इष्यते ॥६॥

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ १६, पंक्ति ११)

अथ कालागरूद्दाममधूपधूमाधिवासिते ।
मणिप्रदीपिकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥
वासगेहेऽन्यदा दिव्ये तल्पे मृदुनि हारिणि ।
प्रियास्तनतटस्पर्शसुखसंमीलितलोचनः ॥
तत्र वातायनद्वारपिधानाल्पकधूमके ।
कैलाससत्कारधूपोद्गमेन क्षणमूर्च्छिनी ॥
निद्रोद्भूतासरौ स्थित्यावन्त किञ्चिदिवाकुलौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतुः ॥
जम्बूद्वीपे महामेरोरुत्तरां दिशमाश्रिताः ।
सन्त्युत्तरकुरवो नाम स्वर्गश्रीपरिहासिनः ॥
नवमासं स्थिता गर्भे रत्नगर्भगृहोपमे ।
यत्र दम्पतितामेत्य जायन्ते दानिनो नराः ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

मनःपर्ययज्ञानमप्यस्य सद्यः समुत्पन्नमथ केवलं चानु तस्मात् ।
तदेवाभवद्व्यक्तता तादृशी सा विचित्रा गिरां निर्वृते प्रातिरत्न ॥
परिचितयतिहंसो धर्मवृष्टिं विकिरन्
नभसि हृतनिशो निर्मलस्तुङ्गवृत्तिः ।
कल्पमविकलमद्य भव्यसस्येषु कुर्वन्
व्यहरदखिलदेशाञ्छान्तदेशास्तमेघः ॥
विहृत्य सुचिरं विनेयजनतोपकृत्त्वायुषो-
मुहूर्तपरिमास्थितौ विहितसत्क्रियौ निश्च्युतौ ॥
तनुत्रितयबन्धनस्य गुणसागरस्फूर्तिं स्फुर-
जगत्त्रयशिखामणिः सुखनिधिः स्वधाम्नि स्थितः ॥
सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्याः
सत्यं गताः सकलजन्तुषु शान्तचित्ताः ।
कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा
निर्वाणमापुरमितं मुनयो गणीन्द्राः ॥

यो नाभेस्तनयोऽपि विश्वविदुषां पूज्यः स्वयम्भूरिति
त्यक्त्वाशेषपरिग्रहोऽपि सकलः स्वामीति यः शब्द्यते ।
मध्यस्थोऽपि विनेयसत्वसमितेरेवोपकारी मतो-
निर्दानोऽपि बुधैरुपास्यचरणो यः सोऽस्तु वः शान्तये ॥

इस 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण अथवा अन्तिम भाग आदि में कहीं भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी कुछ भी चर्चा नहीं की है। फिर भी यह ग्रन्थ वि० सं० १४५६ अर्थात् १५वीं शताब्दी वाले सकलकीर्त्ति का माना जाता है। भट्टारक सकलकीर्त्ति जैनसाहित्यक्षेत्र में बड़े ही सफल लेखक माने गये हैं। बल्कि इनके प्रश्नोत्तरश्रावकाचारादि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में एक जगह इनके सम्बन्ध में यों लिखा मिलता है— "भट्टारकपदारूढः सकलाद्यन्तकीर्त्तिभाक् । येन शास्त्राम्बुधिः सम्यक् वर्धितो निजलीलया ॥" इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप भट्टारकपदारूढ़ होते ही बड़ी आसानी से जैन साहित्य-भाण्डार को भरने लगे। 'प्रश्नोत्तरमाला' में श्रीसकलभूषण ने इन्हें "पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी" इस विशेषण के द्वारा सादर स्मरण किया है। ब्रह्मचारी जिनदास जी ने अपने 'पद्मपुराण' तथा 'हरिवंशपुराण' में आपको "महाकवित्वादिकलाप्रवीणः" कहा है। 'पाण्डव-पुराण' में भट्टारक शुभचन्द्र जी इनकी प्रशंसा में यों लिख रहे हैं कि "कीर्त्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा ।" इसी प्रकार और भी बहुत से ग्रन्थप्रणेताओं ने सकलकीर्त्ति को महान् ग्रन्थकार होने को लिखा है। इन की लेखनी बहुमुखी रही, अत एव प्रायः प्रत्येक विषय पर इनकी रचना उपलब्ध होती है। इस नाम के एक दूसरे भी भट्टारक हुए हैं, जो कि सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक के पट्ट पर आसीन हुए थे। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख "जैनहितैषी" भाग ११, अङ्क १२ में मिलता है। पर इस द्वितीय सकलकीर्त्ति जी के पाण्डित्य-द्योतक कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता है; इसोलिये इनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है।

प्रथम सकलकीर्त्ति जी पद्मनन्दी के पट्ट पर आरूढ़ हुए थे। इनके बाद क्रमशः इस पट्ट पर श्रीभुवनकीर्त्ति और श्रीज्ञानभूषण पट्टाधिकारी बने। कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में इस सकलकीर्त्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये गये हैं:—

"आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यस्तस्मादनुक्रमादभूत् ।
स सकलकीर्त्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वरः ॥
येनोद्धृतो गतो धर्मो गुर्जरे वाग्वरादिके ।
निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा ॥
तस्माद्भुवनकीर्त्तिः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।
विजयकीर्त्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥"

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ १६, पंक्ति ११)

अथ कालागरूद्दामधूपधूमाधिवासिते ।
मणिप्रदीपिकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥
वासगेहेऽन्यदा शिश्ये तल्पे मृदुनि हारिणि ।
प्रियास्तनतटस्पर्शसुखमीलितलोचनः ॥
तत्र वातायनद्वारपिधानारुद्धधूमकः ।
केशसंस्कारधूपोद्यद्धूमेन तथामूर्च्छितौ ॥
विरुद्धोच्छ्वासदौःस्थित्यादन्त्यं किञ्चिदिवाकुलौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतुः ॥
जम्बूद्वीपे महामेरोरुत्तरां दिशमाश्रिता ।
सन्त्युदक्कुरवो नाम स्वर्गश्रीपरिहासिनः ॥
नवमास स्थिता गर्भे रत्नगर्भगृहोपमे ।
यत्र दम्पतितामेत्य जायन्ते भागिनो नराः ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

मनःपर्ययज्ञानमप्यस्य सद्यः समुत्पन्नतत्केवलं चाशु तस्मात् ।
तदेवाभवद्भव्यता तादृशी स्या विचित्राङ्गिनां निर्वृतः प्रासिद्ध ॥
परिचितयतिहंसो धर्मवृष्टिं निषिञ्चन्
नभसि कृतनिवेशो निर्मलस्तुङ्गवृत्तिः ।
फलमविकलमद्य भव्यशस्येषु कुर्वन्
व्यहरदखिलदेशान्प्रावृडेवात्तमेघः ॥
विहृत्य सुचिरं विनेयजनतोपकृत्स्वायुषो-
मुहूर्तपरिमास्थितो विहितसत्क्रियो विच्युतो ॥
तनुत्रितयबन्धनस्य गुणसागरमूर्तेः स्फुर-
ज्जगत्त्रयशिखामणिः सुखनिधिः स्वधाम्नि स्थितः ॥
सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्याः
सख्यं गताः सकलजन्तुषु शान्तचित्ताः ।
कालक्रमेण यमशालगुणाभिपूर्णा
निर्वाणमापुरमिता गुणिनो गणेन्द्राः ॥

योनाभेस्तनयोऽपि विश्वविदुषां पूज्यः स्वयम्भूरिति
त्यक्त्वाशेषपरिग्रहोऽपि सकलः स्वामीति यः शब्यते ।
मध्यस्थोऽपि विनेयसत्वसमितेरेवोपकारी मतो-
निर्दानोऽपि बुधैरुपास्यचरणो यः सोऽस्तु वः शान्तये ॥

इस 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण अथवा अन्तिम भाग आदि में कहीं भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी कुछ भी चर्चा नहीं की है। फिर भी यह ग्रन्थ वि० सं० १४५६ अर्थात् १५वीं शताब्दी वाले सकलकीर्त्ति का माना जाता है। भट्टारक सकलकीर्त्ति जैनसाहित्यक्षेत्र में बड़े ही सफल लेखक माने गये हैं। बल्कि इनके प्रश्नोत्तरश्रावकाचारादि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में एक जगह इनके सम्बन्ध में यों लिखा मिलता है— "भट्टारकपदारूढः सकलाद्यन्तकीर्त्तिभाक् । येन शास्त्राम्बुधिः सम्यक् वर्धितो निजलीलया ॥" इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप भट्टारकपदारूढ़ होते ही बड़ी आसानी से जैन साहित्य-भाण्डार को भरने लगे। 'प्रश्नोत्तरमाला' में श्रीसकलभूषण ने इन्हें "पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी" इस विशेषण के द्वारा सादर स्मरण किया है। ब्रह्मचारी जिनदास जी ने अपने 'पद्मपुराण' तथा 'हरिवंशपुराण' में आपको "महाकवित्वादिकलाप्रवीणः" कहा है। 'पाण्डव-पुराण' में भट्टारक शुभचन्द्र जी इनकी प्रशंसा में यों लिख रहे हैं कि " कीर्त्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा ।" इसी प्रकार और भी बहुत से ग्रन्थप्रणेताओं ने सकलकीर्त्ति को महान् ग्रन्थकार होने को लिखा है। इन की लेखनी बहुमुखी रही, अत एव प्रायः प्रत्येक विषय पर इनकी रचना उपलब्ध होती है। इस नाम के एक दूसरे भी भट्टारक हुए हैं, जो कि सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक के पट्ट पर आसीन हुए थे। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख "जैनहितैषी" भाग ११, अङ्क १२ में मिलता है। पर इस द्वितीय सकलकीर्त्ति जी के पाण्डित्य-द्योतक कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता है; इसीलिये इनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है।

प्रथम सकलकीर्त्ति जी पद्मनन्दी के पट्ट पर आरूढ़ हुए थे। इनके बाद क्रमशः इस पट्ट पर श्रीभुवनकीर्त्ति और श्रीज्ञानभूषण पट्टाधिकारी बने। कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में इस सकलकीर्त्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये गये हैं:—

"आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यस्तस्मादनुक्रमादभूत् ।
स सकलकीर्त्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वरः ॥
येनोद्धृतो गतो धर्मो गुर्जरे वाग्वरादिके ।
निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा ॥
तस्माद्भुवनकीर्त्तिः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।
विजयकीर्त्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥"

इन पद्यों से ज्ञात होता है कि सकलकीर्ति जी ने गुजरात और वागड आदि देशों में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मंगलाचरण श्रीमद्भगवज्जिनसेनाचार्य-कृत महापुराण का ज्यों का त्यों है। इससे अनुमान होता है कि श्रीपुराण का आदर्श महापुराण ही है। इस मंगलाचरण के प्रकृत रहस्य का पता लगाने के लिये श्रीपुराण का साद्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसमें प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ का चरित्र चित्रित है, इसीलिये लोग इसे आदिपुराण भी कहते हैं। श्रीपुराण की रचनाशैली सरल, सुन्दर एवं भावपूर्ण है।

---

(३८) ग्रन्थ नं० $\frac{२४३}{ख}$

दशभक्त्यादि महाशास्त्र

कर्त्ता—मुनीन्द्र वर्द्धमान

विषय—भक्ति आदि

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च | चौड़ाई ६॥। इञ्च | पत्रसंख्या १११

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीवर्द्धमानाय चिद्रूपाय स्वयम्भुवे।
सद्धर्मामृतवर्षाय समस्तसारवेदिने ॥१॥
रागद्वेषसमृद्धिरुद्धसमता भूतेषु सत्त्वाश्च
सर्वेषु प्रमदाजनेषु निरति कार्पण्यहानिः परा।
सद्वृत्तिर्जिनसिद्धशास्त्रमुनिषु प्रख्यातयोगाद्धति
स्तत्सामायिकसंयुते यतिजने सञ्जायते सर्वदा ॥२॥
नामादिं षड्विधं प्रोक्तं रागद्वेषादिवारणम्।
तद्वर्जनं कदा मे स्यात् सामायिकमनुत्तमम् ॥३॥
सम्यक्त्वज्ञानसंयुक्तसंयमाढ्यतपोयुत।
परिणामः कदा मे स्यात् सर्वसावद्यदूरगः ॥४॥

ध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ८७ पंक्ति ६)—

यंत्रं सद्दशधर्मलक्षणयुतं ख्यातं जगन्मङ्गलम्
विद्वल्लोकसमर्चितं सुशरणं संसारविध्वंसकम्।
जीवन्मुक्तिसुखप्रदं निरुपमं क्षान्त्यादिशब्दोज्ज्वलम्
भक्त्याहूय सुपीठिकोपरि तले संस्थाप्य घाराधये ॥ १ ॥
जलगन्धसदक्षकुसुमैश्चरुप्रदीपैः सुधूपफलनिकरैः।
संपूजयामि यंत्रं क्षान्त्यादिपदांकितं भक्त्या ॥ २ ॥
गंगाद्युद्भवनीरेण कंजोत्पलसुगन्धिना।
क्षान्त्यादिपदसंयुक्तं यंत्रं प्रक्षालयाम्यहम् ॥ ३ ॥
नारिकेलोदकैः स्वच्छैः सर्वहृत्तापहारिभिः।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ४ ॥
कदलीकृतपीयूषैर्धवलेक्षुरसैः शुभैः।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ५ ॥
सन्तप्तकनकद्रावसंकाशैः पुष्कलैर्घृतैः।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ६ ॥
पयोभिः पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिकाविशदैरलम्
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यन्त्रं संस्नापये मुदा ॥ ७ ॥
संतानिकांचितैः स्निग्धैर्दधिभिः सारगन्धिभिः
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ८ ॥
कुम्भैश्चातुष्टयैः शुभ्रैः स्रग्मालारंजिताननैः।
स्नापये यंत्रममलं क्षान्त्यादिपदभूषितम् ॥ ९ ॥
वासनाप्रकृतिगन्धबन्धुरैर्वारिभिर्मलगणोपनोदिभिः।
क्षान्तिमुख्यपदराजिरंजितं स्नापये प्रविपुलं गुरुयंत्रम् ॥ १० ॥
मध्येकर्णिकमम्बुजस्य गुरवः पंचापि पंक्त्यंकिते
यस्य श्रीदलदले क्षमादिपदयुक्धर्माः सुशर्मप्रदाः
तिष्ठन्ते मुनिराजवृन्दमहितं चूर्णैश्चितं पञ्चभिः
तद्यन्त्रं परिपूर्णलक्षणयुतं भक्त्या समाराधये ॥ ११ ॥

× × ×

इन पद्यों से ज्ञात होता है कि सकलकीर्ति जी ने गुजरात और बागड़ आदि देशों में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मंगलाचरण श्रीमद्भगवज्जिनसेनाचार्य-कृत महापुराण का लिया है। इससे अनुमान होता है कि श्रीपुराण का आदर्श महापुराण ही है। इस मंगलाचरण के प्रकृत रहस्य का पता लगाने के लिये श्रीपुराण का साद्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसमें प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ का चरित चित्रित है इसीलिये लोग इसे आदिपुराण भी कहते हैं। श्रीपुराण की रचनाशैली सरल सुन्दर एवं भावपूर्ण है।

---

(३८) ग्रन्थ न० $\frac{२५३}{ख}$

दशभक्त्यादि महाशास्त्र

कर्त्ता—मुनीन्द्र वर्द्धमान

विषय भक्ति आदि

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च | चौड़ाई ६।।। इञ्च | पत्रसंख्या १११

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीवर्द्धमानाय चिद्रूपाय स्वयम्भुवे।
सहजात्मप्रकाशाय सततसारभेदिने ॥१॥
रागद्वेषसमुद्भिन्नसमता मूलेषु सत्यादय
सर्वेषु प्रमदानलेषु विपिनि कापथ्यदानि परा।
सद्वर्त्ति निजसिद्धशास्त्रनुनिपु प्रख्यातयोमाहति
स्तत्सामायिकमद्युत यतिजने सन्तायतं सर्वदा ॥२॥
सामादि षड्विधं प्रोक्तं रागद्वेषादिवारणम्।
तद्वचनं कदा मे स्यात् सामायिकमनुत्तमम् ॥३॥
सम्यक्त्वज्ञानसंयुक्तसंयमाढ्यतपोयुतः।
परिणामः कदा मे स्यात् सत्कषायपदूरगः ॥४॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ८७ पंक्ति ६)—

यंत्रं सद्दृग्बोधधर्मलक्षणयुतं ख्यातं जगन्मङ्गलम्
विद्वल्लोकसमर्चितं सुशरणं संसारविध्वंसकम्।
जीवन्मुक्तिसुखप्रदं निरुपमं क्षान्त्यादिशब्दोज्ज्वलम्
भक्त्याहूय सुपीठिकोपरि तले संस्थाप्य चाराधये॥ १॥
जलगन्धसदक्षकुसुमैश्चरुप्रदीपैः सुधूपफलनिकरैः।
संपूजयामि यंत्रं क्षान्त्यादिपदांकितं भक्त्या॥ २॥
गंगाद्युद्भवनीरेण कंजोत्पलसुगन्धिना।
क्षान्त्यादिपदसंयुक्तं यंत्रं प्रक्षालयाम्यहम्॥ ३॥
नारिकेलोदकैः स्वच्छैः सर्वहृत्तापहारिभिः।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा॥ ४॥
कदलीकृतपीयूषैर्धवलेक्षुरसैः शुभैः।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा॥ ५॥
सन्तप्तकनकद्रावसंकाशैः पुष्कलैर्घृतैः।
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा॥ ६॥
पयोभिः पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिकाविशदैरलम्
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यन्त्रं संस्नापये मुदा॥ ७॥
संतानिकांचितैः स्निग्धैर्दधिभिः सारगन्धिभिः
क्षान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा॥ ८॥
कुम्भैश्चातुष्टयैः शुद्धैः स्रग्मालारंजिताननैः।
स्नापये यंत्रममलं क्षान्त्यादिपदभूषितम्॥ ९॥
वासनाप्रकृतिगन्धबन्धुरैर्वारिभिर्मलगणापनोदिभिः।
क्षान्तिमुख्यपदराजिरंजितं स्नापये प्रविपुलं गुरुयंत्रम्॥ १०॥
मध्येकर्णिकमम्बुजस्य गुरवः पंचापि पंक्त्यंकिते
यस्य श्रीवदले क्षमादिपदयुग्धर्माः सुधर्मप्रदाः
तिष्ठन्ते मुनिराजवृन्दमहितं चूर्णैश्चितं पञ्चभिः
तद्यन्त्रं परिपूर्णलक्षणयुतं भक्त्या समाराधये॥ ११॥

× × ×

अन्तिम भाग :—

बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युते ।
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणेः ॥ १ ॥
शिष्येण ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।
जिनेन्द्रचरणाद्वैतस्मरणाधीनचेतसा ॥ २ ॥
वर्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
कथितं दशभक्त्यादिशास्त्रं भव्यसौख्यदम् ॥ ३ ॥
शाके वेदखराग्निचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीप्लवे
सिद्धश्रावणिके प्रभाकरदिवे कृष्णाष्टमीवासरे ।
रोहिण्यां दशभक्तिपूर्वकमहाशास्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्वर्धमानो मुनिः ॥ ४ ॥
विद्वत्कवीन्द्रमुनिभूपतिसज्जनानां यावत्समस्ति रसना पुरुषोत्तमानाम्
श्रीवर्द्धमानमुनिराजकृतिः कृतार्था तिष्ठत्वरं जगति तावदनर्घ्यकीर्ति ॥५
शलाकापुरुषान्वन्दे सर्वकर्ममहीभवान् ।
विद्यानन्दपदाधीशान् कृष्णदेवेन्द्रवन्दितान् ॥ ६ ॥
जैना श्रीवसुधेश्वरा नयविदोऽमात्याः सदा सज्जनाः
विद्वांसः कवयो जयन्तु गमकाः सद्वादिनः श्रावकाः ।
विप्राः श्रीमुनिवल्लभाः श्रुतगुणाचाराः मनोज्ञेश्वराः
कान्ताः पुत्रसमन्विता जिनगृहा बिम्बाश्च निर्मापिताः ॥ ७ ॥
वर्धमानगुणाधारं शब्दार्थालङ्कृतिस्फुटम् ।
महाशास्त्रमिदं पूतं पठतां मङ्गलं सदा ॥ ८ ॥
व्याख्यातॄणां लेखकानां श्रोतॄणां कृतधारिणाम् ।
दयादमविशिष्टानां गुणरत्नानुधारिणाम्
मुनिवृन्दारकाणां च प्रदेयान्मुक्तिसम्पदम् ॥ ९ ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
लिखितं दशभक्त्यादिशास्त्रं जनतार्थकम् ॥ १० ॥

इस ग्रन्थ का नाम 'दशभक्त्यादिमहाशास्त्र' है। इसके शुरू में सामायिकपूर्वक सिद्ध-भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र एवं योगभक्ति आदि प्रसिद्ध दशभक्तियाँ अङ्कित हैं। ये भक्तियाँ मुनीन्द्र वर्द्धमान जी की अपनी रचना हैं। साहित्य की दृष्टि से भी रचना बुरी नहीं है। बल्कि कहीं-कहीं के पद्य बड़े ही श्रुति-मधुर हैं। हाँ, प्रति अशुद्ध होने से जहाँ-तहाँ क्षति

में शैथिल्य का भ्रम होना स्वाभाविक है। कुछ भी हो ग्रन्थकर्त्ता संस्कृतभाषा के मर्मज्ञ थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। सर्व-प्रथम स्थालीपुलाकन्याय से ग्रन्थगत विषयों पर एक वार सरसरी नजर डालना मैं आवश्यक समझता हूँ।

प्रस्तुत कृति में भक्तियों के अतिरिक्त स्तोत्र, पूजन, गुर्वावली आदि भक्त्यतिरिक्त विषय भी गर्भित हैं; इसीलिये ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्त्ता ने इसका नाम 'दशभक्त्यादिमहाशास्त्र' रक्खा है। क्योंकि 'आदि' शब्द में वहुत वातों का समावेश हो जाता है। 'आचार्य-भक्ति' में प्रत्येक तीर्थङ्कर के गणधरों की संख्यादि भी कवि वर्द्धमान जी ने दे डाली है। साथ ही साथ इस 'आचार्यभक्ति' के अन्त में प्रतिपादित "वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना। आचार्यभक्तिः कथिता जिनसेनार्यसम्मता॥" इस पद्य से यह 'आचार्य-भक्ति' जिनसेनाचार्यसम्मत ज्ञात होती है। इसे जिनसेनकृत कृतियों से मिलान करने से यह वात स्पष्ट हो सकती है। 'निर्वाण-भक्ति' के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीका सम्मेदशिखर से मुक्त होना वर्णित है। यह मत प्रचलित 'निर्वाण-काण्ड' के प्रतिकूल है। 'उत्तरपुराण' आदि ही इस मत का आधार मालूम होता है। 'चैत्यभक्ति' के प्रकरण में ग्रन्थ-रचयिता ने अकृत्रिम जिनालयों के सिवाय कृत्रिम जिनालयों में भल्लातकीपुर—गेरुसोप्पेस्थित श्रीपार्श्वनाथ, संगीतपुर—हाडुहल्लिस्थित श्रीचन्द्रप्रभ, भट्कलस्थ श्रीपार्श्वनाथ, वसुपुरस्थ श्रीआदिनाथ, वरांगस्थित श्रीनेमिनाथ, कार्कलस्थित श्रीगोम्मटेश्वर, वेणुपुर—मूडविद्रीस्थित श्रीचन्द्रनाथ, श्रवणवेलगोलस्थ श्रीगोम्मटेश्वर, कनकाचलस्थ श्रीपार्श्वनाथ,* होय्सलवंशराजार्च्चित (विजय) पार्श्वनाथ और वर्द्धमान,† कोपणक्षेत्रस्थ (सागरदत्तपूजित-) श्रीचन्द्रप्रभ और (लक्ष्मेश्वरपूष्पतिदक्षिणावर्त्तशंखोत्थ-हेमदेवार्यसंस्तुत-) श्रीचन्द्रप्रभ आदि-जिनमन्दिरों की स्तुति की है। एक जमाने में उल्लिखित गेरुसोप्पे, हाडुहल्लि, भट्कळ, कनकाचल या कनकगिरि और कोपण आदि स्थान अपने सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो जैनधर्म के केन्द्र एवं लीलाभूमि बने हुए थे। बल्कि उन दिनों गेरुसोप्पे, भट्कळ आदि कई स्थानों को जैनराजधानी के रूप में ही रहने का सौभाग्य प्राप्त था। इन क्षेत्रों में आज भी यत्र-तत्र लुप्त-प्राय प्राचीन जैनकीर्ति के स्मृति-चिह्न बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वह जैनप्रतापादित्य का मध्याह्नकाल था। खैर, आज भी उक्त क्षेत्रों पर वर्द्धमान जी के द्वारा निर्दिष्ट उक्त जिनचैत्यालय प्रायः उन्हीं नामों से जीर्ण-शीर्ण दशा में वर्तमान हैं। गेरुसोप्पे, भट्कळ, हाडुहल्लि इन स्थानों के विशेष परिचय के लिये उत्तर कन्नड़ जिला के गजेटियरों का अवलोकन करना चाहिये। कोपणक्षेत्रस्थ चन्द्रप्रभ या चन्द्रनाथ-जिनालय आज भी उसी नाम से विश्रुत है। वल्कि इसका उल्लेख Epigraphia Indica,

* इन्हें 'नागार्जुनप्रतिष्ठापित' एवं 'धर्मचन्द्रमुनिवन्दित' वतलाया है। यह नागार्जुन श्रीपूज्यपाद जी के भाँजे हों।

† ये संभवतः हळेबीडु या द्वारसमुद्र के मन्दिर हैं।

Part V, January 1931, P. 94 में प्रकाशित केळदिय सदाशिवनायक के एक ताम्र-शासन में भी लिखा है। उसका सारांश यों है—'इस (धर्म) के प्रतिकूल चलनेवाला जैनी बेल्गोलस्थ गुम्मटनाथ, कोपणस्थ चन्द्रनाथ ऊर्जयन्तगिरिस्थ नेमिनाथ आदि जिनप्रतिमाओं को फोडने के पाप भागी होंगे।'

अस्तु, अब पाठकों का ध्यान प्रस्तुत विषय पर आकृष्ट करता हूं। कवि वर्द्धमान जी के द्वारा प्रस्तुत कृति के क्रमशः पृष्ठ ३१ एवं ७७ पर दिये गये निम्न लिखित कुछ पद्य अवश्य अवलोकनीय तथा विचारणीय हैं —

"मार्तण्डस्य समस्तवस्तुततमतमिथ्यातमोभासितं तद्-
भाष्यं महाकलङ्कसूरिरचितविभव रामसेनापमुद्गम्।
सूत्रं तत्त्वार्थसारं स्फुरति जिनकथावार्तयास्ते त्रिलोक-
ख्यातिर्मे हृदये चरितं यदि यतो यत्किमन्यस्तु किं मे ॥"

× × ×

"वसन्ततिलकनिर्वाणे मुनिसुव्रतश्च मानि ॥
उपदेशश्च भास्कर जिनसेनार्यशासने।
कलावास्य भवतो यानन्तनिधिर्निवृति ॥
सभावास्यनगारकेवलिविभो श्रीपद्मचन्द्रस्य वै
श्रीमत्फाल्गुनशुक्लदिवसप्राप्तुरंशोवासरे।
पूर्वाह्णे कुन्दमस्तकमयो सम्मेदगिर्यग्रतो
शास्ता निर्वृतिमाप लब्धसमये सीतावबोधितिने ॥"

आगे ७१ के पूर्व पृष्ठ से क्रमशः किसी किसी की कुछ कृतियों का उल्लेख करते हुए वर्द्धमान जी ने भद्रबाहु, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलङ्क, विद्यानन्दी, माणिक्यनन्दी, प्रभाचन्द्र* पूज्यपाद, (जिनचरणाम्बुजरत) सिद्धान्तकीर्ति, वर्द्धमान। वसुपूज्यनन्दी, (त्रिभुवनं भर्तुजिन) श्रीपाल, पात्रकेसरी, नेमिचन्द्र, (चामुण्डरायार्चितपादपद्मसैद्धान्तिकसार्वभौम) माघनन्द, (केशवार्यस्तुत्य) अभयचन्द्र, श्रुतकीर्ति, जिनचन्द्र, इन्द्रनन्दि, वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, पद्मनन्दी, माघनन्दी सकलसिंहनन्दी, पद्मप्रभ वसुनन्दी, मेघचन्द्र, वीरनन्दी, धनञ्जय, वादिराज, धर्मभूषण, (विद्यानंदस्वामिगुरु) सिद्धकीर्ति

*इन्हें शब्दाम्भोजवृत्तिन्यास के रचयिता लिखा है, परन्तु संभवतः न्यास के रचयिता प्रभाचन्द्र इनसे भिन्न हैं। देखें—"दिगम्बर जैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ"।

[1]इन्हें हैय्सल राज्यसंस्थापक एवं उस राजवंश को मन्त्र और विद्या प्रदान करने वाला लिखा है।

मेरुनन्दी, वर्द्धमान, प्रभाचन्द्र, अमरकीर्त्ति एवं विशालकीर्त्ति इन ग्रन्थकर्त्ताओं का स्मरण किया है। इसी प्रकरण में आगे भट्टारक सिंहकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति, विद्यानंद, देवेन्द्रकीर्त्ति तथा अपनी बड़ी प्रशंसा की है। उन प्रशंसात्मक पद्यों में से कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिनमें कुछ ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो :—

"राजाधिराजपरमेश्वरदेवरायभूपालमौलिलसदंघ्रिसरोजयुग्मः।
श्रीवर्द्धमानमुनिवल्लभमौढ्यमुख्यः श्रीधर्मभूषणसुखी जयति क्षमाढ्यः॥
विद्यानन्दस्वामिनः सूनुवर्यः संजातः स सिंहकीर्त्तियतीन्द्रः।
ख्यातः श्रीमान् पूर्णचारित्रगात्रो ज्ञानस्त्वम्भूर्धेनुमन्दारदेश्यः॥
वाक्सात्यश्वपतेर्दिनेशतनयो गंगाढ्यदेशावृतः
श्रीमद्दिल्लिपुरेड्महम्मदसुरित्राणस्य माराकृतेः।
निर्जित्याशु सभावनो जितगुरुर्बौद्धादि + + + + व्रजम्।
श्रीभट्टारकसिंहकीर्त्तिमुनिराट् नाट्यैकविद्यागुरुः॥
विशालकीर्त्तिवादीन्द्रः परमागमकोविदः।
भट्टारको बलात्कारगणाधीशो महातपाः॥
सिकन्दरसुरित्राणप्राप्तसत्कारवैभवः।
महावादिजयोद्भूतयशोभूषितविष्टपः॥
श्रीविरूपाक्षरायस्य श्रीविद्यानगरेशिनः।
सभायां वादिसन्दोहं निर्जित्य जयपत्रकम्॥
स्वीकृत्य च महाप्रज्ञाबलेन बुधभूभुजैः।
मतं सरस्वतीमूलशासनं वा सदोज्ज्वलम्॥
देवप्पदण्डनाथस्य नगरे श्रीमदारगे।
प्रकाशितमहाजैनधर्मोऽभाद्भूसुरार्च्चितः॥
विशालकीर्त्तेः श्रीविद्यानन्दस्वामीतिशब्दितः।
अभवत्तनयः साधुर्मल्लिरायनृपार्च्चितः॥
आगमत्रयसर्वज्ञः कवित्वगुणभूषितः।
नानोपन्यासकुशलो वादिमेघमहामरुत्॥
स्वामिविद्यादिनन्दस्य भारतीभाललोचनम्।
सूनुर्देवेन्द्रकीर्त्त्यार्यो जातो भट्टारकाग्रणीः॥"

(पूर्व पृष्ठ ६१ से पूर्व पृष्ठ ६२)

"कावेरीसरिदम्बुवेष्टनलसच्छ्रीरंगसत्पत्तने
श्रीशश्रीवल्लभरङ्गनाथमहिते श्रीवीरपृथ्वीपतेः ।
आस्थाने विबुधव्रजं विजयवाग्धुर्यैर्विजित्यावनौ
विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते साहित्यचूडामणिः ॥
सांख्यं मन्थ्यात्तगन्धं कपिलमतमलं हीनकापालिकाद्यम्
यौगं घोरं गभीरं कलयति धरणौ वैशेषिकं शोणिताङ्गम् ।
चार्वाकं दर्पगर्वं नृपसदसि सदा बुद्धमव्यक्तबुद्धम्
भाट्टं सम्यग् विनेते बुधवर भरतो वाग्वधूटी मुनीन्द्र ॥"

(पर पृष्ठ ६६)

'वीरश्रीवरदेवरायनृपते सद्भागिनेयेन वै
पद्मांबाकलगर्भशर्धिविधुना राजेन्द्रसन्मानिना ।
श्रीमत्साळुवकृष्णदेवधरणीकान्तेन भक्त्यार्चितो-
विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते स्याद्वादविद्यापतिः ॥

× × × ×

यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभो-
रास्थाने विदुषां गणं समजयत्पञ्चाननो वा गजम् ।
सद्वाग्भिर्नरसैक्तरात्तविमलज्ञानाय तस्मै नमो-
विद्यानन्दसुधीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्तये ॥

× × ×

विद्यानन्दस्वामिनोऽभूत् सधर्मा विख्यातोऽयं नेमिचन्द्रो मुनीन्द्रः ।
भूतमाताम्भोजनैकाशकारी शास्त्राम्भोराशिसंवृद्धिकारी ॥
पावुकपार्श्वनाथस्य वसतीं श्रीत्रिभूमिकाम् ।
कृत्वा प्रतिष्ठां महतीं सन्तनोतिस्म भक्तितः ॥
विद्यानन्दस्वामिनः पुण्यमूर्त्तेर्जीयात्सूनुः श्रीविशालादिकीर्तिः ।
विद्वद्वन्द्यः सर्वशास्त्रार्थतत्त्वो माद्यद्वादीभेन्द्रसंघातसिंहः ॥

(पूर्व-पर पृष्ठ ६८)

"जीयादमरकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणिः ।
विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविदः ॥
अमरकीर्तिमुनिर्विमलाशयः कुसुमचापमदाचलवज्रभृत् ।
जिनमतापहतारितमाश्च यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रयः ॥

विद्यानन्दार्यतनयो भाति शास्त्रधुरन्धरः।
वादिराजशिरोरत्नं विद्यानन्दमुनीश्वरः॥
विशालकीर्त्तिमुनिराट्पट्टोदयमहीभृतः।
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो बालार्क इव भासते॥
श्रीभैरवेन्द्रवंशाब्धिपाराढ्यराजसमर्च्चितः।
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो विद्यानन्दमहोदयः॥
देवेन्द्रकीर्त्तिः सिद्धार्थस्तद्राणी प्रियकारिणी।
धीमांस्तदुदितो वर्णी वर्द्धमानो न किं भवेत्॥
वर्द्धमानो बुधाराध्यो नवमश्रावकाग्रणीः।
शुद्धदृग्बोधचारित्रो जिनेनो जयतात् भुवि॥
कर्णोत्तंसितपारिजातकलिकासौरभ्यसौखासिकी
भारत्याः शरदिन्दुनिःसृतसुधासारासनाध्यासिनी।
नृत्यद्धूर्जटिजाटकोटितटिनी कल्लोलसंलापिनी
जेजीयाद्भुवि वर्द्धमानसुखिनः शास्त्रार्थवाग्वैखरी॥
निर्मग्नात्मनिबन्धनोपकरणो निर्वाणवांछान्वितो-
बाह्यार्थावगमाभिलापरहितो दूरीकृतोत्कल्पनः।
स्वच्छन्दस्ववशोपसाधितमना भद्रांगलक्ष्मापरम्
क्षित्यां मत्तमहाकरीव जयति श्रीवर्द्धमानो मुनिः॥
ख्यातः श्रीवर्द्धमानोऽभाद्वीतसंसारविभ्रमः।
ज्ञातानुयोगशास्त्रार्थो जातरूपादिनिस्पृहः॥
भाति श्रीवर्द्धमानोऽसौ चूतशायकसूदनः।
नूतसद्गुणसन्तानप्पूतचिद्भावनामतिः॥
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रचरणाम्बुरुहद्वयम्।
मन्मानसे सदा स्थेयात् विबुधभ्रमराश्रयम्॥
देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदाम्बुरेणुर्दारिद्र्यभूतनिवहस्य सदा बुधानाम्।
उच्चाटनप्रवणचूर्णदशां समग्रां लक्ष्मीवशीकरणचूर्णदशां च याति"॥

× × × ×

"देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजतनूभवेन श्रीवर्द्धमानमुनिना विदितानि भान्ति।
पद्यानि सद्गुणयुतानि महोज्ज्वलानि विद्वत्कवीन्द्रगलकर्णविभूषणानि॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना।
देवेन्द्रकीर्त्तिमहिता निर्मिता गुरुसन्ततिः॥"

(पर पृष्ठ ६९ से ७१ पर पृष्ठ)

"कावेरीसरिदम्बुवेष्टनलसच्छ्रीरंगसत्पत्तने
लक्ष्मीवल्लभरंगनाथमहिते श्रीवीरपृथ्वीपते ।
आस्थाने विबुधव्रजं विजयराट्श्रेर्विजित्यावनौ
विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते साहित्यचूडामणिः ॥
सांख्यं सख्यात्तगाधं दपितकुलमलं हीनकापालिकारिम्
यौगं चोद्वेगवेगं कल्पयति वलिवैशेषिकं शोषिताङ्गम् ।
चार्वाकं खर्वगर्वं त्रपसरसि सदा बुद्धमप्यप्रबुद्धम्
भाट्टं भ्रष्टं वितेने बुधवर भवतो वाग्वधूटी मुनीन्द्र ॥'

(पर पृष्ठ ६६)

'वीरश्रीवरदेवरायनृपतेः सद्भागिनेयेन वै
पद्मांबाकलशार्णवाधिविधुना राजेन्द्रवन्द्याङ्घ्रिणा ।
श्रीमत्सालुवकृष्णदेवधरणीकान्तेन भक्त्यार्चितो
विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते स्याद्वादविद्यापतिः ॥

× × × ×

यो विद्यानगरीपुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभो-
रास्थाने विबुधां गणं समजयत्पञ्चाननो वा गजम् ।
सद्भाग्भिर्नरसैक्ष्मापविमलस्थानाय तस्मै नमो-
विद्यानन्दसुधीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्तये ॥

× × ×

विद्यानन्दस्वामिनोऽभूत् सधर्मा विख्यातोऽयं नेमिचन्द्रो मुनीन्द्रः ।
भूतव्राताम्भोजवैकासकारी शास्त्राम्भोराशिसंवृद्धिकारी ॥
पाण्ड्यपार्श्वनाथस्य वसतीं श्रीत्रिभूमिकाम् ।
कृत्वा प्रतिष्ठां महतीं सन्तनोतिस्म भक्तितः ॥
विद्यानन्दस्वामिनः पुण्यमूर्तेर्जीयात्सूनुः श्रीविशालादिकीर्तिः ।
विद्वन्मान्यः सर्वशास्त्रागतारो माद्यद्वादीभेन्द्रसंघातसिंहः" ॥

(पूर्व-पर पृष्ठ ६८)

"जीयादमरकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणिः ।
विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविदः ॥
अमरकीर्तिमुनिर्विमलाशयः कुसुमचापमदाचलवज्रभृत् ।
जिनमतापहतारितमाश्च यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रयः ॥

विद्यानन्द्यार्यतनयो भाति शास्त्रधुरन्धरः ।
वादिराजशिरोरत्नं विद्यानन्दमुनीश्वरः ॥
विशालकीर्त्तिमुनिराट्पट्टोदयमहीभृतः ।
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो बालार्क इव भासते ॥
श्रीभैरवेन्द्रवंशाग्विपाराद्ध्यराजसमर्च्चितः ।
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो विद्यानन्दमहोदयः ॥
देवेन्द्रकीर्त्तिः सिद्धार्थस्तद्वाणी प्रियकारिणी ।
धीमांस्तदुदितो वर्णी वर्द्धमानो न किं भवेत् ॥
वर्द्धमानो बुधाराध्यो नवमश्रावकाग्रणीः ।
शुद्धदृग्बोधचारित्रो जिनेनो जयतात् भुवि ॥
कर्णोत्तंसितपारिजातकलिकासौरभ्यसौखासिको
भारत्याः शरदिन्दुनिःसृतसुधासारासनाधींसिनी ।
नृत्यद्धूर्जटिजाटकोटितटिनी कल्लोलसंलापिनी
जेजीयाद्भुवि वर्द्धमानसुखिनः शास्त्रार्थवाग्वैखरी ॥
निर्भग्नात्मनिबन्धनोपकरणो निर्वाणवांछान्वितो-
बाह्यार्थावगमाभिलाषरहितो दूरीकृतोत्कल्पनः ।
स्वच्छन्दस्ववशोपसाधितमना भद्रांगलक्ष्मापरम्
क्षित्यां मत्तमहाकरीव जयति श्रीवर्द्धमानो मुनिः ॥
ख्यातः श्रीवर्द्धमानोऽभाद्वीतसंसारविभ्रमः ।
ज्ञातानुयोगशास्त्रार्थो जातरूपादिनिस्पृहः ॥
भाति श्रीवर्द्धमानोऽसौ च्यूतशायकसूदनः ।
नूतसद्गुणसन्तानप्पूतचिद्भावनामतिः ॥
देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रचरणाम्बुरुहद्वयम् ।
मन्मानसे सदा स्थेयात् विबुधभ्रमराश्रयम् ॥
देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदाम्बुरेणुर्दारिद्र्यभूतनिवहस्य सदा बुधानाम् ।
उच्चाटनप्रवणचूर्णदशां समग्रां लक्ष्मीवशीकरणचूर्णदशां च याति "॥

× × × ×

"देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजतनूभवेन श्रीवर्द्धमानमुनिना विदितानि भान्ति ।
पद्यानि सद्गुणयुतानि महोज्ज्वलानि विद्वत्कवीन्द्रगलकर्णविभूषणानि ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
देवेन्द्रकीर्त्तिमहिता निर्मिता गुरुसन्ततिः ॥"

(पर पृष्ठ ६९ से ७१ पर पृष्ठ)

इसके आगे पर पृष्ठ ७१ पंक्ति ३ से फिर कन्नडभाषा में विद्यानन्द का स्तुति रूप में स्मरण किया गया है। विद्यानन्द जी का यह स्तुतिरूप स्मरण वर्द्धमान जी के द्वारा लिखे गये नगरताल्लुक के ४६वें शिलालेखान्तर्गत स्तुति का [illegible] प्रतिरूप है। बल्कि इस शिला लेख के अन्यान्य पद्य भी यत्र तत्र इस ग्रन्थ में उद्धृत किये गये हैं। उक्त स्तुतिरूप स्मरण में विद्यानन्द ने नञ्जराय शहर के नन्दिदेवराज सातवेन्द्रराज केशरि जिनम, साळुवमल्लिराय, गुम्मटपाल, साळुवदेवराय, नगरिराज्य के राजा, विल्गि के नरसिंहराज, कारकळ के भैरव० राज, नरसिंहकुमार कृष्णराज इन की सभाओं में और इसी प्रकार श्रीरंगपट्टण, बिदिरे, कोपण, बेळगोळ और गेरुसोप्पे [illegible] वादिजना का पराजय किया था, इसी का उल्लेख है। स्वर्गीय आर० नरसिंहाचार्य का अनुमान है कि विद्यानन्द जी भल्लातकापुर अर्थात् गेरुसोप्पे के रहनेवाले थे और इन्होंने कन्नड भाषा में 'काव्यसार' के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ रचा था, जिसका समर्थन नगरताल्लुक के उक्त शिलाशासनगत "अर्णवेष्टितवसुधा। कर्णो पमगुम्मटपालनास्थानदोळ। कणाग्दत्तदरतिय। वर्णिसि असदळेद वादिविद्यानन्दा॥" इस पद्य से होता है। इस शिलालेख से यह भी अवगत होता है कि देवराय के भागिनेय एवं पद्माम्बापुत्र साळुव कृष्णदेवराय के द्वारा आप सम्मानित हुए थे। बल्कि एतद्विषयक पद्य ऊपर उद्धृत किया जा चुका भी है। साथ ही साथ इस शिलालेख में इनकी वंश परम्परा यों दी गयी है। विद्यानन्द, इनका पुत्र विशालकीर्ति, विशालकीर्ति का पुत्र देवेन्द्र कीर्ति और इनके पुत्र वर्द्धमान। यही वर्द्धमान प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता हैं।

एक बात यह है कि आर० नरसिंहाचार्य जी ने विद्यानन्द का समय विजयनगर के शासक नरसिंह के पुत्र उसी नगरताल्लुक के शिलालेख [illegible] अङ्कित कृष्णदेवराय के काल के आधार पर ई० सन् १५३३ अनुमान किया है। परन्तु इसी प्रस्तुत ग्रन्थगत स्तुति में प्रतिपादित 'शाके वह्निखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे शार्वरे। शुद्धश्रावणभाक्‌कृतान्त धरणीतुग्मेष्टमेरे रवौ॥ कर्किस्थे सगुरौ जिनस्मरणतो वादीन्द्रवृन्दार्चित। विद्यानन्द- मुनीश्वरः स गतवान् स्वर्गं चिदानंदकः॥" इस पद्य से शालिवाहन शक १४६३ ई० सन् १५४१ में विद्यानन्द का स्वर्गस्थ होना स्पष्ट सिद्ध होता है। अस्तु, इनके विषय में आगे कुछ विशेष प्रकाश डालना मुझे इष्ट है।।

आगे पर पृष्ठ ८० से पर पृष्ठ ८४ तक नन्दिसंघ के आचार्यों की नामावली यों दी गयी है :—

धरसेन, समन्तभद्र, आर्यसेन, अजितसेन, वीरसेन, जिनसेन, वादिराज, गुणभद्र*

*—इन्हें 'दशरथमुनिपति-तनय' लिखा है।

लोकसेन, आशाधर,[1] कमलभद्र[2], नरेन्द्रसेन, धर्मसेन, रविषेण, कनकसेन, दयापाल, रामसेन[3], माधवसेन, लक्ष्मीसेन[4], जयसेन, नागसेन, मतिसागर[5], रामसेन, सोमसेन। मुनीन्द्र वर्द्धमान जी ने अपने को भी इस नन्दिसंघ की परम्परा में बतलाया है। उल्लिखित गुर्वावली का अन्तिम पद्य यह है—"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्द्यार्यवन्धुना। जिनश्री-नन्दिषेणोत्थमुन्यादिस्तवनं कृतम्" ॥ इन पद्य से कवि वर्द्धमान जी का यह अभिप्राय ज्ञात होता है कि नन्दिसंघ की उत्पत्ति नन्दिषेणसे हुई है। पर अन्यत्र माघनन्दी,से मानी गयी है[6]।

आगे पूर्व पृष्ठ ९० के अन्त से ग्रन्थकर्त्ता ने भट्टाकलङ्क की वंश-परम्परा यों बतलायी है:—

कुन्दकुन्द, विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र श्रुतकीर्त्ति,* श्रुतकीर्त्ति का पुत्र विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र पद्मप्रभ, पद्मप्रभ का पुत्र भट्टाकलङ्क जिनका अपर नाम चन्द्रप्रभ देव भी विख्यात था। इसके बाद इन्हीं अकलङ्क, विजयकीर्त्ति आदि की स्तुति की है। उनमें से कुछ इति-हासपरक पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

"श्रीमन्मादनयेल्लपत्तितिपतेः सत्पट्टदंतावलः
संवीक्ष्याशु परीत्ययं मदकरो भक्त्या च वंकापुरे।
पद्मास्यः शममेयिवान जिनपतिध्यानैकतानोऽयनौ
स श्रीमानकलङ्कयोगितिलको रेजे नृपालार्चितः"॥

(पर पृष्ठ ९१)

"श्रीदेवरायनृपशेखरवन्द्यपादः स्याद्वादशास्त्रजनितामलहृत्प्रमोदः।
भट्टाकलङ्क मुनिपो जनसाधुवादो वाभाति भव्यजनताकृतसत्प्रसादः ॥
तस्याकलङ्कदेवस्य सधर्माणः तपोगुणाः।
चन्द्रप्रभादिमुनयः संजातास्साधुवन्दिताः ॥
श्रीचन्द्रप्रभदेवसेवनपरः शब्दाम्बुधिं गाहते
श्रीचन्द्रप्रभदेवसंस्तवरतःतर्कामृतं सेवते।

१—इन्हें 'चेलविसृष्टशरीरं' (?) 'मालवपतिवन्द्य' एवं 'सूरि'(?) लिखा है। पर इनको मुनि एवं सूरि लिखना भ्रामक है।

२—इन्हें 'कोशीपतिनत' लिखा है।

३—इन्हें योगशास्त्र का प्रणेता बतलाया है।

४—इन्हें पेनगोंडे के 'नरसिंहरायसेवित' लिखा है।

५—इन्हें मालवेन्द्र की सभा में बौद्धों को पराजित करनेवाला और 'पैगुद्वोपादिवन्द्य-पादाम्भोज' लिखा है।

६—देखें—'जैनसिद्धान्तभास्कर' भाग १, कि० ४।

* इन्हें 'त्रैविद्यचक्रेश्वर' एवं 'साल्वेन्द्रावनिपालपूजितपद' लिखा है।

श्रीचन्द्रप्रभदेवसन्निधिमिति पूज्यत्वमाप्स्यते
श्रीचन्द्रप्रभदेवसन्निधिमिति पुण्यव्रजे वर्तते ॥”

(पूर्व पृष्ठ ९२)

“स जयति जयकीर्त्तिर्जैनदेशीयमूर्त्तिर्
जिनपदकजभृङ्गस्त्यक्तसंसारसङ्गः ।
सुचरितयतिमुद्रः सर्वविद्याब्धिचन्द्रः
सकलगुणसमुद्रः पुष्पकोदण्डरुद्रः ॥
भास्वद्भद्रस्थलं पुरं जिनगृहैर्विभ्राजितं याहुना ।
श्रीमत्सालुवदेवरायनृपतेर्भूनाभिशाटेपिना ।
मौद्रेर्णार्णनिचिताग्रिमण्डितमिदं सपदित सपदा
निर्धूतालकमगभमनिलय देशेऽभवत्तौलवे ॥
तत्र भट्टकले श्रीमानकलङ्कमुनीश्वरः ।
अतिष्ठद्यस्य दौहित्रो नारायणभास्करः ॥
शरत्कालमितात्मानं क्षोणवर्षे निरीक्ष्य च ।
मतिं प्रायोपगमने कृतवान्वस्तुतत्त्ववित् ॥
सल्लेखनापरः पञ्चाणुव्रतसमन्वितः ।
श्रीमत्पञ्चमहामन्त्रस्मरणात्प्राणान् मुमोच सः ॥
शाके सप्तशराम्बुधीन्दुकलिते संवत्सरे श्रीजये
मासे चाश्विनसंज्ञके तु गुरुन कृष्णाष्टमीवासरे ।
पुष्यर्क्षे मिथुने जिनेन्द्रचरणध्यानावलम्बी ययौ
स श्रीमानकलङ्कदेवसुखिराड् नाकालयं धीरधीः ॥
तस्याकलङ्कस्य तनयो विनयान्वितः ।
आसीद्विजयकीर्त्याख्यो जनमन्दारसन्निभः ॥
अकलङ्कसुधी(धी)शांघ्रिस्मृतिपावनमानसः ।
जीयात् विजयकीर्त्याख्य कृतधर्मप्रभावनः ॥
क्षयोपशमसम्पूर्णश्रावकोदारविग्रहः ।
पाल्यकीर्त्तिर्मुनीन्द्रोयादकलङ्कपदप्रियः ॥
सत श्रीपाल्यकीर्त्याख्यमुनेर्ध्यानधनञ्जये ।
प्रसूनासिमहावारा नित्यं कर्णायते तराम् ॥

वाग्देव्या हारयष्टिर्वा सत्सुवर्णा गुणोज्ज्वला।
मुक्तामया सुवृत्ताभा चन्द्रमत्यार्यिका परा॥
श्रीचन्द्रप्रभयोगिराजतनुजो देशीगणाग्रेसरः
प्रद्युम्नोद्धुरचापखण्डनपटुः सद्धर्मधौरेयकः।
ध्यानध्वस्तसमस्तपापपटलः सद्भव्यकंजांशुमान्
भाति प्रोन्नतसंयमो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः॥
श्रीसंगीतपुराग्रभागतिलके निर्वाणभूभृत्यरम्
श्रीचैत्यालयमुद्धलक्षणयुतं योऽनन्तजित्स्वामिनः।
पूजां नित्यमहोन्नतां च महतीं सम्यक् प्रतिष्ठां मुदा
शास्त्रोक्त्या व्यतनोत् स भाति जगति श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः॥
ध्याने यस्य मतंगजा हरिकुलैः क्रीडन्ति वाजिव्रजाः
सत्रासैरिभसंकुलैर्विषधरा मण्डूकजालैर्भृशम्।
पञ्चास्याश्च कुरङ्गपाकनिचयैरेकेन्द्रियाः सत्फलैः
स क्षोणीश्वरपूजितो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः॥
श्रीरंगद्रंगमध्ये विबुधनृपसभाभूपिते भूसुराढ्ये
प्रोद्वृत्तं वादिवृन्दं जिनपतिवदनप्रोत्थवाणीबलेन।
जित्वा साहित्यमूर्त्तिर्विपुलतरतपाः सन्ततं सत्कृपार्द्रः
श्रीमान् देशीगणेशो जयति विजयकीर्त्तिः कवीन्द्रद्रुमश्रीः॥
वीरश्रीवरदेवरायनृपतिः साहित्यविद्यापतिः
संगीतामृतवार्धिवर्द्धनसुधासूतिर्जिनेज्यामतिः।
जीवत्राणमुखव्रतादिसुरतिः श्रीपुष्पचापाकृतिः
शौर्यत्यागविवेकधैर्यवसतिर्विभाति भूमण्डले॥
पातु श्रीवर्द्धमानो जिनपतिरनिशं दानशूरव्रताढ्यम्
विद्वत्कर्णावतंसीकृतगुणकुसुमं चार्थिनां पारिजातम्।
शास्त्राचाराकयोगीश्वरचरणसरोजातभृंगं स्मराभम्
नागप्पश्रेष्ठिनं श्रीजिनमुखनिरतं कुंमणश्रेष्ठिपुत्रम्॥"

(पर पृष्ठ ९२ से पर पृष्ठ ९४)

आगे पूर्व पृष्ठ ९५ से कुन्दकुन्द, चारुकीर्त्ति,* श्रुतकीर्त्ति†, विजयकीर्त्ति, अकलङ्क इस

*—इन्हें 'मन्त्रवादीश्वर' और 'वल्लालराय-विनुत' लिखा है।
†—इन्हें 'देशीगणविभूषण' लिखा है।

गुणरत्नाकर का शिर अलंकारपरक स्मरण किया गया है। यहाँ भी अकलङ्क का नामान्तर 'चन्द्रप्रभ' दिया है।

इस प्रकार की पुनरुक्तियाँ ग्रन्थ में पर्याप्त हैं। फिर भी इसमें इतिहास-सम्बन्धी जो तात्विक बातें हैं वे उपेक्षणीय नहीं हैं। इसी प्रकरण में पुनः उनके अर्थात् अकलङ्क के शिष्य नेमिचन्द्र की स्तुति अङ्कित है। इसमें इन्हें अर्हदन्त तीर्थोदक के द्वारा पुण्य-संचय करनेवाला भी लिखा है। पश्चात् अकलङ्क का निवास-स्थान एवं स्वर्गारोहण समय आदि यों अङ्कित है:—

"चन्द्रप्रभसूरीश(शो)सौर्यं गुणरत्नार्चितपदम्।
आविष्कृतप्रदेशस्थमगीतनगरं स्थितम्॥
कस्मिंश्चिद् दस्मिन्काले तो निर्ममत्वं च सम्पन्न्।
शुभाभिसन्धिना धाम्नुः पञ्चपरमार्थविन्॥
शाके पञ्चरसाब्धिवसुमिते संवत्सरे सन्मते
मासे मार्गशिरे सदृष्णविधुजधीमत्सौम्यवासरे।
मध्याह्ने जिनराजसन्निधरलं सल्लेखनाससृत
श्रीचन्द्रप्रभयोगिराट् प्रविशयौ आकाश्यं द्युन्नदम्॥

यह सालुवदेवराय के द्वारा सुरक्षित सौंकरदेशान्तर्गत संगीतपुर एवं तत्रस्थ जैन श्रावकों की कवि यहाँ मन से बड़ी तारीफ की है। साथ ही साथ इस प्रकरण के अन्त में यह उल्लेख किया है कि शिष्य नेमिचन्द्र ने गुरुभक्ति से प्रेरित हो धार्मिक श्रावकों के द्वारा प्रदत्त द्रव्य से विशाल मण्डप से शिलालेखपूर्वक अकलंक के समाधिस्थान पर एक अत्यन्त मनोहर 'निषिधिका' भी बनवायी था। इस प्रकरण का अन्तिम श्लोक यह है— "यदुं मानमुनीन्द्रेण शिष्याचार्यसन्तुना। कृताकलङ्कयोगीन्द्रचन्द्रप्रभगुरुस्तुतिः॥"

आगे पूर्व पृष्ठ ९८में क्रमागत के मुनियों के नाम यों अङ्कित हैं:—कुन्दकुन्द, अर्गलित मन्द्री, इन्द्रनन्दी, गुणचन्द्र, कनकचन्द्र, माधवचन्द्र[1], रामचन्द्र[2], मुनिचन्द्र, सकलचन्द्र माधवचन्द्र, बालचन्द्र, महर्द्धिक मुनिचन्द्र[3], सकलकीर्त्ति[4], मनुकीर्त्ति[5], देवकीर्त्ति, इनके

१—कनकचन्द्र और माधवचन्द्र को गुणचन्द्र का पुत्र बतलाया है। साथ ही साथ यह भी लिखा है कि एक बार जयकेशरी राना का मदोन्मत्त गजेन्द्र इन माधवचन्द्र जी को देखकर शांत हो गया था।

२—इन्हें 'जावालिपुरराजार्चितकामगोरमुख्य' आदि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है।

३—इन्हें 'चन्द्रगुप्तिपुरधीशचन्द्रगुप्तपार्चित' बतलाया है।

४—इन्हें गेरसोप्पेनिवासी लिखा है।

५—इन्हें 'मुनिचन्द्रतनय' कहा है।

शिष्य अनन्तकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति, कल्याणकीर्त्ति, चन्द्रकीर्त्ति आदि। उक्त देवकीर्त्ति के पट्ट पर क्रमशः भानुमुनि, कनकचन्द्र, देवकीर्त्ति[१]। इस प्रकरण का अन्तिम पद्य निम्न लिखित है :—

"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना।
काणूर्गणमुनीन्द्रोरुस्तवनं सत्प्रकीर्तितम्॥"

पश्चात् पूर्व पृष्ठ १०१ से नन्दिसंघ-बलात्कारगण की गुर्वावली निम्न प्रकार से दी गयी है :—

वर्द्धमान भट्टारक[२], पद्मनन्दी, श्रीधराचार्य, देवचन्द्र, कनकचन्द्र, नयकीर्त्ति, रविचन्द्रदेव, श्रुतकीर्त्तिदेव, वीरनन्दी, जिनचन्द्रदेव, भट्टारक वर्द्धमान, श्रीधर, वासुपूज्य, उदयचन्द्र, कुमुदचन्द्र, माघनन्दी, वर्द्धमान, माणिक्यनन्दी[३], गुणकीर्त्ति, गुणचन्द्र, अभयनन्दी, सकलचन्द्र, गण्डविमुक्त[४], त्रिभुवनचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति, श्रुतकीर्त्ति, वर्द्धमान, त्रैविद्यवासुपूज्य, कुमुदचन्द्र, नेमिचन्द्र, बालचन्द्रमुनिस्तुत भुवनचन्द्र। इसके बाद अन्त में बलात्कारगण के मुनियों की स्तुति वादी, वाग्मी, मन्त्रपटु, ग्रन्थरचयिता, राजसम्मानित, प्रखरतपस्वी आदि अनेकानेक विशेषण-द्वारा की गयी है। इस गुर्वावली का अन्तिम श्लोक यह है :—

"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना।
नन्दिसंघमुनीन्द्राणां स्तवनं सत्प्रकीर्तितम्॥"

काणूर्गण-स्तवन के उपरांत ग्रन्थकर्त्ता ने दुर्जनों की निन्दा एवं सज्जनों की स्तुतिपूर्वक कुछ उपदेश दिया है। इसी प्रकरण में तौळव, केरळ, होय्सळ सिंहल आदि देशों की स्त्रियों का शृङ्गारात्मक वर्णन अवलोकनीय है; जिसे देखकर कामशास्त्र में वर्णित भिन्न भिन्न देश की स्त्रियों की रूप-रेखा-स्मृति-पथारूढ़ हो जाती है :—

"देहोऽलंकारहीनो विधुसमवदनं वीटिकारागशून्यम्
बालापः श्रोत्रवज्रो भ्रमरनिभकचः पुष्पसन्दोहदूरः।
नीवी सद्वस्त्रवर्जा परिमलरहिता कामकेलिश्च शय्या
चञ्चन्मञ्चादिरिक्ता प्रभवति नितरां तौलवीनां वधूनाम्॥
नित्यस्नानयुताः शिवार्चनपराः कामाङ्गनासन्निभाः
श्रीखण्डांशुकशोभिताङ्गरुचयः कर्णाढ्यमुक्ताफलाः।

१—इन्हें भानुकीर्त्ति के उत्तराधिकारी एवं 'केरलाधीश्वरपूजित' बतलाया है।
२—इन्हें 'होय्सलसन्मानराजार्चितपदाम्बुज' लिखा है।
३—इन्हें 'मालवेन्द्रप्रपूज्य' कहा है।
४—इन्हें 'मन्त्रवादि-पितामह' बतलाया है।

पावद्द द्यधुआमद्दमय''या सभोगसवा सरा
पुमाराभिलयाश्च भेर''जनुष्कान्ता विमान्वि क्षितौ ॥
हेयसल्दे''जातरनिता कनकोज्ज्वल''रत्नभूषया
धारिज''लोचना निबिडपीनपयोधराध्वात्वदस ।
सारमृदुतिहासपरिनिर्मितम मयक''कोविदा
भाति विचित्रनेत्रपचिरा सुनिलेपनसी''काप्रिया ॥
द्वापे सिंहल''नाम्नि साम्प्रतग सम्वृत्तमुत्ताफग
शोग निम''गमसागमश्चयोऽस्त्रयानि समानि च (?) ।
तद्दे शोद्ध्यविदयधामनयना योपभिनीजातिजा
राजन्त महिषा सद्वागतमतायापरस्ततुल्यपत्तिका ॥
शोभन्ते फ''पल्लवैर्वि''पिन सत्येन भूपल्लभा
ताव्ययेन सुमालदेस्यवनिता मू''गुणैस्तरै ।
योगीन्द्राश्च परोपकारकरणे सन्तो जना धारके
धर्मा श्रीजिनभाषिता कवियुधे शास्त्राणि पूतानि थे ॥
(पर पृष्ठ १०९ स पूर्व पृष्ठ ११०)

आगे चन्दनषष्ठी सम्बन्धी चन्द्रप्रभपूजन एव श्रीनन्दयाष्टमी सबंधी मुनिसुव्रतपूजन दिये गये हैं। मुनिसुव्रतपूजन के अन्त म अङ्कित— "वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विमानदायधुना महाजीवदयाख्या निर्मित पूजना विधि ।" इस पद्य से इस ग्रन्थ में नर्मिर मतपतिरिक्त भिन्न भिन्न स्तुतियाँ, गुर्वावलियाँ तथा पूजनादि वर्द्धमान जी के अन्यान्य समय की कृतियाँ हैं और ये सब सग्रहरूप में अमर रह जायें इस ख्याल से एकत्रित कर दी गयी हैं—यों अनुमान करना निर्मूल नहीं कहा जा सकता। इसी स इसमें यत्र तत्र पुनरुक्तियों एव अप्राकरणिक का ख्याल हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

पुन पृष्ठ ११२ मे पूर्व पृष्ठ ११५ तक जो विद्वत्स्तोत्र अङ्कित है उसमें निम्न लिखित विद्वानों की प्रशंसात्मक गाथायें हैं—आशाधर, अभयचन्द्र[1] देवरस[2], हरिभट्ट[3] प्रह्लसूरि नेमिचन्द्र[4]

१—इन्हें 'सर्वोर्विपनिपूजिताङ्घ्रियुगल' लिखा है।

२—इन्हें धर्मशर्माभ्युदय एव 'राघवपाण्डवीय' के टिप्पणकार बतलाया है।

३—इन्हें न्यासतर्कविशारद श्रुतकार्त्स्न्यपादपङ्कजषट्पद' कहा है।

४—इन्हें देवप्पार्य के पुत्र अभयचन्द्र सूरि के निकट 'प्राधीतसद्दर्शन और विजयावती शतनयश्रीदेवरायार्चित' लिखा है।

जिनदेव, मेम्मडिभट्ट[1], गुम्मटदेव[2], पण्डितार्य[3] न्नोलक्खरस[4], आदण्णार्य[5], चन्द्रप्पार्य[6], कल्याणनाथ[7], धर्मशेखर[8], अभयचन्द्रसूरि[9], आदिनाथ[10], अध्यापक पार्श्वदेव,[11] उपाध्याय देवरस[12], गुम्मटदेव, अनन्तपण्डित[13], चौंडरस[14], समन्तभद्र[15], मंत्री चेतरस[16], देवरस[17], इन्हीं का अनुज अनेकगुणगणालंकृत साळुवमल्लिराय के शास्त्रविद्यागुरु देवरससूरि, इनका पुत्र अनेकगुणमण्डित, साळुवदेवराय के आस्थान-भूषण, विद्यानन्द-शिष्य एवं साहित्यरत्नाकर बोम्मरस।

इस प्रकरण का अन्तिम पद्य यह है—"वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानंदार्यबंधुना। रचितं विदुषां स्तोत्रं सज्जनानामभीष्टदम्।"

पूर्व पृष्ठ ११५ की अन्तिम पंक्ति से पूर्व पृष्ठ १२४ तक इस में जो श्रावकों का स्तुति अङ्कित है, इस स्तुति में निम्न लिखित व्यक्तियों का सवात्सल्य स्मरण किया

१—इन्हें 'विजयावनीशतनयश्रीदेवराय' के ख्यातिप्राप्त आस्थानकवि बतलाया है।
२—इन्हें अभयचन्द्रसूरि के पुत्र लिखा है।
३—इन्हें 'पद्माम्यामयचन्द्रसूरितनय' और 'नारसिंहनृपतितुल्य' आदि विशेषण-द्वारा स्मरण किया है।
४ इन्हें 'तर्कशास्त्रप्रवीण' एवं 'उपाध्यायपद्माधीशसूरिपुत्रसमन्वित' कहा है।
५ इन्हें 'जगद्वन्द्य, सुकुमारचरित्रेश, परवादिविदारक' लिखा है।
६ इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ' बतलाया है।
७ इन्हें 'नेमिचन्द्रतनय, संगीतकलाप्रवीण' आदि लिखा है।
८ इन्हें 'कल्याणनाथसहोदर, शब्दतर्कागमाभिज्ञ' कहा है।
९ इन्हें 'कल्याणनाथतनय, साल्वेन्द्रनृपास्थानप्राविष्कृतमहोदय' लिखा है।
१० इन्हें 'बुधस्तुत्य, वादिविजयी, मल्लिरायनृपस्वान्तसरोजातप्रभाकर' बतलाया है।
११ इन्हें 'अभिनंदनभट्टसूनु, बोम्मरसानुज' लिखा है।
१२ इन्हें 'नृपस्तुत्य' कहा है।
१३ इन्हें 'कविश्रीपतिमातुल' बतलाया है।
१४ इन्हें 'उपाध्यायतनुसंभव' लिखा है।
१५ इन्हें 'वेणुपुरभव्यजनार्चित, तौळवाधीशवन्द्यांघ्रिचन्द्रिमा' आदि लिखा है।
१६ इन्हें 'विद्यानंदमुनीन्द्रनिकटाद्योतदर्शन, संगीतपुरसाल्वेन्द्रभूपालास्थानभूषण, पदवाक्य-प्रमाणज्ञ, वाद्यद्रिकुलिशायुध' आदि बतलाया है।
१७ इन्हें कवि और आगमका मर्मज्ञ लिखा है।

गया है :—

मंत्री जैतरस[1], मंत्री नागरस[2], मंत्री देवरस[3], दण्डनाथ बैचप[4], सकण्ण[5], मल्लप नायक[6], बोमिश्रेष्ठी[7] ।

आगे ग्रन्थ में अनेकगुणमण्डित, स्मरनिभ, योगीन्द्रसेवापर, विद्यानन्दमहोदय, शुद्धाहारादिदाननिरत, मुक्तालक्षपरीक्षणोक्तनिपुण, विद्वत्कवीन्द्रद्रुम, सारत्रयवेदी, परहिताचारमहाभागी, ज्ञानचारित्रनिलय, एवं सम्यक्त्वरत्नाकर, आदि विशेषणों से प्रशंसित वेणुपुरीय—मूडबिद्रीय भव्य श्रावकों की रक्षा वहाँ के श्रीचन्द्रप्रभ एवं श्रीपार्श्वनाथ किया करें यों अपनी शुभकामना कवि वर्द्धमान जी ने दरसायी है। इसी प्रकरण में वहाँ की धर्मिकाम्मा का भी गुणवर्णन किया गया है। बाद इसी प्रकार गेरुसोप्पे, भट्कळ एवं संगीतपुर के भव्यश्रावकों की भी पर्याप्त प्रशंसा की है।*

१—इन्हें 'प्रधानतिलक, देवरायप्रभुदुर्गाधीश्वरवन्दित, सम्यक्त्वचूडामणि, विप्रकुलाम्बरमणि, सर्वज्ञसत्पर, सद्दानपूजाधिक, नानाशास्त्रविचक्षण, सुकवितासीमन्तिनीवल्लभ, सद्वृत्त, श्रुतकीर्तिदेवयतिराट्पादाब्जगुच्छषट्पद' आदि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है।

२—इन्हें 'मन्त्रितिलक, सौजन्यरत्नाकर सर्वज्ञपादद्वयीसत्पायसमहोदय' लिखा है।

३—इन्हें 'कृतश्रीजिनमंदिर, सारत्रयसुधासिन्धुपारदृश्वा, विद्वत्पधरणीशपालनीय' बतलाया है।

४—इन्हें 'जिनचरणसरोजद्वैतपूजाधिराज, जनवृन्दप्राणरक्षाप्रवृन्द, श्रीदेवरायधरणीश्वरदत्तमान्य, सद्धर्मसाधितमहापरलोकसार्थ, कीर्तिपरिभूषितदिग्वधूटि' आदि कहा है।

५—इन्हें 'वीरश्रीविजयावनीशाननपद्मादेवरायप्रभुश्रेष्ठिपदगत, विख्यातदानाधिप, धर्मभूषणगुरुपदाम्बुजातद्वयीरोलम्ब, जिनवल्लभ' लिखा है।

६—इन्हें 'मल्लिकार्जुनरायमहामात्य, जिनपादार्चनासक्त' बताया है।

७—इन्हें 'श्रीरत्नराजविजयावनिपालमौलि, श्रीलोकनेश्वरनृपार्चितपादपीठ, श्रीवीरसेनमुनिपादनिधानदीप, विबुधव्रजकल्पभूज, विद्यानन्दव्रतिपतिपदाराधनासक्तचित्त, विद्वत्सेव्य, सकलभुवनख्यातकीर्ति, साहित्यज्ञ, जिनपतिमताचारवान्, चातुर्यप्रवीण' कहा है। साथ ही साथ इनके नाम के पूर्व में 'टंकशाला' यह पद दिया गया है जिससे यह बात सिद्ध होती है कि यह बोमिश्रेष्ठी टंकशाल के अध्यक्ष थे।

* इसके बाद एक श्लोक यों मिलता है जिसमें रेखांकित पद अवश्य विचारणीय हैं :—

"वीरश्रीन्द्रनरेन्द्रवन्दितपदाः कुर्वन्तु भव्यावलेर्-
पार्श्वसिद्धिं दुर्गवाख्यपनेलपचितश्रीचैत्यधामस्थिता ।
धीरराममणनायकेष्टरवास्तव्यानिनेयाग्रिम
मायध्वाजिननायकस्तुतगुणास्तार्थद्रुम मङ्गलम् ॥"

पश्चात् कुम्मरण श्रेष्ठि-पुत्र नागप्प श्रेष्ठी की बड़ी प्रशंसा की गयी है। आगे पुनः क्रमशः निम्नाङ्कित व्यक्तियों के नाम स्मरण किये गये हैं :—

संगरस,[१] अणंतण श्रेष्ठी,[२] नारण श्रेष्ठी,[३] मल्लि श्रेष्ठी,[४] जिनदत्त,[५] ओजन श्रेष्ठी,[६] विजयण,[७] लक्खप,[८] पायप्प,[९] नेमि श्रेष्ठी,[१०] नेमण श्रेष्ठी,[११] गुम्मि श्रेष्ठी,[१२] नागप्प,[१३] तम्मण,[१४] गुम्मटदेव,[१५] विजयप्प,[१६] आदिनाथ,[१७] नेमिचन्द्र,[१८] पण्डित

१—इन्हें 'सालुवमल्लिरायनृपतेर्मन्त्रीश्वर, श्रीमान्, विनिर्मितजिनावास, महासत्यवाक्, पूजादानपुरस्सरोरुहृदय, जैनेन्द्रशास्त्रादर, श्रीरनृसिंहरायधरणीट्प्राप्तेद्धमाग्योदय' कहा है।

२—इन्हें 'जिनधर्ममहामति, त्रियम्बकमहामालचन्दनश्रेष्ठ्यनूद्भव' बताया है।

३—इन्हें 'विसु, श्रावकाचारसद्रत्नभूष्यसद्हृदय' लिखा है।

४—इन्हें 'नागिश्रेष्ठितनूभव, गुणनिधि, सद्दानतीर्थेशिनां मुख्य, जिनराजपूजनविधिव्यासक्तचित्तोत्सव, विद्यानन्दमुनीन्द्रसेवनपर, सद्धर्मकेलीगृह, इन्दुकल्पयश' व्यक्त किया है।

५—इन्हें 'मंगिश्रेष्ठिसुगर्भोत्थनागिश्रेष्ठितनूद्भव' लिखा है।

६—इन्हें 'कृतनेमिजिनालय, गेरुसोप्पेपुरीमध्यराजित' बताया है।

७—इन्हें वणिजेश, दयाधर्मकोश, कविबुधसुरधेनु, पायण्णश्रेष्ठिसूनु, जिनमुनिकजभृंग, त्यक्तकान्ताप्रसङ्ग, यतिवृत्त, पात्रसन्त्यक्तवित्त' कहा है।

८—इन्हें 'पायक्कापतिपायणप्रसुसुत, श्रेष्ठीश्वर, वाणिज्यादिकलाप्रवीण, सत्पात्रलेप, पायपवाणिजाग्रज, प्रव्यक्तपुण्योदय' लिखा है।

९—इन्हें 'जयति विजयकीर्तेः पादसेवाढ्यचित्तो धनपतिनिभवित्तः पोपितानेकपात्रः। प्रथितगुरुचरित्रः कामसंकाशगात्रो जनजलजविमित्रः पायपो जैननेत्रः॥" कहा है।

१०—इन्हें 'देविश्रेष्ठ्यनुजात, गुणाकर, भुवनस्तुत' लिखा है।

११—इन्हें 'गुम्मणश्रेष्ठ्यनुत्पन्न, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' बताया है।

१२—इन्हें 'मन्त्रिसंघविपुत्र, दयानिधि, व्रतशीलतपोनिष्ठ, चारुदर्शन, कहा है।

१३—इनकी माता नागरसी, पिता श्रेष्ठी तम्मण्ण, देव वृषभेश्वर, व्रत-गुरु नेमिचन्द्र व्रती, शिक्षागुरु विद्यानन्द बताये गये हैं। इन्होंने दो मन्दिर भी बनवाये थे।

१४—'श्रीशं नागरसीशठुम्मणविभोर्गर्माब्धिराकाविधुं
सर्वज्ञामलपूजनात्तविभवं सौजन्यरत्नाकरं।
आहारादिसमस्तदाननिरतं संसारसौख्योदयं
पायात्तम्मणनामधेयवणिजं श्रीवर्द्धमानो जिनः॥' कहा है।

१५—इन्हें 'कुम्मणश्रेष्ठिनन्दन, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' लिखा है।

१६—इन्हें 'करणिकतिलक' बताया है।

१७—इन्हें दशरथ की उपमा दी गयी है।

१८—इन्हें 'चेन्नरायपट्टणराज्यश्रीमुखाब्ज, मन्त्रिकुञ्जर, चतुर्विध-[illegible]

विजयप्प,[१] गुम्मय,[२] देवरस,[३] धरणिपण्डित [४] लुम्मण [५] गुम्मि श्रेष्ठी,[६] विजयनगरवासी गुम्मि श्रेष्ठी,[७] चेन्नन श्रेष्ठी [८] देवरसो,[९] मल्लि श्रेष्ठी,[१०] गुम्मट श्रेष्ठी,[११] नेमपाल श्रेष्ठी,[१२]

१—इन्हें 'आयुर्वेदविशारद, भूकुन देवेन्द्रानुजनजयायनृपमुखाम्भोदृघसपद्व्रज, देवरसाख्य परिडतनूजात, द्विजाग्रेसर, काश्यपगोत्रज, स्मरसम, गोविन्दराजसुत' कहा गया है।

२—इन्हें 'अमचवादीपत्तनश्रीमुकुन्द, कृतजिनपतिगेह, अमात्यवर्य, विबुधजनवसर जैनविप्रावतंस, परबलमधुकुण्ण, कामरूप' बताया है।

३—इन्हें 'निरस्तनार्यतनय, प्रमजनसुतप्रभ, रायसभाप्राप्यमहोदय, श्रीम्मरसानुज, द्विज कुलसोमामलश्रीसुधामूर्ति, दानमरन्नवंपविख्नप्राहोरेज सद्व्रति, पार्श्वजिनेन्द्रपादयुगलाब्ज प्रसूनाविधि, मन्त्रि तिलक, सम्यक्त्वपूतव्रत, सोमभूपालसम्मन्त्री द्विज, हरवेग्रामसन्मध्यक्षत पूतजिनालय' लिखा है।

४—इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ, श्रीमान्, वीरपुर्व्यांशासविर, धर्मवत्सल' बताया है।

५—इन्हें 'बेलगावेनगराधीश, महाप्रभु, जिनेन्द्रधर्मनिरत, मुनिसेवाविचक्षण' कहा है।

६—इन्हें 'विद्यानगरे निर्मापितजिनालय, वैश्यकुलाग्रणी, मृदुवचा, नागाम्बिकावल्लभ भवनीजनस्तुतगुण, सदानन्द' लिखा है।

७—"विजयनगरवासो वैश्यवंशावतंसो जिनपतिपदपूजासक्तचित्तो विभान्ति। अनुगत पुरुपुरुषा कामिनीषुनयुक्ता परहितसुचरित्रा दानपूजाप्रसंगा" ॥

८—"विद्यानन्दयतिपतिपदाराधनासक्तचित्तो विद्वत्सव्य सकलभुवनख्यातकीर्तिर्गुणाढ्य। साहित्यज्ञो जिनपतिमताचारवान् दक्षशाली नेम्मिश्रेष्ठी जयति भुवने चातुरग्रप्रवीण ॥"

९—इन्हें 'हरियणसहजात, सकलगुणसमेत, धर्मवार्ध्येन्दिजात, जनविनुतचरित्र लपदा-नार्हवित्त' लिखा है।

१०—"श्रीमत्या जन (चेन्न)-वाणिजस्य कृतिन सद्धर्मसंशोभिनो दौहित्री जिननेमिनाथ-बसतेरग्रे जिनार्चाङ्कित। मानस्तम्भमल चकार रमणी सीमन्तमुक्तामणिर्लोह देवरसी सदम्बु-बरिघटकूचित्तोत्सवानन्दिनी" ॥

११—इनके विषय में लिखा है कि मागोदु के पति, धनसम्पन्न मल्लि श्रेष्ठी ने नेमि तीर्थङ्कर का चैत्यालय बनवाया।

१२—इन्हें 'देविश्रेष्ठिसहोदर, कविनुत, धर्मालिंगितविग्रह, जिनपतिश्रीपादसवापर' लिखा है।

१३—इन्हें 'गुम्मटश्रेष्ठ्यनुज, क्षमादिनिलय, श्रेष्ठीश, जिनदर्शनभ्रमपट्, पुत्रपौत्रान्वित बतलाया है।

दुम्मण श्रेष्ठी,[1] बोम्मराण श्रेष्ठी,[2] सालुव नायक,[3] कामराण-देवरस,[4] होन्नप नायक,[5] हैवरा नायक,[6] तिम्मराण नायक,[7] पद्मराण श्रेष्ठी,[8] सराणामरि नायक,[9] पायराण श्रेष्ठी,[10]

१—इन्हें 'अंगजाम, जिनेन्द्रपूजागुरुराजकल्प, जैनशास्त्रप्रवीण, अव्याहतपुण्यसार्थ' कहा गया है।

२—"दुम्गूरुग्राममध्ये कृतजिनसद्मनो बोम्मणश्रेष्ठिवर्यः
शास्त्राख्यानां यतीनां कमनगु······यज्ञां जेमनार्थं प्रमोदान्।
त्रिशत्संख्यायुतानां प्रशमिनमूजिनां शालिजं क्षेत्रमुच्चैः।
प्रादान् पूजाव्रताद्यो वणिजकुलमणिः स्वर्गमोक्षाप्तये वै॥

३—"मावुनायकपुत्रोऽस्मान् श्रीमान सालुवनायकः।
दानपूजाप्रसक्तात्मा गुरुराजांघ्रिभक्तिमान॥
मंगीलनगरे श्रीलो अभिश्रेष्ठि-जिनालयम।
संतनोनिस्म तोयेण ताम्रसंछादितं वरम॥"

४—इन दोनों अधिकारियों ने एक जिनमन्दिर का निर्माण कराया था।

५—"श्रीद्धं होन्नपनायकं गुणनिधिं प्रजाधनानन्दिनम
कारुण्यामृतपूर्णपात्रमवनौ विद्वज्जनैः संस्तुतम।
जैनेन्द्रामलशास्त्रनिश्चितमहार्जीवादिभावस्थितम
पायात्संगरनिर्जितारिनिकरं श्रीवर्द्धमानो जिनः॥"

६—"श्रीमत्सालुवकृष्णदेवनृपतेः मंत्रात्रमद्रं भवो-
धीमाञ्जीवदयापरो नयविदामग्रेसरः सौम्यभाक्।
भव्यो हैवणनायकः कृतमहाजैनप्रतिष्ठोत्सवो-
योगिस्वान्तकजांशुमान् विजयते सम्यक्त्वचूडामणिः॥"

७—"श्रीतिम्मनायक कृपापरपूर्णमूर्त्ते श्रीकृष्णदेवनृपदक्षिणबाहुकल्प।
विद्वत्कवीन्द्रसुरभूरुह जीवभूमौ अद्य अगणवनितानयनाब्जमित्र॥"

८—"पद्माकरपुरस्थः श्रीपार्श्वेशो मन्त्रिशेखरम्।
पद्मणश्रेष्टिनं पायाद्विनिर्मितजिनालयम॥"

९—"रामराजनृपामात्योऽमात्सरण रिनायकः।
जिनप्रतिष्ठासद्दानसंघपूजादिभासुरः॥"

१०—"पायिश्रेष्ठितनूभुवो जिनगृहं वेङ्गयातटाके वरम्
पश्चात्पोम्बुचनाम्नि पश्चवसतीः कृत्वा पुरे पान्नरिः। (?)
जीर्णोद्धारविधानतो जिनमहायज्ञं ध्वजाद्यङ्कितम्
भक्त्या पायणवाणिजो व्यरचयन् सत्संघपूजां च सः॥"

विजयण,' गुम्मय,' देवरस ' धरणिपण्डित,' गुम्मण,' गुम्मि श्रेष्ठी,' विजयनगरवासी ' गुम्मि श्रेष्ठी,' नेमन श्रेष्ठी ' देवम्मा,' ' मल्लि श्रेष्ठी,' ' गुम्मट श्रेष्ठी,' ' नेमण्ण श्रेष्ठी,''

१—इन्हें 'आयुर्वेदविशारद, सूनुत, देवेन्द्रानुजन जयपनृपगुणानोद्गूधर्मपद्मव्रज, देवरसाक्षपरिहस्तनूजात, द्विजाधीश्वर, काश्यपगोत्रज, स्मरसम, गोविन्दराजस्नुत' कहा गया है।

२—इन्हें 'श्रमचरादीपजनश्रीपुरन्द, कृतजिनपनिकेत, अमात्यवर्य, विबुधजनवसन्त, जैनविप्राजस, परधनमधुष्ण, कामरूप' बताया है।

३—इन्हें 'निरवद्यार्थनलय, प्रभजनसुलभ, गयमभाग्यमहोदय, धोम्मरसानुज, द्विजकुलसोमामलधीसुधामूर्ति, दानमरन्दर्पितभ्रमरोत्कर महति, पार्श्वजिनेन्द्रपादयुगलीरुजसमूलाविधि, मन्त्रिनीतिनर, सम्यक्त्वसुलजल, सामभूषानसम्पन्नी, द्विज, हरयेसाससन्मध्यगपूतजिनालय' लिखा है।

४—इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ, श्रीमान्, वीरपूर्वीरामचिर, धर्मवत्सल' बताया है।

५—इन्हें 'वेनगाधेनगराधीश, महाप्रभु, जिनेन्द्रधर्मनिरत, मुनिसेवाविचक्षण' कहा है।

६—इन्हें 'विद्यानगर निर्मापितजिनालय, वैश्यकुलाग्रणी, मृदुरवा, नागाधिकाख्य, अवनीजनस्तुतगुण, सहानन्द' लिखा है।

७—"विजयनगरवासा वैश्यवरानसा जिनपतिपदपूजासक्तचित्ता विभान्ति। अनुगतपुरुषण्या कामिनीपुत्रयुक्ता परहितगुणयुक्ता दानपूजाप्रसक्ता" ॥

८—"जिनानन्दमतिशतिपदाराधनासक्तचित्तो विद्वन्मान्य सकलभुवनख्यातकीर्तिर्गुणाढ्य। साहित्यज्ञो जिनपतिमतावारवान् ढक्कशालार्थाम्मिश्रेष्ठी जयति भुवले चातुरगम्बीए ॥"

९—इन्हें 'हरियणसहजात, सकलगुणसमेत, धर्मवार्ध्यंत्रिजात, जनविनुतचरित्र लेपदनार्हविष' लिखा है।

१०—"श्रीमत्या जन (वेन्न)-वाणिजस्य कृतिन सद्धर्मसशोभिनो दौहित्री जिननेमिनाथवसतेरमे जिनार्चाह्निन। मानलम्भमन चकार रमणी सीमन्तसुतामणिर्वीद दुवरसी सद्गुणाढ्यकृत्सौत्सवानन्दिनी" ॥

११—इनके विषय में लिखा है कि मागोदु के पति, धनसम्पन्न मल्लि श्रेष्ठी ने नेमि तीर्थंकर का चैत्यालय बनवाया।

१२—इन्हें 'देविश्रेष्ठिमहोदर, पवित्रगुण, धर्मालिंगितविग्रह, जिनपतिश्रीपादसत्पर' लिखा है।

१३—इन्हें 'गुम्मटश्रेष्ठ्यनुज, क्षमादिनिलय श्रेष्ठीश, जिनदर्शनमुत्पद, पुत्रपौत्रान्वित' बतलाया है।

विद्यानन्दार्यसूनुः कविविबुधमहापारिजातो विभाति
प्रायो भूताचलेन्द्रः परहितनिरतः शारदांकर्णपूरः ॥
श्रीकृष्णरायसहजाच्युतरायमौलिविन्यस्तपादकमलः कमनीयमूर्त्तिः।
देवेन्द्रकीर्त्तिसुखिराट् जयति प्रसिद्धः स्याद्वादशास्त्रमकराकरशीतरोचिः।

× × × ×

"यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभोः
आस्थाने विदुषां गणं समजयत् पञ्चाननो वा गजम्।
सद्वाग्भिनंखरैरुदात्तविमलज्ञानाय तस्मै नमो
विद्यानन्दसुखीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्त्तये ॥
वाग्देवी वदनाम्बुजे नयनयोः कृष्णार्जुनौ सत्करे
स्वर्धेनुर्हृदये मरुज्जिनपतिः सन्तिष्ठते राजते।
पादे कूर्मकलानिधिप्रभृतयो रोमालिकायां फणी
यस्य श्रीविजयाम्बिका वरगुणा सा विश्वदेवाकृतिः ॥"

× × × ×

जीयात् साळुवमल्लिरायनृपतेः सच्छास्त्रविद्यागुरुः
सर्वज्ञोदिततत्त्वनिश्चितमतिः साहित्यविद्याधरः।
भारद्वाजविशालगोत्रतिलकः स्याद्वादशास्त्राकृतिः
श्रीमान् देवरसाख्यसूरिरमलाचाराग्रणीः सन्नुतः ॥
तस्य देवरसाख्यस्य विद्वद्राजशिरोमणेः।
सेयं त्रिवर्गनिष्पत्त्यै विजयासीन्महीयसी ॥
तयोर्वा विजयादेवरसोपाध्याययोरभूत्।
सुतो बोम्मरसो नाम नीतिविक्रमयोरिव ॥
तत्पुत्रो जनताप्रियः परहितः सद्दर्शनालंकृतः
श्रीमत्साळुवदेवरायनृपतेरास्थानिकाभूषणः।
विद्यानन्दसुखीन्द्रपादसरसीजातद्वयेन्दीवरो-
जीयाद्बोम्मरसो विचक्षणवरः साहित्यरत्नाकरः ॥

× × × ×

तस्याभवत् बोम्मरसस्य पत्नी गुणाश्रया निर्मलवृत्तरम्या।
मुक्तामया हारलतेव कान्ता कण्ठास्पदं देवरसी लतांगी ॥

पार्श्व श्रेष्ठी,[1] गुम्मि श्रेष्ठी,[2] तिम्मि श्रेष्ठी,[3] बोम्मराज[4] । इस प्रकरण का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है "—जिनशासनविख्याता मद्या मत्कर्मकर्मठा । जैनद्विजा सदायान्ता जयन्ति कल्याणपुरा" ॥ वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना। दानपूजागुणाढ्यानां श्रावकाणां स्तुतिः कृता ॥

पृष्ठ १२३ पंक्ति ४ से तुळुदेशान्तर्गत मूडबिदुर के श्रीचन्द्रनाथ से तत्रस्थ भव्यों की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है । इस प्रकरण में कविवर्द्धमान जी ने मूडबिदुरे को स्वर्ग तुल्य कह कर वहाँ के श्रावकों को धनवान्, धीमान्, रूपवान्, शुद्धचारित्रधारक, मुनिसेवारत, सागारधर्मनिरत, मन्त्रमुनि-आज्ञाधारक रागद्वेष विमुक्त एवं त्यागप्रिय आदि विशेषणों से स्मरण किया है । साथ ही साथ चन्द्रनाथ या त्रिभुवनचूडामणि चैत्यालय की बड़ी प्रशंसा की है। वहाँ के पार्श्वनाथ-मन्दिर की प्रशंसा करना भी आप नहीं भूले हैं। इस प्रकरण का अन्तिम पद्य यह है —

> वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
> श्रीवेणुपुरकान्तानां श्रावकाणां स्तुतिः कृता ॥

बाद पूर्व पृष्ठ १२६ से देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्द देवरससूरि एवं इनके कुटुम्ब की प्रशंसा की है—

> "श्रीमान्देवेन्द्रकीर्तिर्यतिपतिमुकुटो मन्त्रवादीभसिंह
> साहित्याम्भोजसूर्यो विमलतरतपः श्रीसमालिङ्गिताङ्गः ।

१—"श्रीपार्श्वश्रेष्ठिनं पायाज्जिनेन्द्रो गुम्मणात्मजम् ।
दानपूजादिदिव्यास्तस्वापतेयं महाधियम् ॥"

२—"कोटीश्वरानुजापुत्रो गुम्मिश्रेष्ठिगुणाकरः ।
दानपूजादिनिरतो राजते जनतास्तुतः ॥"

३—"देविश्रेष्ठ्य पजात सकलगुणनिधिर्जैनसत्सङ्घबन्धु
चेन्नादेव्याः पदाब्जद्वितयमधुकरः सगराभगतजा ।
तिम्मिश्रेष्ठिजिनन्द्रामलमननिरतः श्रीदयाधर्मकोशो
मन्त्रीशः शक्तियुक्तो जगति विजयते सत्यवाग्दानशूरः ॥"

४—"बोम्मालम्बापतिपारम्यभूपतनय श्रीवर्द्धमानोदय
सद्धर्मोदयशैलबालतरणि सद्दानचिन्तामणि ।
सर्वज्ञामलपादयुग्मसरसीजातद्विरेफ सदा
जजीयाद्भुवि बोम्मराजनृपतिर्नारीमनोजाकृति ॥"

विद्यानन्दार्यसूनुः कविविबुधमहापारिजातो विभाति
प्रायो भूताचलेन्द्रः परहितनिरतः शारदांकर्णपूरः ॥
श्रीकृष्णरायसहजाच्युतरायमौलिविन्यस्तपादकमलः कमनीयमूर्त्तिः ।
देवेन्द्रकीर्त्तिसुखिराट् जयति प्रसिद्धः स्याद्वादशास्त्रमकराकरशीतरोचिः ।

× × × ×

"यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभोः
आस्थाने विदुषां गणं समजयन् पञ्चाननो वा गजम् ।
सद्वाग्भिर्नखरैस्तदात्तविमलज्ञानाय तस्मै नमो
विद्यानन्दमुनीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्त्तये ॥
वाग्देवी वदनाम्बुजे नयनयोः कृष्णार्जुनौ सत्करे
स्वर्धेनुर्हृदये मरुज्जिनपतिः सन्तिष्ठते राजते ।
पादे कूर्मकलानिधिप्रभृतयो रोमालिकायां फणी
यस्य श्रीविजयाम्बिका वरगुणा सा विश्वदेवाकृतिः ॥"

× × × ×

जीयात् सालुवमल्लिरायनृपतेः सच्छास्त्रविद्यागुरुः
सर्वज्ञोदिततत्त्वनिश्चितमतिः साहित्यविद्याधरः ।
भारद्वाजविशालगोत्रतिलकः स्याद्वादशास्त्राकृतिः
श्रीमान् देवरसाख्यसूरिरमलाचाराग्रणीः सन्नुतः ॥
तस्य देवरसाख्यस्य विद्वद्राजशिरोमणेः ।
सेयं त्रिवर्गनिष्पत्त्यै विजयासीन्महीयसी ॥
तयोर्वा विजयादेवरसोपाध्याययोरभूत् ।
सुतो बोम्मरसो नाम नीतिविक्रमयोरिव ॥
तत्पुत्रो जनताप्रियः परहितः सद्दर्शनालंकृतः
श्रीमत्सालुवदेवरायनृपतेरास्थानिकाभूषणः ।
विद्यानन्दमुनीन्द्रपादसरसीजातद्वयेन्दीवरो-
जीयाद्बोम्मरसो विचक्षणवरः साहित्यरत्नाकरः ॥

× × × ×

तस्याभवत् बोम्मरसस्य पत्नी गुणाश्रया निर्मलवृत्तरम्या ।
मुक्तामया हारलतेव कान्ता कण्ठासदं देवरसा लतांगी ॥

नील श्रीचिकुर प्रवालमधरो वज्रञ्च दन्तावलि
वैडूर्यं नखर कलेवरमिदं सत्पुष्परागो मणि ।
यस्या शोणमणिप्रियुग्ममलं शृङ्गाररसजीवनी
सा रत्नप्रतिमेव भाति तरुणी श्रीदेवरस्याम्बिका ॥
कुम्भौ पीनपयोधरौ मल्लिनिकावक्त्र पताका क
पद्मं पाणितलं सुतयदुग्मयी दत्तायल्लिस्तोरणम् ।
हेमस्तम्भसदृक्षमूरुयुग यात्र च इव वचो-
यस्या मङ्गलदेवतेव वनिता सा देवरस्याग्रजी ॥
तस्या वियोगविधुर परमार्थसिद्ध्यै देवेन्द्रकीर्तिमुनिराजपदाम्बुजा
सागरयाऽयाभा दीक्षा जिनेन्द्रगदितां परमाश्रयेऽहम् ।'

इसके आगे कन्नड भाषा में कवि वर्द्धमान ने अपनी प्रशंसा लिखी है। वल्कि उल्लिखित देवेन्द्रकीर्ति विद्यानन्द आदि की प्रशंसापरक स्तुति तथा परिचय आदि में भी कन्नड भाषा प्रयोग में लाई गयी है। पश्चात् कुछ ऐतिहासिक पद्य जो ज्ञात होते हैं वे यथावत् नीचे उद्धृत कर दिये जाते हैं

"श्रीकृष्णा कुलवर्गजं गजपुर श्री अर्मराय यथा
पट्टेऽस्थापयदीश्वरचन्द्रनरेन्द्र श्रीवरदराजात्मजम् ।
जामाता भुवि कृष्णरायनृपते श्रीरामराजस्तथा
श्रीपट्टे सदाशिव नरपति विद्यापुरेऽस्थापयत् ॥
त्रेतायां रघुरामचन्द्रनृपति सिन्धोस्तटे द्राविड
रामेश समतिष्ठपत्खलु यथा कर्णाटदेशे कलौ ।
श्रीविद्यानगरे सदाशिवमहाराय नृसिंहप्रभो
स्मार गुरुरामराजनृपतिस्तं राजमौलि तथा ॥
जीयाच्छ्रीभ्यरनाथसिंहतनयश्रीकृष्णारायप्रभो
भ्राता योऽजनि रङ्गरायनृपति पृथ्वीधराहाङ्क्रिन ।
तस्यासौ तनुज सुपुण्यतिलक श्रीरामराजार्चित
क्षोणीपालबल सदाशिवमहारायो जिनेन्द्रद्रुम ॥
अब्दे श्रीरणराजक्षितिपतिकलभ धर्मयन्तीव पुण्यम्
पुत्र जामातर वा परिवृढमत्रनौ मातुलं देवर च ।

विद्वांसस्ते कवीन्द्राः कुवलयसुखदं श्रीवरं रत्नकान्तम् ।
तेजस्वीनं च विश्राणनगुणनिरतं रामराजावनीशम् ॥"

× × × ×

"रेजे पाण्ड्यमहीमहेन्द्रमहिषी श्रीभैरवाम्बा सती
सर्वज्ञांघ्रिसरोजपूजनपरा पुष्पायुधश्रीतुङ्गः ।
साल्वश्रीगुरुरायभैरवनृपश्रीदेवरायप्रभोः
पद्माम्बाग्रजसंगिरायनृपतेः श्रीरामचन्द्रस्यजा ॥
वीरश्रीवरदेवराजकृतसत्कल्याणपूजोत्सवो-
विद्यानन्दमहोदयैकनिलयः श्रीसंगिराजार्चितः ।
पद्मानन्दन.........कृष्णविनुतः श्रीवर्द्धमानो जिनः ।
पायात्साळुवकृष्णदेवनृपतिं श्रीशोऽर्द्धनारीश्वरः ॥"

× × ×

"पञ्चार्हन्तः प्रमाणाः सकलगुणयुता मोक्षदो जैनधर्मो-
वाक्यं जैनेन्द्रवक्त्रोद्गतमवनिहितं बन्धुरा जैनविम्बाः ।
भास्वज्जैनालयाः श्रीसदनमुरुफलं कृष्णदेवक्षितीन्द्रम्
रक्षन्तोद्धप्रतापं कृतजिनसदं पद्मलाम्बाकुमारम् ॥"

× × ×

"बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युतेः ।
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणेः ॥
शिष्येण ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।
जिनेन्द्रचरणद्वंद्वस्मरणाधीनचेतसा ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
कथितं दशभक्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥"

इसके बाद ग्रन्थरचनाकाल यों अङ्कित है:—

"शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीध्रुवे
सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिवे कृष्णाष्टमीवासरे ।
रोहिण्यां दशभक्तिपूर्वकमहाशास्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्वर्द्धमानो मुनिः ॥"

ऊपर उद्धृत इस ग्रन्थ के जहाँ-तहाँ के पद्यों से विज्ञ पाठक सहज ही समझ गये होंगे

नीलः श्रीचिकुरः प्रवालमधरो वज्रञ्च दन्तावलिः
वैडूर्यं नखरः कलेवरमिदं सत्पुष्परागो मणिः।
यस्याः शोणकांघ्रियुग्ममलं श्रृङ्गारसंजीवनी
सा रत्नयतिमेव भाति तरुणी श्रीदेवरस्याम्बिका॥
कुम्भौ पीनपयोधरौ मल्लिनिकावक्त्रं पताका क ……
पर्णं पाणितलं मुतपडुलचयी दन्तावलिस्तोरणम्।
हेमस्तम्भसहृत्तमूरुयुग ' धाम ' च हृद ' यन्नो-
यस्या मङ्गलदेवतेव वनिता सा देवरस्याग्रमौ॥
तस्या वियोगविधुरः परमार्थसिद्ध्यै देवेन्द्रकीर्तिमुनिराजपदाम्बुजा……
…… … सागरपाडयामां शीलां जिनेन्द्रगदितां परमाश्रयेऽहम्।"

इसके आगे कन्नड भाषा में कवि वर्द्धमान ने अपनी प्रशंसा लिखी है। बल्कि उल्लिखित देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्द आदि की प्रशंसापरक स्तुति तथा परिचय आदि में भी कन्नड भाषा प्रयोग में लाई गयी है। पश्चात् कुछ ऐतिहासिक पद्य जो ज्ञात होते हैं, वे यथावत् नीचे उद्धृत कर दिये जाते हैं:

"श्रीकृष्णः कुरुवंशजं गजपुरे श्रीधर्मरायं यथा
पट्टेऽस्थापयदीश्वरेन्द्रनरकं श्रीरंगरायात्मजम्।
जामाता भुवि कृष्णरायनृपतेः श्रीरामराजस्तथा
श्रीपट्टेऽत्र सदाशिवं नरपतिं विद्यापुरेऽस्थापयत्॥
त्रेतायां रघुरामचन्द्रनृपतिः सिन्धोस्तटे द्राविडे
रामेशं समतिष्ठपत्खलु यथा कर्णाटदेशे कलौ।
श्रीविद्यानगरे सदाशिवमहारायं नृसिंहप्रभोः
भ्रातारं गुरुरामराजनृपतिस्तं राजमौलिं तथा॥
श्रीयाद्रीश्वरनारसिंहतनयश्रीकृष्णरायप्रभोः
भ्राता योऽजनि रंगरायनृपतिः पृथ्वीवराहाङ्कितः।
तस्यासौ तनुजः सुपुत्रतिलकः श्रीरामराजार्चितः
क्षोणीपालनलः सदाशिवमहारायो जिनेन्द्रद्रुम॥
अब्दैः श्रीरंगराजक्षितिपतिकलशं वर्णयन्तोद्धपुण्यम्
पुत्रं जामातरं वा परिवृढमवनौ मातुलं देवरं च।

विद्वांसस्ते कवीन्द्राः कुवलयसुखदं श्रीवरं रत्नकान्तम् ।
तेजस्वीनं च विश्राणनगुणनिरतं रामराजावनीशम् ॥"

× × × ×

"रेजे पाराड्यमहीमहेन्द्रमहिषी श्रीभैरवाम्बा सती
सर्वज्ञांघ्रिसरोजपूजनपरा पुष्पायुधश्रीतुजः ।
साळ्वश्रीगुरुरायभैरवनृपश्रीदेवरायप्रभोः
पद्मास्बाग्रजसंगिरायनृपतेः श्रीरामचन्द्रस्यजा ॥
वीरश्रीवरदेवराजकृतसत्कल्याणपूज्रोत्सवो-
विद्यानन्दमहोदयैकनिलयः श्रीसंगिराजार्चितः ।
पद्मानन्दन.........कृष्णविनुतः श्रीवर्द्धमानो जिनः ।
पायात्साळुवकृष्णदेवनृपतिं श्रीशोऽर्द्धनारीश्वरः ॥"

× × ×

"पञ्चार्हन्तः प्रमाणाः सकलगुणयुता मोक्षदो जैनधर्मो-
वाक्यं जैनेन्द्रवक्त्रोद्गतमवनिहितं बन्धुरा जैनबिम्बाः ।
भास्वज्जैनालयाः श्रीसदनमुरुकलं कृष्णदेवक्षितीन्द्रम्
रक्षन्तोद्धप्रतापं कृतजिनसदं पद्मलाम्बाकुमारम् ॥"

× × ×

"बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युतेः ।
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणेः ॥
शिष्येण ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।
जिनेन्द्रचरणाद्वैतस्मरणाधीनचेतसा ॥
वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।
कथितं दशभक्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥"

इसके बाद ग्रन्थरचनाकाल यों अङ्कित है:—

"शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीप्लवे
सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिवे कृष्णाष्टमीवासरे ।
रोहिण्यां दशभक्तिपूर्वकमहाशास्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्वर्द्धमानो मुनिः ॥"

ऊपर उद्धृत इस ग्रन्थ के जहां-तहां के पद्यों से विज्ञ पाठक सहज ही [illegible]

कि इस ग्रन्थ का इतिहास से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित प्रत्येक बात पर सावधानता से विचार करने पर कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा और एक सुन्दर महत्त्व-पूर्ण प्रबन्ध तैयार होगा। खास कर उत्तर कर्णाटक के जैन इतिहास निर्माण में इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। किन्तु ग्रन्थ-प्रतिपादित सभी बातों को सप्रमाण खोज एवं सिद्ध करने के लिये पर्याप्त समय आवश्यक है। पर इस समय मेरे पास इतना समय नहीं है। अतः मैं एकमात्र अन्वेषणशील सावकाश विद्वानों से ग्रन्थगत बातों पर प्रकाश डालने के लिये अवश्य सादर अनुरोध करूँगा।

ग्रन्थ-रचयिता कवि वर्द्धमान जी ने इसमें अपने पूर्वज विद्यानन्द और देवेन्द्रकीर्ति की कई स्थानों पर बड़ी प्रशंसा एवं स्तुति की है। यह विद्यानन्द वही विद्यानन्द हैं जिनके सम्बन्ध में "जैनएन्टिक्वेरी" भाग ४ नं० १ में डा० सालेतोर का Vadi Vidyananda A Renowned Jaina Guru of Karnataka शीर्षक एक महत्त्व-पूर्ण विस्तृत लेख अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। विज्ञ लेखक ने इनके बारे में अपने गवेषणा-पूर्ण लेख में अच्छा विवेचन किया है। विद्यानन्द विजयनगर साम्राज्य के समसामयिक हैं। मैसूर राज्यान्तर्गत नगर तालुके के हुम्मच नामक स्थान में इनसे सम्बन्ध रखनेवाले कई शिलालेख मौजूद हैं। आप नन्दिसंघ के कुन्दकुन्दाम्नय के अनुयायी थे। इस अन्वय में समन्तभद्र पूज्यपाद आदि बड़े बड़े लोकविश्रुत आचार्य हो गये हैं। विद्यानन्द एक अद्वितीय वादि विजयी थे। भिन्न-भिन्न राजसभाओं में जाकर इन्होंने जो जय-लाभ प्राप्त किया था उन सब का विस्तृत परिचय अनेक शिलालेखों में मिलता है। बल्कि वर्द्धमान जी ने अपने इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी शिलालेख-गत कतिपय पद्यों को जहाँ-तहाँ उद्धृत किया है। डा० सालेतोर ने भी पूर्वोक्त अपने लेख में इनकी विजययात्रा सम्बन्धी बातों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। नरसिंहराज कृष्णराजविक्रम आदि जिन जिन राजाओं की सभाओं में विद्यानन्द जी ने वाद-द्वारा यश प्राप्त किया था वे अमुक स्थान के अमुक राज्य के एवं अमुककाल के राजा थे इन सब जटिल बातों को सप्रमाण सिद्ध करने की आपने सफल चेष्टा की है।

विद्यानन्द केवल वादी ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रकाण्ड समालोचक तथा सुदक्ष कवि भी थे। शिलालेख में इनके गद्य के लिये महाकवि बाण की उपमा दी गयी है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अच्छा काम किया था। गेरसोप्पे में तो इनका एकछत्र आधिपत्य था ही। साथ ही साथ कोपण श्रवणबेलगोल आदि स्थानों में भी विद्यानन्द जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। वर्द्धमान जी के द्वारा सिंहकीर्ति चन्द्रकीर्ति विशालकीर्ति एवं विद्यानन्द

(२४) ये चारो विद्यानन्द के 'सूनु' या 'तनय' कहे गये हैं। मालूम नहीं होता है कि उक्त ये विद्वान् विद्यानन्द के आत्मज और शिष्य दोनों थे या केवल शिष्य। शिष्य के लिये भी सूनु, तनय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है अवश्य; फिर भी इन चारो विद्वानों के परिचय में आये हुए खास कर 'सूनु' 'तनय' इन शब्दों को देख कर इन्हें आत्मज और शिष्य दोनों अनुमान करना युक्ति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इन चारों का संक्षिप्त उल्लेख आगे कर दिया है। इस 'दशभक्त्यादिशास्त्र' में स्मरण किये गये देवराय*, कृष्णराय, अच्युतराय, मल्लिराय, रामराय, रंगराय नृसिंह, संगिराय, सदाशिव, पद्मामबा और भैरवाम्बा आदि ये सभी व्यक्ति विजयनगर-राज-घराने के हैं।

डा० सालेतोर का कहना है कि साल्व मल्लिराय, देवराज, कृष्णराज और संगिराय ये चारो तौळव देशान्तर्गत संगीतपुर अर्थात् हाडुहळ्ळि के साल्व या सालुव-वंश के हैं। संगीतपुर, वेणुपुर एवं गेरुसोप्पे इन तीनों स्थानों में इनकी राजधानियां थीं। पर यह निश्चित-रूप से कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान में राज्य करता था। हाँ, संगिराय का लड़का इंद्गरस संगीतपुर में ही राज्य करता था। नगरी राज्य का भी गेरुसोप्पे से सम्बन्ध था। देवराज और कृष्णराज से विद्यानन्द का साक्षात् सम्बन्ध था। पद्मामबा देवराज की बहन तथा कृष्णराज की मां थी। उस समय गेरुसोप्पे एवं संगीतपुर में भी तौळव देशके समान 'अळियकट्टु' अर्थात् भगिना के मामा का उत्तराधिकारी होना यह प्रथा जारी थी। इसी से कृष्णराज को मामा देवराज का राज्य मिला था। भैरवाम्बा का विवाह पाराड्यराज से हुआ था। डा० सालेतोर विद्यानन्द का अस्तित्व ई० सन् १५०२ से १५३३ मानते हैं। परन्तु मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४६३ ई० सन् १५४१ में हुआ था।

ऊपर अन्यान्य परिचयात्मक एवं प्रशंसापरक पद्यों में ग्रन्थकर्ता के द्वारा स्मरण किये गये देवराय (ई० सन् १४२९—१४५?) से प्रणत धर्मभूषण, विद्यानन्द के 'सूनुवर्य', व्रतीन्द्र, महादानी, निष्कलङ्क चारित्र के आराधक, कर्णाटक की ही राजसभाओं में नहीं, दिल्ली के सुलतान महमूद† के राजदरबार में भी बौद्धों को हरानेवाले एवं नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ भट्टारक

* राय और राज ये दोनों शब्द समानार्थक हैं, इसीलिये कोई 'राय' लिखता है और कोई 'राज'।

† यह दिल्ली के सुल्तान महमूद या मुहम्मद तुग़लक़ होना चाहिये। मुसलमान बादशाहों में यह बहुत ही विद्वान् और योग्य शासक था। उसे हिन्दुओं की धर्म-मान्यताओं के प्रति भी सम्मान-भाव था। यह इस्लाम और अरस्तू के सिद्धान्तों का अच्छा जानकार था। उसे तत्त्ववेत्ताओं से वाद करने का भी व्यसन था। इसकी तर्कशक्ति देख कर अच्छे अच्छे तार्किक विद्वान् भी आश्चर्यित हो जाते थे। अतः इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं, यदि सिंहकीर्त्ति

कि इस ग्रन्थ का इतिहास से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित प्रत्येक बात पर सावधानता से विचार करने पर कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा और एक सुन्दर महत्त्व-पूर्ण प्रबन्ध तैयार होगा। खास कर उत्तर कन्नड जिला के जैन इतिहास निर्माण में इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। किन्तु ग्रन्थ प्रतिपादित सभी बातों को सप्रमाण खोज एवं सिद्ध करने के लिये यथेष्ट समय सापेक्ष है। पर इस समय मेरे पास इतना समय नहीं है। अतः मैं एकमात्र अन्वेषण शील सावकाश विद्वानों से ग्रन्थगत बातों पर प्रकाश डालने के लिये अवश्य सादर अनुरोध करूँगा।

ग्रन्थ रचयिता कवि वर्द्धमान जी ने इसमें अपने पूर्वज विद्यानन्द और देवेन्द्रकीर्त्ति की कई स्थानों पर बड़ी प्रशंसा एवं स्तुति की है। यह विद्यानन्द वही विद्यानन्द हैं जिनके सम्बन्ध में 'जैनएन्टिक्वेरी' भाग ४, नं० १ में डा० सालेतोर का 'Vadi Vidyananda-A Renowned Jaina Guru of Karnataka' शीर्षक एक महत्त्व-पूर्ण विस्तृत लेख अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। जिस लेख में इनके बारे में आपने गवेषणा-पूर्ण लेख में अच्छा विवेचन किया है। विद्यानन्द विजयनगर साम्राज्य के समसामयिक हैं। मैसूर राज्यान्तर्गत नगर तालुक के हुम्मच नामक स्थान में इनसे सम्बन्ध रखनेवाले कई शिला लेख मौजूद हैं। आप नन्दिसंघ के कुन्दकुन्दान्वय के अनुयायी थे। इस अन्वय में समन्तभद्र, पूज्यपाद आदि बड़े बड़े लोकविश्रुत आचार्य हो गये हैं। विद्यानन्द एक अद्वितीय वादि विजयी थे। भिन्न भिन्न राजसभाओं में जाकर इन्होंने जो जय लाभ प्राप्त किया था उन सब का विस्तृत परिचय अनेक शिलालेखों में मिलता है। बल्कि वर्द्धमान जी ने अपने इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी शिलालेख गत कतिपय पद्यों को जहां-तहां उद्धृत किया है। डा० सालेतोर ने भी पूर्वोक्त अपने लेख में इनकी विजययात्रा सम्बन्धी बातों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। नंजदेवराज कृष्णविक्रम आदि जिन जिन राजाओं की सभाओं में विद्यानन्द जी ने वाद-द्वारा यश प्राप्त किया था वे अमुक वंश के, अमुक राज्य के एवं अमुककाल में राजा थे इन सब अखिल बातों को सप्रमाण सिद्ध करने की आपने सफल चेष्टा की है।

विद्यानन्द केवल वादी ही नहीं थे प्रत्युत एक प्रवीण समालोचक तथा सुदक्ष कवि भी थे। शिलालेख में इनके गद्य के लिये महाकवि बाण की उपमा दी गयी है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अच्छा काम किया था। गेरुसोप्पे में तो इनका एकछत्र आधिपत्य था ही। साथ ही साथ कोपण, श्रवणबेल्गोल आदि स्थानों में भी विद्यानन्द जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। वर्द्धमान जी के द्वारा सिंहकीर्त्ति देवेन्द्रकीर्त्ति, त्रिभुवनकीर्त्ति एवं विद्यानन्द

(२५) ये चारो विद्यानन्द के 'सूनु' या 'तनय' कहे गये हैं। मालूम नहीं होता है कि उक्त ये विद्वान् विद्यानन्द के आत्मज और शिष्य दोनों थे या केवल शिष्य। शिष्य के लिये भी सूनु, तनय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है अवश्य; फिर भी इन चारो विद्वानों के परिचय में आये हुए खास कर 'सूनु' 'तनय' इन शब्दों को देख कर इन्हें आत्मज और शिष्य दोनों अनुमान करना युक्ति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इन चारों का संक्षिप्त उल्लेख आगे कर दिया है। इस 'दशभक्त्यादिशास्त्र' में स्मरण किये गये देवरायक्ष, कृष्णराय, अच्युतराय, मल्लिराय, रामराय, रंगराय नृसिंह, संगिराय, सदाशिव, पद्मास्वा और भैरवास्वा आदि ये सभी व्यक्ति विजयनगर-राज-घराने के हैं।

डा० सालेतोर का कहना है कि साल्व मल्लिराय, देवराज, कृष्णराज और संगिराय ये चारो तौळव देशान्तर्गत संगीतपुर अर्थात् हाडुहल्लिळ के साल्व या सालुव-वंश के हैं। संगीतपुर, चेरुपुर एवं गेरुसोप्पे इन तीनों स्थानों में इनकी राजधानियां थीं। पर यह निश्चित-रूप से कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान में राज्य करता था। हां, संगिराय का लड़का इंदगरस संगीतपुर में ही राज्य करता था। नगरी राज्य का भी गेरुसोप्पे से सम्बन्ध था। देवराज और कृष्णराज से विद्यानन्द का साक्षात् सम्बन्ध था। पद्मास्वा देवराज की बहन तथा कृष्णराज की मां थी। उस समय गेरुसोप्पे एवं संगीतपुर में भी तौळव देशके समान 'अळियकट्टु' अर्थात् भगिना के मामा का उत्तराधिकारी होना यह प्रथा जारी थी। इसी से कृष्णराज को मामा देवराज का राज्य मिला था। भैरवास्वा का विवाह पाण्ड्यराज से हुआ था। डा० सालेतोर विद्यानन्द का अस्तित्व ई० सन् १५०२ से १५३३ मानते हैं। परन्तु मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४६३ ई० सन् १५४१ में हुआ था।

ऊपर अन्यान्य परिचयात्मक एवं प्रशंसापरक पद्यों में ग्रन्थकर्ता के द्वारा स्मरण किये गये देवराय (ई० सन् १४२९—१४५१) से प्राप्त धर्मभूषण, विद्यानन्द के 'सूनुवर्य', व्रतीन्द्र, महादानी, निष्कलङ्क चारित्र के आराधक, कर्णाटक की ही राजसभाओं में नहीं, दिल्ली के सुलतान महमूद† के राजदरबार में भी बौद्धों को हरानेवाले एवं नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ भट्टारक

क्ष राय और राज ये दोनों शब्द समानार्थक हैं, इसीलिये कोई 'राय' लिखता है और कोई 'राज'।

† यह दिल्ली के सुल्तान महमूद या मुहम्मद तुगलक होना चाहिये। मुसलमान बादशाहों में यह बहुत ही विद्वान् और योग्य शासक था। उसे हिन्दुओं की धर्म-मान्यताओं के प्रति भी सम्मान-भाव था। यह इस्लाम और अरस्तू के सिद्धान्तों का अच्छा जानकार था। उसे तत्त्ववेत्ताओं से वाद करने का भी व्यसन था। इसकी तर्कशक्ति देख कर अच्छे अच्छे तार्किक विद्वान् भी आश्चर्यित हो जाते थे। अतः इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं, यदि सिंहकीर्त्ति

सिंहकीर्ति वादीन्द्र परमागमकोविद महातपस्वी, सिकन्दर सुल्तान* द्वारा सम्मानप्राप्त भट्टारक विशालकीर्ति, अपने बाहुबल से विद्यानगर (विजयनगर) के स्वामी विरूपाक्षराय (ई० सन् १४६५—१४७९) की सभा में वादियों को जीतकर विजय पत्र को प्राप्त करनेवाले, आरगनगर के दण्डनाथ (नायसराय) देवप्प† के दरबार में जैनधर्म के महत्त्व को प्रगट

जी ने सुल्तान मुहम्मद तुगलक के दरबार में प्रसिद्धि प्राप्त की हो। दिल्ली के सुयोग्य सुल्तान के द्वारा निमन्त्रित किये गये तत्त्ववेत्ताओं में यह भी एक होंगे और इन्होंने सन् १३२६ एवं १३३० ई० के मध्य सम्मान प्राप्त किया था यह अनुमान करना निर्मूल नहीं कहा जा सकता। (देखें—'भास्कर' भाग ४, किरण ४, में प्रकाशित डा० सालेतोर का "दिल्ली के सुल्तान और कर्नाटक के जैनगुरु" शीर्षक लेख) पर एक बात है कि डा० सालेतोर 'पद्मावती-बस्ति' के शिलालेखगत पाठ को इस ग्रन्थगत पाठ के समक्ष रख कर इस पर फिर एक बार विचार करने का कष्ट उठावें। क्योंकि सिंहकीर्ति के परिचय को व्यक्त करनेवाले इस पद्य में कुछ शब्द ऐसे हैं जिन पर विचार करना अवशिष्ट है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पद्य में 'महम्मद सुरित्राण' शब्द स्पष्ट मिल रहा है जो कि उक्त शिलालेख में डा० साहब के कथनानुसार केवल 'सूर-सुरित्राण' पाया जाता है। साथ ही साथ शिलालेख में जहाँ 'बगाल्य-देशाद्भुत' पाठ है वहाँ 'बगाढ्यदेशाद्भुत' है। इसके अतिरिक्त भी दोनों पाठों में और भी अन्तर है। उसका पाठ यों है—"यामाति ग्रन्थक्षकोर्हिने तत्तनयो बगाल्यदेशाद्भुतश्रीमद्दिल्लीपुरे सूरसुरित्राणस्य भाराज्ने निर्जित्याशु समावनम् जितगुरुर् बौद्धादिवादिव्रज श्रीमद्भट्टारकसिंहकीर्ति मुनि रा ट्कविद्या-गुरु" (पद्मावती-बस्ति का शिलालेख)

"यामात्यद्वयकोर्हिंतिशतनयो बगाढ्यदेशाद्भुत
श्रीमद्दिल्लिपुरे महम्मदसुरित्राणस्य भाराज्ने।
निर्जित्याशु समावनो जितगुरु (जितगुरुर्वौ) बौद्धादिवादिव्रजम्
श्रीमद्भट्टारकसिंहकीर्तिमुनिराट् नाम्ना कविद्यागुरु॥" (दशभक्त्यादिशास्त्र)

* यह सिकन्दर दिल्ली के सुल्तान सिकन्दर सूर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी निश्चित है कि सन् १५५४ में जब सुल्तान सिकन्दर सूर दिल्ली का शासक हुआ सम्भव है कि इसी साल में विशालकीर्ति जी इसके दरबार में आये हों और सुल्तान ने इनका सत्कार किया हो। सिकन्दर का समय १४६८—१५५४ ई० है। विशेष बात जो जानना चाहें वे देखें—डा० सालेतोर के 'भास्कर' भाग ४, किरण ४ में प्रकाशित 'दिल्ली के सुल्तान और कर्नाटक के जैनगुरु'।

† विजयनगर का नायसराय (दण्डनायक) गिरिनाथ का पुत्र देवप्प दण्डनाथ था। यह आरग का शासक था। देवप्प मल्लिकार्जुन या इम्मडि देवराय एवं विजयनगर के दूसरे सम्राट् विरूपाक्ष के राज्यकाल में आरग का शासन करता था। (देखें भास्कर भा० ४, किरण ४)

करनेवाले एवं तत्रस्थ ब्राह्मणों से पूजित, अच्युतराय (ई० सन् १५३०—१५४२) तथा मल्लिराय (ई० सन् १४५१—१४६५) से सम्मानित, आगमत्रयसर्वज्ञ, महाकवि, विविधोपन्यासविचक्षण, कार्कळ के पाण्ड्यराज के द्वारा समर्चित तथा विद्यानन्द के पुत्र भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्द स्वामी के सधर्मा, पोम्बुच्च में पार्श्वनाथमन्दिर को बनवा कर बड़े समारोह से प्रतिष्ठा करानेवाले नेमिचन्द्र, विद्वद्वन्द्य, सभी शास्त्रों के ज्ञाता और महावादी, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्त्ति,❀ विशालकीर्त्ति के सधर्मा अनेक गुणभूषित अमरकीर्त्ति, शास्त्रधुरन्धर, विद्यानन्द के पुत्र विद्यानन्दमुनीश्वर, बंकापुर में नृप मादन पल्लप के मदोन्मत्त प्रधान गजेन्द्र को अपने तपोबल से शान्त करनेवाले, स्याद्वादमर्मज्ञ एवं राजशिरोमणि देवराय (ई० सन् १४२९—१४५१) से वन्द्य अकलङ्क, इनके सधर्मा तर्कव्याकरणादि शास्त्रों के पारगामी चन्द्रप्रभदेव, सर्वगुणालंकृत जयकीर्त्ति, जनता के लिये कल्पवृक्ष-तुल्य अकलंकतनय विजयकीर्त्ति, अनेक धर्मप्रभावना-सम्बन्धी कार्य करनेवाले, अकलंक के शिष्य विमलकीर्त्ति, महातपस्वी एवं अकलंकपद-प्रिय पाल्यकीर्त्ति, विदुषी समुज्ज्वलगुणसम्पन्ना, चारित्रवती आर्यिका चन्द्रमती, संगीतपुर (हाडुहळ्ळि) में अनन्तनाथ स्वामी का सुरम्य एवं भव्य चैत्यालय को बनवा कर शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठा करनेवाले, अन्यान्य राजाओं से पूजित, देशीयगण के योगिराज एवं चन्द्रप्रभतनुज नेमिचन्द्र, श्रीरंगपट्टण में बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों से अलंकृत राजसभा में अपनी धारावाही एवं अजेय वाणी के द्वारा वादि-वृन्द को जीतनेवाले, महातपस्वी, देशीयगण के नायक एवं कवि-शिरोमणि विजयकीर्त्ति, होय्सलराज्य-संस्थापक तथा इस राज-वंश को व्रत और विद्या प्रदान करनेवाले वर्द्धमान, मालवपति-वन्द्य† आशाधर, काशीपतिनत कमलभद्र, पेनगोंडे के नरसिंहराय से सम्मानित लक्ष्मीसेन, मालवेन्द्र की सभा में बौद्धों को पराजित करनेवाले और पेगुद्वीपादि-वन्द्य मतिसागर‡, साल्वराज-द्वारा पूजित, त्रैविद्यचक्रेश्वर श्रुतकीर्त्ति, मन्त्रवादीश्वर एवं बल्लालराय-सम्मानित चारुकीर्त्ति, राजा जयकेशरी के मदोन्मत्त हाथी को शान्त करनेवाले माधवचन्द्र, काणूर्गण के प्रधान, जाबालिपुर के राजा से सम्मानित रामचन्द्र, चन्द्रगुप्तिपुर के शासक, चन्द्रगुप्त के द्वारा अर्चित× महर्द्धिक मुनिचन्द्र, केरलाधीश-सम्मानित देवकीर्त्ति,

❀ दिल्ली के बादशाह के दरबार में जाकर शास्त्रार्थ-द्वारा विजय प्राप्त करनेवाले उल्लिखित विशालकीर्त्ति से यह भिन्न हैं या वही हैं, विचारणीय है। क्योंकि वर्द्धमानजी ने कई व्यक्तियों के नाम अनेक बार स्मरण किये हैं।

† यह मालवपति परमारवंश के प्रतापी राजा विन्ध्यवर्म थे।

‡ यह प्रायः वादिराज के गुरु हों।

× पता नहीं लगता कि यह कौन सा चन्द्रगुप्तिपुर है।

माल्वेन्द्र से सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रवादिपितामह गण्डविमुक्त, अनेक राजाओं अर्चित अभयचन्द्र, देवप्पार्य के पुत्र, अभयचन्द्र सूरि के शिष्य एवं विजयनगर के देवराय सम्मानित नेमिचन्द्र, विजयनगर के देवराय के ख्याति-प्राप्त आस्थान-कवि सेम्मडि अ नरसिंहनृपति द्वारा प्रशंसित पण्डितार्य, कल्याणनाथ के पुत्र, साल्व महाराज के आस्थान विद्वान् अभयचन्द्र सूरि, मल्लिराय के हृदयरूपी कमल को विकसित करनेवाले आदिनाथ वेणुपुर के भव्यों के द्वारा अर्चित, तौळवाधीश-वन्द्य समन्तभद्र, अनेक गुणालंकृत, साल्व मल्लिराय के शास्त्र-विद्यागुरु देवरस सूरि, इनके पुत्र अनेक गुणभूषित साल्वदेवराय आस्थान-रत्न एवं विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि आचार्य, कवि, विद्वान् तथा त्रिभुवन देवराय, कृष्णराय, रामराय, कृष्णराय के भाई, रंगराय के पुत्र एवं नृसिंह के भाई सदाशिव, पाण्ड्यराज की महिषी जिनभक्ता भैरवाम्बा, मंगिराय की भगिनी पद्माम्बा माधुनायक के पुत्र और संगीतनगर (हाडुहळ्ळि) में श्रेष्ठि श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित जिनालय को ताम्रपत्र से आच्छादित करनेवाले सालुव नायक, जिन-मन्दिर-निर्माता कामण्ण और देवरस, महान् वीर एवं गुणगणालंकृत होसय नायक, सम्यक्त्वचूडामणि, सालुव कृष्णदेवराय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति-निपुण ईरय्या नायक, विद्वानों के लिये कल्पतरु तुल्य और कृष्णदेवराय के दक्षिण हस्त तिम्म नायक, बेल्गावे के शासक, महाप्रभु लुम्मण आदि राजा, महाराज, सामन्त एवं राज-महिषियाँ; विद्यानन्द निरूद्ध दर्शनशास्त्र अध्ययन करनेवाले, संगीतपुर के सालुवेन्द्र भूपाल के आस्थान-भूषण, वैयाकरण और महावादी मन्त्री चेतरस, प्रधानतिलक, देवराय के दुर्गपति से सम्मानित सुकवि तथा श्रुतकीर्ति के शिष्य मंत्री जैनरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस, विरूपण्ण शासक के द्वारा रक्षित, मंत्री देवरस, मल्लिकार्जुन राय के महामन्त्री मल्लप्प नायक, सत्यवादी, सालुव मल्लिराय के मन्त्रिवर एवं वीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभव सङ्करस, वेन्नराय-पट्टण-सम्बन्धी राज्यलक्ष्मी के सम्वर्द्धक तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नेमिचन्द्र, अमत्र्यवादिपत्तन (?) मुकुन्द, महान् वीर, अमात्यश्रेष्ठ गुम्मय, राजसभाओं में सम्मानित, बोम्मरस के लघुभ्राता, सोमभूपाल के मंत्रितिलक देवरस, आयुर्वेद-विशारद, वीरपृथ्वीश-सचिव धरणि पण्डित, मन्त्रिशेखर पद्मण्ण श्रेष्ठी, रामराज के अमात्य सवणमारि नायक, देविर श्रेष्ठी के पुत्र, चेन्न देवी के भक्त एवं महापराक्रमी, मन्त्रीश तिम्मि श्रेष्ठी, कीर्त्तिशाली, लोकविख्यात एवं धरणीश-प्रदत्त सौभाग्य दण्डनाथ बैचप्प, करणिक-तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री, महामन्त्री, दण्डनायक, करणिक, विजयनगर पर ळवशासकों के द्वारा सम्मानित, वीरसेन और मुनि विद्यानन्द के चरणसेवक, विद्वत्सेव्य एवं विद्वानों के आश्रयदाता, चतुरंग-दत्त, साहित्य-कोविद एवं टकसाला के अध्यक्ष सोमिय श्रेष्ठी, देवराय की सभा में श्रेष्ठि-पद को सुशोभित

करनेवाले, विख्यात दानी और धर्मभूषण के शिष्य सङ्कप्प, विजयकीर्त्ति के पादाराधक, कुबेरसदृश अतुल ऐश्वर्यशाली तथा अनेक सुपात्रों के पोषक पायप्प श्रेष्ठी, नेमिचन्द्र को व्रतगुरु एवं विद्यानन्द को शिक्षागुरु माननेवाले नागप्प श्रेष्ठी और इनके पिता तम्मगण श्रेष्ठी, आयुर्वेद-मर्मज्ञ, देवेन्द्र के अनुज, नंजराय नृप से अतुल ऐश्वर्य को पानेवाले, पण्डित देवरस के पुत्र एवं गोविन्दराज-प्रशंसित विजयण्ण, चेन्न श्रेष्ठी की दौहित्री, नेमिनाथ चैत्यालय के सामने लंहमानस्तम्भ बनवानेवाली देवरसी, वणिक्प्रवर, महादानी, तुम्गूरु में जिनमन्दिर बनवाने वाले बोम्मण श्रेष्ठी, पायि श्रेष्ठी के पुत्र वेश्यातटाक (?) एवं पोम्बुच्च में पंचबस्ति निर्माण करानेवाले पायगण, सालुव मल्लिराय के शास्त्र-विद्यागुरु, साहित्य-विद्याधर देवरस तथा विजया के पुत्र, सालुव देवराय के आस्थान-कवि और विद्यानन्दि-शिष्य बोम्मरस आदि विख्यात श्रेष्ठी एवं श्रेष्ठि-महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

(३९) ग्रन्थ नं० २५५/ख

सारसंग्रह

कर्त्ता—विजयगण उपाध्याय

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इन्च | चौड़ाई ६॥। इन्च | पत्रसंख्या २३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमच्चातुर्निकायामरखचरवरं नृत्यसंगीतकीर्तिम्
श्यामा.................शालं सुरपटहादिसत्यातीहार्यैम्
नत्वा श्रीवीरनाथं भुवि सकलजनारोग्यसिद्ध्यै समस्तै-
रायुर्वेदोक्तसारैरिहममल(?) महासंग्रहं संलिखामि ॥

× × ×

मध्य भाग—

अथातः संप्रवक्ष्यामि तिथीशबलमुत्तमम् ।
प्रथमायां तिथौ व्याधिरुत्पन्नश्चेत्तदाहतः ॥

माल्वेन्द्र से सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रवादिपितामह गण्डविमुक्त, अनेक राजाओं से अर्चित अभयचन्द्र, देवप्पार्य के पुत्र, अभयचन्द्र सूरि के शिष्य एवं विजयनगर के देवराय-सम्मानित नेमिचन्द्र, विजयनगर के देवराय के ख्याति प्राप्त आस्थान-कवि मेम्मडि भट्ट, नरसिंहनृपति द्वारा प्रशंसित पण्डितार्य, कल्याणनाथ के पुत्र साल्व महाराज के आस्थान-विद्वान् अभयचन्द्र सूरि, मल्लिराय के हृदयरूपी कमल को विकसित करनेवाले आदिनाथ, वेणुपुर के भव्यों के द्वारा अर्चित, तौलवाधीश वन्द्य समन्तभद्र, अनेक गुणालंकृत, साल्व मल्लिराय के शास्त्र विद्यागुरु देवरत्न सूरि, इनके पुत्र अनेक गुणभूषित साल्वदेवराय के आस्थान रत्न एवं विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि आचार्य, कवि, विद्वान् तथा विदुषियाँ, देवराय, कृष्णराय, रामराय, कृष्णराय के भाई, रंगराय के पुत्र एवं नृसिंह के भावी सहोदर, धावप्पराय की महिषी जिनभक्ता भैरवाम्बा, मल्लिराय की भगिनी पद्माम्बा, भानुनायक के पुत्र और संगीतनगर (हाडुहल्लि) में मल्लि श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित जिनालय को ताम्रपत्र से आच्छादित करनेवाले साळुव नायक, जिन मन्दिर निर्माता कामराय और देवरस, महान् धीर एवं गुणगणालंकृत होय्सय नायक, सम्यक्त्वचूडामणि, साळुव कृष्णदेव राय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति निपुण ईश्वर नायक, विद्वानों के लिये कल्पतरु तुल्य और कृष्णदेवराय के दक्षिण हस्त तिम्म नायक, बेल्गाल के शासक, महाप्रभु कुम्मण आदि राजा, महाराजा, सामन्त एवं राज महिषियाँ, विद्यानन्द के निकट दर्शनशास्त्र को अध्ययन करनेवाले, संगीतपुर के साळुवेन्द्र भूपाल के आस्थान-भूषण, वैयाकरण और महावादी मन्त्री वैतरस, प्रधानतिलक, देवराय के दुर्गपति से सम्मानित सुकवि तथा श्रुत कीर्ति के शिष्य मन्त्री श्रीतरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस विजयनगर शासक के द्वारा रक्षित, मन्त्री देवरस, मल्लिकार्जुन राय के महामन्त्री मलुप्प नायक, सत्यवादी, साळुव मल्लिराय के मन्त्रिप्रवर एवं वीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभव सङ्करस चेन्नराय पट्टण सम्पदा राजलक्ष्मी के सम्वर्द्धक तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नेमिचन्द्र, अनवरादिपत्तन (?) मुकुन्द, महान् धीर, अमात्यश्रेष्ठ गुम्मय, राजसभाओं में सम्मानित, बोम्मरस के लघुभ्राता भामभूपाल के मन्त्रितिलक नेवरस आयुर्वेद विशारद, वीरपृथ्वीश सचिव धरणि पण्डित, मन्त्रिशेखर पद्मण्ण श्रेष्ठी, रामराज के अमात्य सवणमरि नायक, देवि श्रेष्ठी के पुत्र चेन्न देव के भक्त एवं महापराक्रम, मन्त्रीश तिम्मि श्रेष्ठी, कीर्तिशाली, लोकविख्यात एवं धर्याधीश प्रदत्त सौभाग्य दण्डनाथ वैचप्प, करणिक-तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री, महामन्त्री, दण्डनायक करणिक, विजयनगर एवं तौलवशासकों के द्वारा सम्मानित, वीरसेन और मुनि विद्यानन्द के चरणसेवक, विद्वत्सेव्य एवं विद्वानों के आश्रयदाता, चतुरंग-दत्त, साहित्य-कोविद एवं टकसाला के अध्यक्ष बोम्मि श्रेष्ठी, देवराय की सभा में श्रेष्ठि पद को सुशोभित

करनेवाले, विख्यात दानी और धर्मभूषण के शिष्य सङ्कप्प, विजयकीर्त्ति के पादाराधक, कुवेरसदृश अतुल ऐश्वर्यशाली तथा अनेक सुपात्रों के पोषक पायप्प श्रेष्ठी, नेमिचन्द्र को व्रतगुरु एवं विद्यानन्द को शिक्षागुरु माननेवाले नागप्प श्रेष्ठी और इनके पिता तम्मणण श्रेष्ठी, आयुर्वेद-मर्मज्ञ, देवेन्द्र के अनुज, नंजराय नृप से अतुल ऐश्वर्य को पानेवाले, पण्डित देवरस के पुत्र एवं गोविन्दराज-प्रशंसित विजयप्प, चेन्न श्रेष्ठी की दौहित्री, नेमिनाथ चैत्यालय के सामने लोहमानस्तम्भ बनवानेवाली देवरसी, वणिक्प्रवर, महादानी, तुम्गूरु में जिनमन्दिर बनवाने वाले बोम्मण श्रेष्ठी, पायि श्रेष्ठी के पुत्र वेश्यातटाक (?) एवं पोम्बुच्च में पंचवस्ति निर्माण करानेवाले पायणण, सालुव मल्लिराय के शास्त्र-विद्यागुरु, साहित्य-विद्याधर देवरस तथा विजया के पुत्र, सालुव देवराय के आस्थान-कवि और विद्यानन्दि-शिष्य बोम्मरस आदि विख्यात श्रेष्ठी एवं श्रेष्ठि-महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

(३९) ग्रन्थ नं० २५५/ख

सारसंग्रह

कर्त्ता—विजयगण उपाध्याय

विषय—वैद्यक
भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च चौड़ाई ६।।। इञ्च पत्रसंख्या २३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमच्चातुर्निकायामरखचरवरं नृत्यसंगीतकीर्तिम्
-च्याप्त............शालं सुरपटहादिसत्प्रातीहार्यम्
नत्वा श्रीवीरनाथं भुवि सकलजनारोग्यसिद्ध्यै समस्तै-
रायुर्वेदोक्तसारैरिह्मल(?) महासंग्रहं संलिखामि ॥

× × ×

मध्य भाग—

अथातः संप्रवक्ष्यामि तिथीशवलमुत्तमम् ।
प्रथमायां तिथौ व्याधिरुत्पन्नश्चेत्तदाहतः ॥

माल्वेन्द्र से सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रवादिपितामह गण्डविमुक्त, अनेक राजाओं से अर्चित अभयचन्द्र, देवराय के पुत्र, समयचन्द्र सूरि के शिष्य एवं विजयनगर के देवराय-सम्मानित नेमिचन्द्र, विजयनगर के देवराय के ख्याति प्राप्त आस्थान-कवि मेल्लडि भट्ट नरसिंहनृपति द्वारा प्रशंसित पण्डितार्य, कल्याणनाथ के पुत्र साल्व महाराज के आस्थान-विद्वान् अभयचन्द्र सूरि, मल्लिराय के हृदयरूपी कमल को विकसित करनेवाले आदिनाथ, वेणुपुर के भव्यों के द्वारा अर्चित, सकलवादीश वन्द्य समन्तभद्र, अनेक गुणालंकृत, साल्व मल्लिराय के शास्त्र विद्यागुरु देवचन्द्र सूरि, इनके पुत्र अनेक गुणभूषित साल्वदेवराय के आस्थान-रत्न एवं विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि आचार्य, कवि, विद्वान् तथा विदुषियाँ, देवराय, कृष्णराय, रामराय, कृष्णराय के भाई, रंगराय के पुत्र एवं नृसिंह के भावी सहायक, पायरूपराज की महिषी जिनभक्ता भैरवाम्बा, मंगिराय की भगिनी पद्माम्बा, भानुनायक के पुत्र और नगोलनगर (हाडुहल्लि) में प्रति श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित जिनालय को ताम्रपत्र से आच्छादित करनेवाले सालुव नायक, जिन-मन्दिर-निर्माता कामराय और देवरस, महान् वीर एवं गुणगणालंकृत होय्सल नायक, सम्यक्त्वचूडामणि, सालुव कृष्णदेवराय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति-निपुण देवप नायक, विद्वानों के लिये कल्पतरु और कृष्णदेवराय के दक्षिण हस्त तिम्म नायक, बेल्पावे के शासक, महाप्रभु लुम्मण आदि राजा, महाराज, सामन्त एवं राज महिषियाँ, विद्यानन्द के निकट दर्शनशास्त्र को अध्ययन करनेवाले, संगीतपुर के सालुवेन्द्र भूपाल के आस्थान-भूषण, वैयाकरण और महावादी मंत्री वेतरस, प्रधानतिलक, देवराय के दुर्गपति से सम्मानित सुकवि तथा श्रुतकीर्ति के शिष्य मंत्री जैनरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस, विजय शासक के द्वारा रक्षित, मंत्री देवरस, मल्लिकार्जुन राय के महामन्त्री मल्लप्प नायक, सत्यवादी, सालुव मल्लिराय के मन्त्रिप्रवर एवं वीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभव मङ्गरस, वेदराय पट्टण-सम्बन्धी राज्यलक्ष्मी के सम्वर्द्धक तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नेमिचन्द्र, समयवादिपत्तन (?) मुकुन्द, महान् वीर, अमात्यश्रेष्ठ गुम्मय, राजसभाओं में सम्मानित, बोम्मरस के लघुभ्राता, सोमभूपाल के मंत्रितिलक देवरस, आयुर्वेद-विशारद, श्रीपृथ्वीश सचिव धरणि पण्डित, मन्त्रिशेखर पद्मण्ण श्रेष्ठी, रामराज के अमात्य लक्ष्मणमरि नायक, देवि श्रेष्ठी के पुत्र, चेन्न देवी के भक्त एवं महारत्नाकर, मन्त्रीश तिम्मि श्रेष्ठी, कीर्त्तिशाली, लोकविख्यात एवं धरणीश-प्रदत्त सौभाग्य दण्डनाथ वैचप्प, करणिक-तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री, महामन्त्री, दण्डनायक, करणिक, विजयनगर एवं तौळवशासकों के द्वारा सम्मानित, वीरसेन और मुनि विद्यानन्द के चरणसेवक, विद्वत्सेव्य एवं विद्वानों के आश्रयदाता, चतुरंग-दत्त, साहित्य-कोविद एवं टकसाल के अध्यक्ष बोम्मि श्रेष्ठी, देवराय की सभा में श्रेष्ठि-पद को सुशोभित

एवं सुन्दर रूप में प्रकाशित करने की ओर जैन वैद्यों का ध्यान अवश्य आकृष्ट होना चाहिये। भवन की प्रति इस समय मेरे सामने नहीं है। भवन की यह प्रति भवन की ओर से 'भास्कर' में क्रमशः प्रकाशित 'वैद्यसार' में इस ग्रन्थगत पूज्यपाद के प्रयोगों को संकलित कर देने के लिये उक्त वैद्यसार-संग्रह के सम्पादक के पास भेज दी गयी है। इसी से इस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका।

---

(४०) ग्रन्थ नं० २५६/ख

हरिवंशपुराण

कर्ता—श्रुतकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १३। इञ्च   चौड़ाई ८। इञ्च   पत्रसंख्या ३१५

प्रारम्भिक भाग—

ससिहणवोमसइं ते हरिवंसइं पावतिमिरहा विमलयरि गुणगणजसभूसिय तुरयअइसिया सुव्वयणेमिय हलिय हरि ॥छ॥ सुरवइतिरीडरयणंकिरणंबुपवाहसित्तणहचलणं पणविवि तं परमजिणं हरिवंसकयत्तणं वुच्छे। हरिवंसु पयोरुहु अइरवणु इह भरहखित्तसरवरउववणु, तह णालुसुकुलणिवणियरत्तंगु तं ठियउ मणोहरु भाइ चंगु, तहकणियसउणायणिवदसार कुसुमसरपमुहकेसरिकुमार, पंडवजायवभोजयणरेसा ते पत्तमणोहरणिरवसेसा, जरसिंधु दुवणु तहु णिसिसमाणु कोवणिद्देमु जंमरइमाणु, तं णेमिहलीहरिकिरउज्जोय, सोविलयपत्तु इहमव्वलोय, परसंताविरु पुणु अवरुजाइ धरयट्ठियरावणायमुहराइ, हरिवंसु कमलु वियसिउ विसेसा तहु कित्तिसुरहिअलिमहिणरेसा, दुक्किय सोहइ सेविज्जमाणु णिसि सामिउं जं उडगणसमाणु, तहु कित्तणु महु उलसइ चित्तु संकमिदायारहुकइवित्तु, पारंभमि जइ हरिवंसु अज्ज णिद्धण कह हुंति अभिट्ठकज्ज, जइ महु पसियंतु तिलोयणाह रिसहाइवीरु असरणसणाह ॥ घत्ता ॥ ठियणंतचउट्ठहु महुमइ भट्ठहु देहु सुमइ पहु णित्थरमि सरसइं सुपसायइं मणि अणुरायइं जिमि हरिवंसु पवित्थरमि ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०२ पंक्ति ५)—

जिणवर चउवीसइ पणमिय सीसइ चउदिसु णियचसु वित्थरए जिम कसु उवयणउ णिउ अमणाणउ उम्मसेणयधणुकरए ॥ रायधम्मबहुसच्चहुँ लक्खणु पयडइ तह वसुएउ वियक्खणु असिवरधणुहयासणुजुमेयइ मुग्गलछुरिकाचक्कअणेयइ, हयगयरहिवर जं वाहि जहि धागराग कसअनुसदिजहि, अरवयरिसणिप्पणदेयइ पुछिउ उवएसइ इयभेयइ, जे णित्थह रउ कम्म मणुसणइ तं उवएसु करइ मणुणई, पडिम पयरइ सावयधम्मइ दसणपमुहउ देसइ रम्मउ, धम्मफाणइ य कालु गमतउ पुरपरियण पिय मण रंजतउ पत्थहरि तह कसु परायउ चलण णवेइ विणअणुरायउ, सामिय तव मिच्चतणु ईहमि आउ विज सिससु समोहमि, ता वसुएउ उत्तु मज्जिज्जइ दिणदिण अब्भासु करिज्जइ धणुगुण णाणविहाण अणेयइ ते वसुएव कहिय बहुभेयइ असिवरमुग्गलकुंतविहाणइ मालछुरक पाइकविण्णाणइ ॥ घत्ता ॥

× × × ×

अन्तिम भाग —

जह कमेण सुयणाणि उज्झियाई भरहमंगदेसइ धरभणइ पचमकालचलणपादमिलइ तह उवण आयरियमहल्लइ कुदकुदणसिस्साणुकम्मइ आयइ मुणिगणविवदसहसइ गणवालसघगे सरिगळइ णंदिसघमणहरमहसुअइ पहावयगणिणा सुदपुराणइ पोम० दि तह पट्टउरयणइ पुणु सुभचंददेवकमजायइ गणि जिणचंद तहपविक्खायइ विज्जाणंदि कमेण उवयणइ सीलवंत बहुगुणसपुण्णइ पोमणंदिसिसकमिण ति आयइ जे मडलायरिय विक्खायइ मालवदेस धम्मु सुपयासणु मुणिदेविंदकित्ति मिउभासणु तह सिसु अमियवाणि गुण गरउ तिहुवणकित्तिपयो-हणसारउ तह सिस्सु सुहकित्ति गुरुभत्तउ जहिं हरिवंसपुराणु पउत्तउ मद्दरउफिउदुत्तिणिही पाउ पुव्वयरिहिं वयणपयलीणउ अप्पुबुद्धिबुहदोसुए लिक्खउ जं अणुदयु सुहधुकरिज्जउ पयडु सयलणय सुपमाणहु तेरसअट्ठसहसह बुह आसहु । सगतु विक्कमणे णयारसह सहसुपवसय बाणणसेसह मंडवगढुवर मालवदेसह साहिगयासु पयाव असेसह णयरजेरहदजिणहरु चंगउ णेमिणाहजिणविंबु अभगउ गथुसउणणु तत्थ हु जायहुउ चउविहु ससुणि सुणि अणुरायउ माघकिण्हपचमिससिवारइ हत्थणक्खत्तसमत्तुगुणालइ गथु सउणु जाउ सुपवित्तउ कम्मर कयणिमित्तउत्तउ पढहिं सुणहिं जे भावए भावहिं पयडअक्खराडु णिसुणावहिं तह सम्मत्तरयणावरलाहइ समापअम्माअचलसुह साहहिं ॥ घत्ता ॥ हरिवंसपुराणहु तिजयपहाणहु भाउ करिवि जे सद्दहहिं सियपुत्तकलत्तइ लाहमहंतइ समापअम्माइ पुणु लहहिं ॥१८॥ दुवई ॥ वीरजिणंदचलणा पणवेविणु जिणसासण महतहो दिसउ समाहिसतिमव्वयणाह धम्मणुराय रत्तहो ।

इय हरिवंसपुराणे महाहरिसरायपुरिसगुणालंकारकलाणे तिहुवणकित्तिसिस्सजसस्सुदरकित्ति महाकव्वु विरयंतो णाम सट्ठतालिसतिमो संधिपरिच्छेओ समत्तो ॥

णियणियरुइसुरहो जयसिरिधम्माणुराउ मणिहिट्ठो णंदउ जणाणउपयरो सुहसंपहाण-फणयरो ॥१॥ चउविहमुणिगणसहिओ णंदउ सिरिजिंदिमंधु सुयमहिओ णंदउ जयसिरिजुत्तो सावयगणु धम्मअणुरत्तो ॥२॥ हरिवंसगयणचंदो जह दंसणसयलभुवण आणंदो तयलोयसुजसुपयरो णेमिजिणो भवियदुरियहरो ॥३॥ रिसहु अजिउ संभउ जिणंदु अभिणंदणु सामिउ सुमतिपहसुपहु पुणु सुपासु ससिपहुसिवगामिउ सुविहु सुसीयलु पुणु सिरंसु वसुपुज्जु सुणेसहरु विमलणंतु पुणु धम्मसंतिसंजुयइ कुंथु अरु मल्लिमुणिसुव्वउ नमिसुनेमिजिणु पासु पहाणाई वीरसहियभवियणु देंति सिरिजिंति समाणाई। सिद्धि संवत् १५५३ वर्षे आश्विन वदि २ शुक्रवारे दिने अद्येह श्रीमण्डपाचलगढदुर्गे सुलितान गयासदीन राज्ये प्रवर्तमाने श्रीदमोवादेसे महाखानभोजखानवर्तमाने जेरहटस्थाने सोनीश्रीईसुरप्रवर्तमाने श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेव तस्य शिष्य मण्डलाचार्यदेवेन्द्रकीर्तिदेव तच्छिष्य मण्डलाचार्य श्रीत्रिभुवनकीर्त्तिदेवान् तस्य शिष्य श्रुतकीर्त्ति इदं हरिवंशपुराणं परिपूर्णं कृतम्। भव्यजनपठनार्थं ज्ञानावरणकर्मक्षयार्थं श्रीपार्श्वनाथचैत्यालये श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरं परमभक्त्या प्रणम्य तथा श्रुतगुरुभक्तिपूर्वकं नमस्कृत्य ग्रन्थस्य अविघ्नसमाप्तिनिमित्तम्।

इस हरिवंशपुराण के रचयिता यशःकीर्त्ति ने अपने को श्रीमूलसंघ*, बलात्कारगण एवं सरस्वतीगच्छ के प्रातःस्मरणीय आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा में बतलाया है। आप के प्रगुरु मण्डलाचार्य देवेन्द्रकीर्त्ति और गुरु मण्डलाचार्य भुवनकीर्त्ति हैं। कुछ विद्वानों का ख्याल है कि धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार यशःकीर्त्ति और आप एक ही हैं। परन्तु यह धारणा भ्रान्त है। क्योंकि धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार यशःकीर्त्ति ललितकीर्त्ति के शिष्य हैं, आप भुवनकीर्त्ति के।

इस ग्रन्थ के अन्त में दो प्रशस्तियाँ दी गयी हैं। पहली अपभ्रंश भाषा में एवं दूसरी संस्कृत में। पहली प्रशस्ति में लिखा है कि यह ग्रन्थ वि० सं० १५५२ माघकृष्णा पञ्चमी सोमवार मालवदेशान्तर्गत मंडवगडु में, शाहि गयासुद्दीन के शासन-काल में जेरहट नगर में समाप्त हुआ। दूसरी प्रशस्ति में लिखा है कि सिद्धि संवत् १५५३ आश्विन कृष्णा द्वितीय को मण्डपाचलगढ दुर्ग में, सुलतान गयासुद्दीन के राज्यकाल में, दमोवादेश में, महाखान-भोजखान की मौजूदगी में जेरहट नगर के पार्श्वनाथ जिनालय में यह ग्रन्थ परिपूर्ण

* अपभ्रंश-प्रशस्ति में मल्लिसंघ लिखा गया है।

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०२ पंक्ति ६)—

णिसुणह चउवीसह पण मिय सामिह चउविसु विग्रहसु विन्थरय जिम कसु उवयणउ किउ भवयणमणउ उवसामणयणमुक्करय ॥ रायधम्मवडमच्छउ र्क्करासु पयडइ तह वसुपउ वियसरणु अमियरयणमुवासागुणमेवहं सुमाग्गुण्णिकायकमलेयह, इणपरहिवर ज्ञं वाहि अहि पायराग कम्मखुमरिअहि अवरउपरियाविउयहियं ९ुद्धि उवपमह इयमेयउ, जे णित्यह ग्रह कम्म मगुणणह सं उवयणु करइ भयुणह, यडिम पयपइं सावयधम्मह दसणपमुहउ रम्मइ रम्मइ, धम्मकायह ग कागु गमेतउ पुरयरियण विय मण रंजतउ पच्छहरि तह कसु पराय उ मल्ला ग्रवेह वित्तमणुणयउ, मामिय तम मियसाणु इहमि भवड़ चित्र सिसरु समोहमि, ता वसुपर उत्त महिमाइ विभविण विमामणु करिसइ पयगुण पालणिहाण भयाया गे वसुपय कहिय पदुमेयह असिवरमुणालइवनिहाणइ माणुम पाइक्विणायइ ॥ घत्ता ॥

× × × ×

अन्तिम भाग —

अइ कमेण सुयणाणि अविवयाइं भागमंगइमइ परमपाइ पवमकालजल्लपाडणिवह तह उवयण मायपियमहलइ कुंदकुंदगणिणामपुकम्मइ आयइ मुणिगणविविहरसइमइं गणवालतवाले सणिमहर पविसयमगहरमाणुगुणा पहायरगणिणा सुरगुरुणा पोमप ति तह पहउवयणह पुणु सुभयइदेवकमआयइ णमि जिणाचइ तहवणिकसायइ विजायणि कमेण उवयणइं मालवत बहुगुणसुयणाइं पामणदिमिमिकमिणा तिआयइ जे महलायरिय विक्खायइ मालवदस धम्मु सुपयासणु मुणिदेविंदकित्ति मिउभासणु तह मिसु अभियगणि गुण गयउ तिहुवणकित्तिणा- हणसारउ तह सिस्सु सुहविपि गुरुमत्तउ अहि हरिवंसपुराणु पउत्तउ मडुदउकिउ बुद्धिविहीणउ पुव्वविरिहिं वयणरयणीणउ अण्णबुद्धिसुहरोसुय लिहिउ ज असुदुधु त सुहधुकरिवउ पयडु सयलगंध सुपभावणु तरमंडसहसइ युह आगहु । सवतु विक्कमणे णवहरसइ सहसुपवमय भाद्दवणसइ मंडवगढुवर मालवदेसइ साहिगयासु पयाव असेसइ णयरजेंवहरजिणहर थगउ णेमिणाहजिणबिंबु अमगउ गसुमउवगु तत्थ इहु णायदुउ चउविहु ससुणि सुणि कणुरायउ मायकिण्णुपचंमिसससिरायह हव्यवाखमणमतुगुणायह गयु सउणु णाउ सुपवित्तउ कम्मह क्खयणिमित्तउ सउ पढहिं सुणहिं जे भावण भावहिं पयडमहमराडु णिसुणावहिं तह सम्मत्तरयणायरलाहइ सम्मपरमभमलसुह साहहि ॥ घत्ता ॥ हरिवंसपुराणहु तिनवसहायाडु भाउ करेवि जेसदहहिं सियपुक्कलणाइ लाहमहताइ सम्मपरमाइ पुए रहहिं ॥१८॥ दुवई ॥ वीरजिणंदचलण पणवेविणु जिणसासण महतहा टिगउ समाहिमातिमण्णयणाहि धम्मगुराय रत्तहो ।

(४१) ग्रन्थ नं० २५७/ख

रामपुराण

कर्ता—सोमसेन

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च | चौड़ाई ७ इञ्च | पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक भाग—

वन्देऽहं सुव्रतं देवं पञ्चकल्याणनायकम् ।
देवदेवादिभिः सेव्यं भव्यवृन्दसुखप्रदम् ॥१॥
शेषान् सिद्धान् जिनान् सूरीन् पाठकान् साधुसंयुतान् ।
नत्वा वक्ष्ये हि पद्मस्य पुराणं गुणसागरम् ॥२॥
वन्दे वृषभसेनादीन् गणाधीशान् यतीश्वरान् ।
द्वादशाङ्गं श्रुतं यैश्च कृतं म तस्य हेतवे ॥३॥
वन्दे समन्तभद्रान्तं श्रुतसागरपारगम् ।
भविष्यत्समये योऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ॥४॥
कुन्दकुन्दं मुनिं वन्दे चतुरं गुणाचारगम् ।
कलिकाले कृतं येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु ॥५॥
आचार्यं जिनसेनाख्यं वन्दे ग्रन्थस्य सिद्धये ।
सिद्धान्तत्रयकर्तारं मोक्षमार्गोपदेशकम् ॥६॥
पूज्यपादप्रभाचन्द्राकलंकादीन् यतीश्वरान् ।
नमामि धर्मतीर्थस्य कर्तॄन् प्राणिहितङ्करान् ॥७॥
रविषेणं महाचार्यं वन्दे शास्त्राब्धिपारगम् ।
यत्प्रसादात्करोम्यत्र पुराणं रामसंज्ञकम् ॥८॥
गुणभद्रं यतिं वन्दे सर्वजीवदयापरम् ।
महापुराणकर्तारं ज्ञातारं सर्वसंचिरम् (?) ॥९॥
चारुकीर्तिमुनीन्द्रं च वन्दे श्रेष्ठार्थसिद्धिदम् ।
समाधिशीलसम्पन्नं हिताहितोपदेशकम् ॥१०॥

हुआ। समझ में नहीं आता है कि इन प्रशस्तियों में ग्रन्थ-समाप्ति के काल के सम्बध में ऐसा मतभेद क्यों हुआ? यह लेखक की भी भूल नहीं मानी जा सकती। क्योंकि दोनों सम्वतों में मास, तिथि आदि भी भिन्न भिन्न दी गयी है। क्या इनमें से स० १५५२ को ग्रन्थ-प्रारंभकाल एवं सं १५५३ को ग्रन्थ समाप्ति-काल माना जा सकता है? मगर प्रशस्तियों से स्पष्टतया इन बातों की सूचना नहीं मिलती है। ऐसी अवस्था में इसका निर्णय और और प्रतियों की छान बीन से ही किया जा सकेगा। साथ ही साथ इस बात का भी पता लगाना है कि जेरहट का वर्तमान नाम क्या है और पहली प्रशस्ति में मालवदेश और दूसरी प्रशस्ति में दमोवा देश कैसे लिखा गया। सुना है कि वर्तमान सागर जिला में भी जेरठ नामक एक प्राचीन स्थान है। मण्डपगढ़ या मण्डपाचलगढ वर्तमान मेवाड़ राज्यान्तर्गत 'मांडल गढ़ का किला' ही मालूम होता है। शाहि या सुल्तान गयासुद्दीन भी खिल्जी वंशज गयासु-उद्दीन ही ज्ञात होता है, जो कि १५ वीं शताब्दी में गुजरात में शासन करता था। क्योंकि अजमेर पर मुसल्मानों का अधिकार होने पर यह किला भी उनके हस्तगत हो गया था।

दूसरी शुद्ध प्रति मिलने पर सम्भव है कि इन दो प्रशस्तियों की बातों पर मैं कुछ विशेष प्रकाश डाल सकूं। भवन की यह प्रति बहुत अशुद्ध है। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थ-तालिका में निम्नलिखित ग्रन्थ भी हरिवंशपुराण (प्राकृत) के कर्त्ता यशःकीर्त्ति के बतलाये गये हैं :—

(१) पाण्डवपुराण (प्राकृत) (२) गौतमचरित्र (३) प्रबोधसार (४) जगत्सुन्दरी (५) भट्टारकर्षवन्द्रिका (६) श्रावकाचार (७) धर्मशर्माभ्युदय की टीका (८) प्रद्युम्नकाव्य की टीका। परन्तु इनमें जगत्सुन्दरी, भट्टारकर्षवन्द्रिका एवं धर्मशर्माभ्युदय की टीका तो इनकी हैं ही नहीं। क्योंकि जगत्सुन्दरी के कर्ता यशःकीर्त्ति विमलकीर्त्ति के शिष्य हैं*। भट्टारकर्षवन्द्रिका के कर्त्ता विजयवर्णी हैं, न कि यशःकीर्त्ति। धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार ललितकीर्त्ति के शिष्य हैं—यह बात ऊपर लिख चुका हूँ। गौतमचरित्र एक प्रकाशित हो चुका है। पर इसके कर्त्ता धर्मचन्द्र हैं। शोलापुर‡ एक प्रबोधसार भी प्रकाशित हो गया है, इसके कर्त्ता महापण्डित यशःकीर्त्ति बताये गये हैं। प्रशस्ति नहीं होने से यह कहना कठिन है कि यह यशःकीर्त्ति यही हैं या दूसरे। इसी प्रकार शेष कृतियों को भी बिना देखे इन्हीं का कहना ठीक नहीं है।

* देखें—'अनेकान्त' वर्ष २, किरण १२, पृष्ठ ६८६।

‡ देखें—'प्रशस्तिसंग्रह' पृष्ठ ७३।

(४१) ग्रन्थ नं० २५७/ख

रामपुराण

कर्त्ता—सोमसेन

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च चौड़ाई ७ इञ्च पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक भाग—

वन्देऽहं सुव्रतं देवं पञ्चकल्याणनायकम् ।
देवदेवादिभिः सेव्यं भव्यवृन्दसुखप्रदम् ॥१॥
शेषान् सिद्धान् जिनान् सूरीन् पाठकान् साधुसंयुतान् ।
नत्वा वक्ष्ये हि पद्मस्य पुराणं गुणसागरम् ॥२॥
वन्दे वृषभसेनादीन् गणाधीशान् यतीश्वरान् ।
द्वादशाङ्गं श्रुतं यैश्च कृतं म त्तस्य हेतवे ॥३॥
वन्दे समन्तभद्रान्तं श्रुतसागरपारगम् ।
भविष्यत्समये योऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ॥४॥
कुन्दकुन्दं मुनिं वन्दे चतुरं गुणाचारगम् ।
कलि-काले कृतं येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु ॥५॥
आचार्यं जिनसेनाख्यं वन्दे ग्रन्थस्य सिद्धये ।
सिद्धान्तत्रयकर्त्तारं मोक्षमार्गोपदेशकम् ॥६॥
पूज्यपादप्रभाचन्द्राकलंकादीन् यतीश्वरान् ।
नमामि धर्मतीर्थस्य कर्त्तॄन् प्राणिहितङ्करान् ॥७॥
रविषेणं महाचार्यं वन्दे शास्त्राब्धिपारगम् ।
यत्प्रसादात्करोम्यत्र पुराणं रामसंज्ञकम् ॥८॥
गुणभद्रं यतिं वन्दे सर्वजीवदयापरम् ।
महापुराणकर्त्तारं ज्ञातारं सर्वसंचिरम् (?) ॥९॥
चारुकीर्त्तिमुनीन्द्रं च वन्दे श्रेष्ठार्थसिद्धिदम् ।
समाधिशीलसम्पन्नं हिताहितोपदेशकम् ॥१०॥

वन्देऽहं भानुमुन्याख्यं त्रिकालं योगमुन्दिरम् ।
सन्मतमुनीन्द्रैश्च सैद्धपादैश्च योऽभवत् ॥११॥
महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रं नमामि कलिनाशकं ।
यतो पातन् प्रमेयन्ते यस्याङ्घ्रिनखपुंगवा ।
सरस्वतीं नमाम्यादौ जिनेन्द्रमुखपद्मगाम् ।
ज्ञानाङ्कुरपुष्पकर्त्रीं मोक्षस्थानसुखप्रदाम् ॥१२॥

× × ×

मध्य भाग (पत्रपृष्ठ १२५, पंक्ति ६)—

धनुर्मासेऽथवा माघे गते त्वद्मादिविष्टरे ।
समं गन्तुं समुत्सुकं दृष्ट्वा यस्तो वदत्यतम् ॥१॥
त्वन्मध्ये देव निश्चिन्ताधिनाथाद् गुरुष्ठेन मया ।
मनाङ्कनं वसन्ताद्य (?) च नश्वराणीह सेवितुम् ॥२॥
ततो जगाद रामोऽपि मनोभूतं सुराधिपम् ।
यत्फलमस्माकं त्वन्तत्त्वं च त्वया सुर ॥३॥
इति वचनमाकर्ण्य सम्भुदो पत्रमायक ।
गत्वा नत्वा च तं रामं पुनरिति सुमन्त्रित ॥४॥
स्वयं प्रमापिय हार वशी रामाय संभवे ।
पुनाइले रुद्रमागत्य हर्ष्ट्वा ज्ञानिमुख्यमनमये ॥५॥

× × ×

अन्तिम भाग:—

विक्रमस्य गते शाके षोडशत्रयश्चांके ।
पञ्चाशत्पूर्णमास्याख्ये मासे मार्गशीर्षे तथा ॥
शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां बुधवारे शुभे दिने ।
निष्पन्नं चरितं रम्यं रामचन्द्रस्य पावनम् ॥
महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रप्रसादात् कृतं मया ।
सोमसेनेन रामस्य चरितं पुण्यहेतवे ॥
अनुज्ञ रविषेणस्य पुराणं विस्तराद्भुतम् ।
यद्यत्र च महत्त्व स्वल्पं किञ्चिल्लिखितं मया ॥
गर्वेण न कृतं शास्त्रं नापि कीर्तिनिमित्ततः ।
केवलं पुण्यहेत्वर्थं स्तुता रामगुणा मया ॥

नाहं जानामि शास्त्राणि न छन्दो न च काव्यकम् ।
यथापि च विनोदेन कृतं रामपुराणकम् ॥
ये सन्ति सुधियो लोके शोधयन्तु च ते मम ।
शास्त्रं परोपकाराय यत्कृतं ब्राह्मणा भुवि ॥
कथामात्रस्य पद्मस्य वर्तते वर्णना विना ।
अस्मिन् ग्रन्थे तु भो भव्याः श्रृणवन्तु सावधानतः ॥
रविषेणाकृते ग्रन्थे कथा यावत्प्रवर्तते ।
तावच्च सकलात्रापि वर्तते वर्णना विना ॥
विस्ताररुचयः शिष्याः ये सन्ति शुद्धमानसाः ।
ते श्रृणवन्तु पुराणं हि रविषेणस्य निर्मितम् ॥
रविषे विषये रम्ये जित्वरे नगरे वरे ।
मन्दिरे पार्श्वनाथस्य सिद्धो ग्रन्थः शुभे दिने ॥
सेनगणेऽति विख्याते गुणभद्रोऽभवन्मुनिः ।
पट्टे तस्यैव संजातः सोमसेनो यतीश्वरः ॥
तेनेदं निर्मितं शास्त्रं रामदेवस्य भक्तितः ।
तस्य निर्वाणहेत्वर्थं संक्षेपेण महात्मना ॥
यस्मिन्निदं पुरे शास्त्रं श्रृणवन्ति च पठन्ति च ।
तत्र सर्वं सुखं क्षेमं परं भवति मङ्गलम् ॥
धर्माल्लभन्ते शिवसौख्यसम्पदः स्वर्गादिराज्यानि भवंति धर्मात् ।
तस्मात्कुरुध्वं जिनधर्ममेकं विहाय पापं नरकादिकारकम् ।
सेनगणे यतिपरमपवित्रे वृषभसेनगणधरस्तु वंशे ।
पण्डितवर्गसुखकरस्तु जातः सोमसुसेनयतिवरमुख्यः ॥
श्रीमूलसंघे वरपुष्कराख्ये गच्छे सुजातो गुणभद्रसूरिः ।
पट्टे च तस्यैव सुसोमसेनो भट्टारकोऽभूद्विदुषां शिरोमणिः ॥

इति श्रीरामपुराणे भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते रामस्वामिनो निर्वाणवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः ।

प्रशस्ति से सिद्ध होता है कि इस रामपुराण के रचयिता भट्टारक सोमसेन ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् १६५६ श्रावण शुक्ल त्रयोदशी बुधवार को समाप्त किया था। संभवतः आप के गुरु महेन्द्रकीर्त्ति और योगीन्द्र थे। यह बात प्रारंभिक भाग के १२ वें पद्य

अन्तिम भाग के तीसरे श्लोक से व्यक्त होती है। किन्तु प्रस्तुत महेन्द्रकीर्ति सम्वत् १९९२ तथा सवत् १८५२ वाले महेन्द्रकीर्ति द्वय से भिन्न हैं। मालूम नहीं होता कि ये महेन्द्रकीर्ति कौन हैं। साथ ही साथ उल्लिखित योगीन्द्र का भी पता नहीं लगता क्योंकि अभी तक इनकी कोई साहित्यिक कृति मेरे दृष्टिगोचर नहीं हुई है। प्र ग्रंथ अन्त में सोमसेन ने लिखा है कि मैंने यह रामपुराण रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण के आधार पर बनाया है। साथ ही साथ यह भी बताया है कि मैंने पद्मपुराण के कथा भाग को छोड़कर के केवल उसके कथा भाग का ही आश्रय लिया है।

इस ग्रन्थ की समाप्ति प्रणेता ने रविपे(?) देशान्तर्गत जिरवर नगर के पार्श्वनाथ मन्दिर में की है। पर पता नहीं लगता है कि रविपे देश एवं जिरवर नगर वर्तमानकाल किस प्रान्त या स्थान का नाम है। बल्कि 'रविपे' यह नाम अशुद्ध ज्ञात होता है। दूसरी प्रति में इसका प्रकृत पता लगाना परमावश्यक है। 'दिगम्बर जैन ग्रन्थ-कर्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थ सूची से रामपुराण के रचयिता सोमसेन के निम्नलिखित ग्रन्थों का पता लगता है —

(१) श्यारिइत्य होमपूजा (२) शुक्रपञ्चमुद्यापन (३) प्रद्युम्नचरित (४) सप्तर्षि-पूजा (५) भक्तामरोद्यापन (६) यशोधरचरित (७) त्रिवर्णाचार (८) दशलक्षणपूजाविधान (९) कर्म दहन-व्याख्यान (१०) लघुशान्तिक। ये सभी ग्रन्थ इन्हीं की कृतियाँ हैं या कतिपय इस बात का निर्णय सभी ग्रन्थों के अवलोकन से ही किया जा सकता है। बल्कि प्रद्युम्नचरित के कर्ता सोमसेन (वि० स० १६२५ लगभग) काष्ठासंघी थे। परन्तु रामपुराण के रचयिता सोमसेन अपने को मूलसंघ पुष्करगच्छ एवं सेनगण के सुविख्यात आचार्य गुणभद्र के पट्टधर बतलाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ साधारण श्रेणी का है। क्योंकि इसके संस्कृत में कोई साहित्यिक छटा नहीं दिखती है।

---

(४२) ग्रन्थ नं० २६६३/ख

रत्नत्रयोद्यापनपूजा

कर्त्ता—भट्टारक विश्वभूषण

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १० इञ्च   चौड़ाई ८ इञ्च   पत्रसंख्या ३२

प्रारम्भिक भाग—

श्रीवर्द्धमानमानम्य गौतमादींश्च सद्गुरून्।
रत्नत्रयविधिं वक्ष्ये यथाम्नायं विमुक्तये ॥१॥
परमेष्ठी परंज्योतिः परमात्मा जगद्गुरुः।
ज्ञानमूर्त्तिरमूर्त्तोऽपि भूयान्नो भवशान्तये ॥२॥
निर्विकल्पं निरावाधं शाश्वदानन्दमन्दिरम्।
तोष्टुवीमि चिदात्मानं स्वस्वरूपोपलब्धये ॥३॥
यस्य ज्ञानान्तरिक्षैकदेशे सर्वं जगत्त्रयम्।
एकमृक्षमिवाभाति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥
अनन्तानन्तसंसारपारावारैकतारकम्।
परमात्मानमव्यक्तं ध्यायाम्यहमनारतम् ॥५॥
अनन्यशरणीभूयात्तद्गुणग्रामलब्धये।
स्फुरत्समरसीभावमितोऽ चिद्घनं स्तुवे ॥६॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ २०, पंक्ति ४)—

यत्सत्त्वसन्तानविचित्रमेतत्त्रैलोक्यमप्याशु वशीकरोति।
वात्सल्यमात्मोदयकारणं तत् सुदर्शनांगं हृदये ममास्ताम्।
ॐ ह्रीं वात्सल्यांगाय नमः।
सम्यक्त्वभावेन सुदृष्टिजातं शान्त्यष्टकं स्तोत्र(?) विधाय यत्र।
वात्सल्यतां प्राह मनीषिकोभिः रसालहव्यैः प्रयजामि साधुम् ॥
ॐ ह्रीं पूज्यपादकं (?) वात्सल्यांगाय जलम्।

एकादशांगेन निरूपितं यत् ह्यकम्पनेनापि प्रकाशितं च ।
तदर्चयामि सद्वै स्मार्तै मुनीन्द्रस्य गतकल्मष यत् ॥
ॐ ह्रीं अकम्पनाचार्यप्रकाशितैकादशाङ्गवात्सल्यांगाय अर्घ्यम् ।
सान्तर्द्धेन पूर्वांगि चतुर्दश प्रकाशितम् ।
तद्वात्सल्यधुर्धर्षेन स्तवुने मयजे फले ॥
ॐ ह्रीं चतुर्दशवात्सल्यसहितसाधुभ्यो अर्घ्यम् ।
वरांगदनृपेणापि श्रावकाचारमापितम् ।
सोऽद्यापि वर्तते लोके त यजे तिन्दुनिम्बके ॥
ॐ ह्रीं वरांगदनृपेणाश्रावकाचारवात्सल्यांगाय नम ।
श्रुतवाचाजिनै प्रोक्तं चतुर्विंशतिनन्दनात् ।
तत्र वात्सल्यक जात तत् यजे वसुद्रव्यकै ॥
ॐ ह्रीं श्रुतवाचचतुर्विंशतिवात्सल्यांगाय अर्घ्यम् ।

■ × ×

अन्तिम भाग—

प्रजापतिभाद्रसिते द्वितीयाया पडेय (पडेभ) समशशिवत्सरेषु । रत्नत्रय पाठ (?) चकार पूर्ण भक्तिल (?) पूर्णा मुनिविश्वभूष ।

शोधयन्तु महापाठ वाल्मीकमुनिरा चिरम् ।
क्षम्यतां क्षम्यतां देवि ! यद्विरुद्ध मया कृतम् ॥
यावन्मेरुनदीगगा यावत्खे च सुतारका ।
तावत्तिष्ठतु मे पाठो मिथ्यात्वतम (?) भास्कर ॥

इति विशालकीर्त्यात्मजो भट्टारकविश्वभूषणविरचिता रत्नत्रयोद्यापनपूजा समाप्ता ।

इस रत्नत्रयोद्यापन के कर्त्ता भट्टारक विश्वभूषण अपने को विशालकीर्ति का आत्मज बतलाते हैं। यह भ० विश्वभूषण वि० सं० १८१०* में होनेवाले भक्तामरकथा, *पद्म पुराण*, इन्द्रध्वजपूजा, षण्णवतिक्षेत्रपालशान्ति आदि के रचयिता ही ज्ञात होते हैं। इनके *दशलक्षणोद्यापन, जिनगुणसम्पत्त्युद्यापन आदि* दो-तीन उद्यापन सम्बन्धी ग्रन्थ भी मिलते हैं। इससे भी उपर्युक्त अनुमान प्रबल प्रतीत होता है। पर एक बात है—प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति में 'पडेवसमशशिवत्सरेषु' पाठ देख कर उक्त सम्वत् पर कोई सन्देह कर सकता है। पर यह लेखक की ही भूल ज्ञात होती है। वास्तव में यह प्रति है भी बहुत अशुद्ध। मेरे ख्याल से इसका पाठ 'पडेभसमशशि' होना चाहिये। इस पाठ से उक्त निर्णीत समय करीब-करीब असन्दिग्ध हो जाता है।

* देखें—'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' पृष्ठ २७।

(४३) ग्रन्थ नं० ५४/क

प्रतिष्ठा-तिलक

कर्त्ता—ब्रह्मसूरी

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च चौड़ाई ६।।। इञ्च पत्र-संख्या ११२

प्रारम्भिक भाग—

जिनाधीशमहं वन्दे विध्वस्ताशेषदोषकम्।
सर्वज्ञं सर्वशास्त्रस्य कर्त्तारं त्रिजगत्प्रभुम् ॥१॥
गणाधीशं श्रुतस्कन्धमपि नत्वा त्रिशुद्धितः।
प्रतिष्ठातिलकं वक्ष्ये पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥२॥
जिनेन्द्रप्रतिमान्यासः प्रतिष्ठेति निगद्यते।
तत्पूर्विका जिनेज्या हि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३॥

× × ×

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ६४, पंक्ति १२)—

अथाकारशुद्धिविधानम्।
वेदिबाह्यप्रदेशे मरुदमरकुमाराद्युपस्कारयुक्ते
कूटादावग्रपत्राम्बुजलिखितपरब्रह्मपुरूग्रामराढ्ये।
विन्यस्य स्नानपीठे कुशनिहितजिनार्चामुपानीय भक्त्या
संस्थाप्याग्रस्थकुम्भांबुभिरहमुचिताकारशुद्धिं विधास्ये ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भूः स्वाहा। जन्माभिषेकस्थानीयमाकार-
शुद्धयभिषेकमारम्भे स्नानपीठाग्रतः पुष्पाञ्जलिं कुर्यात्।
भेरीगंभीरनादेत्यादि पद्यपठनानन्तरं वाद्यं पृथग्वाद्यघोषणम्।

× × × ×

अन्तिम भाग—

देशेषु सर्वेष्वधिकः सुपाण्ड्यदेशो नदीमातृकदेवमातृकः।
चोद्याम्रमोचादिसुपूगवृक्षैः संवर्द्धमानो बहुशालिभिश्च ॥१॥

नानाविधैर्वर्द्धितधान्यवर्गैर्वृक्षैरशेषै फलदै सुयोग्यै ।
विभाति सत्पद्मसरोवरैश्च श्रीराजहंसैर्विहगैर्वरैश्च ॥२॥
दीप गुडीपत्तनमस्ति तस्मिन् हर्म्यावलीतोरणराजिगोपुरै ।
मनोहरागारसुरत्नसभूतैर्ध्यानजैर्भात्यमरावतीव ॥३॥
तद्राजराजेन्द्रमुपाय्यभूप कीर्त्या जगद्व्यापितवान् सुधर्मा ।
रराज भूमाविति निस्सपत्न कलान्वित सद्विबुधै परीत ॥४॥
तत्रास्ति सद्रत्नसुवर्णतुङ्गचैत्यालये श्रीवृषभेश्वरो जिन ।
शिवाख्यनन्दीशमुनीन्द्रमुख्या सच्छास्त्रवन्तो मुनयो वसन्ति ॥५॥
श्रीमूलसंघव्योमेन्दुर्भारते भावितीर्थकृत् ।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पदर्द्धिक ॥६॥
तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यानगन्धहस्तिप्रवर्त्तक ।
स्वामी समन्तभद्रोऽभूद्देवागमनिदेशक ॥७॥
शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायन शास्त्रविदां वरेण्यौ ।
कृत्स्न श्रुत श्रीगुरुपादमूले ह्यधीतवन्तौ भवत कृतार्थौ ॥८॥
तदन्वयेऽभूद्विदुषां वरिष्ठ स्याद्वादनिष्ठ सकलागमज्ञ ।
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्री प्रध्वस्तरागादिसमस्तदोष ॥९॥
तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वर ।
यद्वाङ्मयं पुरोरासीत् पुराणं प्रथमं भुवि ॥१०॥
तदीयप्रियशिष्योऽभूत् गुणभद्रमुनीश्वर ।
शलाका पुरुषा यस्य सूक्तिभिर्भूषिता सदा ॥११॥
गुणभद्रगुरोस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते ।
यस्य वाक्सुधया भूमावभिषिक्ता जिनेश्वरा ॥१२॥
तच्छिष्यानुक्रमे जातेऽसंख्येये विश्रुतो भुवि ।
गोविन्दभट्ट इत्यासीद् विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित ॥१३॥
देवागमनसूत्रस्य श्रुत्या सद्दर्शनान्वितः ।
अनेकान्तमतं तत्त्वं बहु मेने विदांवर ॥१४॥
नन्दनास्तस्य संजाता वर्धिताखिलकोविदा ।
दाक्षिणात्या जयन्त्यत्र स्वर्णयक्षीप्रसादत ॥१५॥
श्रीकुमारकवि सत्यवाक्यो देवरवल्लभ ।
उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानक ॥१६॥
वर्धमानकविश्चेति षडभूवन् कवीश्वरा ॥१६॥

धारांशादिगुणादिपर्यन्तगपि सर्वज्ञमभ्यापक ।
यान्देराधनानादिनाक्रमरवम् तद्ब्रह्मसूरी मुदा ॥२९॥
सारं सार श्रोतमिन्द्रन शास्त्रे सर्व स्पष्ट लक्ष्यन्तैनदेव ।
स्तोऽप्युद्धारादिविधानवं सज्ञानाद्धर्के बन्धुर सर्वकाम्यम् ॥३०॥
इति प्रतिष्ठातिलकोदितमभ्यान् करोति यो भव्यजनप्रमाश्रताम् ।
जिनप्रतिष्ठां परमार्थनिष्ठां सम्प्राप्य याम्यत्यचिरात् सुसौख्यम् ॥३१॥

इस प्रतिष्ठातिलक के कर्त्ता ब्रह्मसूरी ने अपना वंश परिचय निम्नलिखित रूप से दिया है :—

पाण्ड्यदेश में गुडिपत्तन नाम का एक नगर है। यहाँ का राजा पाण्ड्यनरेन्द्र है। यह बड़ा ही धर्मिष्ठ, शूर-वीर, कला कुशल तथा पण्डित-सेवी है। यहीं श्रीवृषभ तीर्थंकर का एक मनोज्ञ रत्नजड़ित सुवर्णमय मन्दिर है। इसमें विशालनन्दी आदि अनेक विद्वान् मुनिगण वास करते हैं। कवि ने आगे प्रख्यात पुराणप्रणेता भगवज्जिनसेनाचार्य की परम्परागत श्रीगोविन्द भट्ट को ही अपना पूर्वज बतलाकर निम्न प्रकार से अपनी वंशतालिका अंकित की है :—

गोविन्दभट्ट के श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्द्धमान नाम के छह लड़के थे। सुप्रसिद्ध कवि हस्तिमल्ल के पुत्र पण्डित पार्श्व हुए। यह अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मात्मा एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे पार्श्व पाण्ड्य देश से काश्यप, वशिष्ठ आदि अपने गोत्रज बन्धुओं के साथ होय्सलदेश में आकर रहने लगे। यह होय्सलवंश पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में कडूर जिले के मडुगिरि ताल्लुक में अंगडि नामक स्थान में प्रादुर्भूत हुआ था। इसका प्राचीन नाम शशकपुर है। यहाँ पर सळ नामक एक सामन्त ने एक व्याघ्र से जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु होय्सळ नाम प्राप्त किया था। विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में होय्सळवंश पहाड़ी था। पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी ने अपनी राजधानी शशकपुरी से बेलूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हलेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय होय्सळ नरेशों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य सब उनके अधीन हो गया था और इन्होंने कई अन्य प्रदेशों को भी जीत लिया था। प्रारम्भ में विष्णुवर्द्धन जैनधर्मावलम्बी रहा; किन्तु बाद वैष्णव हो गया था। फिर भी जैनधर्म से उसकी सहानुभूति बनी ही रही। होय्सळ राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। पीछे नरसिंह के पुत्र बल्लाल के समय में यह स्वतन्त्र हो गया। यह वंश जैनियों का विशेष रूप से पृष्ठपोषक था।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्ता ने हस्तिनापुरी लिखी है। ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वंश की राजधानी केवल तीन स्थानों में थी, जिनके नाम क्रम से नागपुर, देवगढ़ और शाहगढ़ थे। पता नहीं कि हस्तिनापुरी से ग्रन्थकर्ता किस स्थान का संकेत करते हैं। बहुत संभव है कि शाहगढ़ को ही इन्होंने हस्तिनापुर लिख दिया हो।

परन्तु, उक्त पार्श्वपण्डित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नाम के तीन पुत्र थे। इनमें से चन्द्रनाथ और इनके परिवार वाले हेमाचल में आ बसे। और दो भाई अन्यान्य स्थानों में चले गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र सूरि और इन्हीं के लड़के इस ग्रन्थ के रचयिता परम धार्मिक तथा शास्त्र-निष्णात एवं यतिजनसंसेवक अय्यपार्य जी हैं।

---

(२४) ग्रन्थ नं० ४५/क

प्रतिष्ठाकल्प

कर्ता—भट्टाकलंक

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च   चौड़ाई ५।।। इञ्च   पत्र-संख्या ८०

प्रारंभिक भाग—

विज्ञानं विमलं यस्य विशदं विश्वगोचरम्।
नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चितांघ्रये ॥१॥
धर्मिष्ठा च गणाधीशं श्रुतस्कन्धमुखस्य च।
पंचसुगीतानाचार्यानपि भक्त्या नमाम्यहम् ॥२॥
अथ श्रीनेमिचन्द्रीयप्रतिष्ठाशास्त्रमार्गतः।
प्रतिष्ठायास्तदाद्युपांगानां स्वयमङ्गिनाम् ॥३॥
स्त्रप्रतिष्ठाप्रभृत्यावन्तानां कृत्स्नकर्मणाम्।
अथान्तरक्रियाणां च लक्षणप्रतिपादकः ॥४॥
प्रतिष्ठाकल्पनामासौ ग्रन्थः सारसमुच्चयः।
भट्टाकलंकदेवेन साधु संगृह्यते स्फुटम् ॥५॥

धारांशास्त्रसुधाशिरोनवधि सर्वज्ञमंत्यापरं ।
पार्श्वेशंभगनाशिनींद्रमउरं तद्ब्रह्मसूरी भुवा ॥२९॥
सारं सारं श्रीजिनसिव्यत्र शास्त्रे सर्वं स्पष्टं लक्षणस्यैवदेव ।
ग्रन्थोऽस्मद्वाचाविधानं संप्राप्तालोके बन्धुरं सर्वशास्त्रम् ॥३०॥
इति प्रतिष्ठातिलकोऽभिधानम् करोमि यो ब्रह्मजनप्रमोदनाम् ।
जिनप्रतिष्ठां परमार्थनिष्ठां सम्प्राप्य वास्पदपद्धिपत्य सुरौघयम् ॥३१॥

इस प्रतिष्ठातिलक के कर्त्ता ब्रह्मसूरी ने अपना वंश परिचय निम्नलिखित रूप से दिया है :—

पाण्ड्यदेश में गुडिपत्तन नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा पाण्ड्यनरेन्द्र है। वह बड़ा ही धर्मिष्ठ, शूर-वीर, कला कुशल तथा पण्डित-सेवी है। वहीं श्रीवृषभ तीर्थंकर का एक मनोज्ञ रत्नखचित सुवर्णमय मन्दिर है। इसमें विशालकीर्ति आदि अनेक विद्वान मुनिगण वास करते हैं। कवि ने ख्यात प्रख्यात पुराणप्रणेता भगवज्जिनसेनाचार्य की परम्परागत श्रीगोविन्द भट्ट को ही अपना पूर्वज बतलाकर निम्न प्रकार से अपनी वंश-मालिका अंकित की है —

गोविन्दभट्ट के श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्द्धमान नाम के छः लड़के थे। सुप्रसिद्ध कवि हस्तिमल्ल के पुत्र पण्डित पार्श्व हुए। वह अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मात्मा एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान थे। पीछे पार्श्व पाण्ड्य देश से काश्यप, वशिष्ठ आदि अपने गोत्रज बन्धुओं के साथ होय्सलदेश में आकर रहने लगे। यह होय्सलवंश पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में कडूर जिले के मुडगिरि तालुक में अंगडि नामक स्थान में प्रादुर्भूत हुआ था। इसका प्राचीन नाम शशकपुर है। यहां पर सळ नामक एक सामन्त ने एक व्याघ्र से जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु होय्सळ नाम प्राप्त किया था। विद्वानों का कहना है कि प्रारम्भ में होय्सळवंश पहाड़ी था। पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी ने अपनी राजधानी शशकपुरी से बेलूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हलेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय होय्सळ वंश का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य सब उनके अधीन हो गया था और इन्होंने कई अन्य प्रदेशों को भी जीत लिया था। प्रारम्भ में विष्णुवर्द्धन जैनधर्मावलम्बी रहा, किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। फिर भी जैनधर्म से उसकी सहानुभूति बनी ही रही। होय्सळ राज्य पहले चालुक्य-साम्राज्य के अन्तर्गत था। पीछे नरसिंह के पुत्र वीरबल्लाल के समय में वह स्वतन्त्र हो गया। यह वंश जैनियों का विशेष रूप से पृष्ठपोषक था।

इति संकल्प्य पुन्नाटे विश्रामे तदन्तरे ।
अस्ति विख्यातिरेतेन नागमण्डलिकाश्रिके ॥
श्रीमुरागनचिन्ताभ्य पुरादत्र शास्ति यत्र्ने ।
तस्य पुत्रस्य देवेन्द्रक्रमवर्यशात्स्के ॥
सर्वं ग्रन्थार्थं शास्त्राणां सर्वं गुरुपात्राणि ।
यत्र व्यापितरूपालिन्य दोषमर्थानतृष्टयम् ॥
मायातरं पुनं मत्र सौगतिंपुणबिम्बुणिनम् ।
षट्वार्द्धशोमाद्गगन्धपुण्यालक्ताश्रितम् ॥
वत्स्नामालसंपतिनं पुण्यपूर्णगन्लितम् ।
धौतमुक्तापूर्णं पद्मपलकाञ्चनाभिमम् ॥
श्रीरत्नसंकलं मालकाविवेचन्लितम् ।
पीतदक्ष्मधवल्याकोमलिङ्गवन्नृणम् ॥
× × ×

अन्तिम भाग—

इत्यार्षे श्रीमद्भट्टाकलंकदेवसंगृहीते प्रतिष्ठाकल्पनाम्नि ग्रन्थे सूत्रस्थाने प्रतिष्ठातिलकोद्धृत-कर्मविधिविधिनिरूपणीयो नामैकोनविंशः परिच्छेदः ।

प्रतिष्ठाकल्प, अकलङ्कसंहिता अथवा अकलङ्कप्रतिष्ठापाठ के नाम से प्रसिद्ध यह ग्रन्थ राजवार्तिक, अष्टशती आदि ग्रन्थों के रचयिता विक्रम की ८वीं शताब्दी के विद्वान् भट्टाकलङ्कदेव की कृति माना जाता है। इस ग्रन्थ में तो इसकी रचना का समय नहीं दिया है, परन्तु ग्रन्थों की सन्धियों में ग्रन्थकर्ता का नाम 'भट्टाकलङ्कदेव' अवश्य दिया है। सन्धियों में ही नहीं, पद्यों में भी ग्रन्थकर्ता ने अपना नाम भट्टाकलङ्कदेव प्रकट किया है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में पण्डित जुगलकिशोर जी मुख्तार का कहना है कि सन्धियों और पद्यों में भट्टाकलङ्कदेव का नाम लगा होने से ही यह ग्रन्थ राजवार्तिक के कर्ता का बनाया हुआ समझ लिया गया है। अन्यथा, ऐसा समझने में और कथन करने की कोई दूसरी वजह नहीं है। भट्टाकलङ्कदेव के बाद होनेवाले किसी माननीय प्राचीन आचार्य की कृति में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। प्राचीन शिलालेख भी इस विषय में मौन हैं। साथ ही साथ भट्टाकलंकदेव के साहित्य और उन की कथन-शैली से इस ग्रन्थ के साहित्य और कथनशैली का कोई मेल नहीं है। इसका अधिकांश साहित्य-शरीर ऐसे ग्रन्थों के आधार पर बना हुआ है, जिनका निर्माण भट्टाकलङ्कदेव के अवतार से बहुत पीछे के समयों में हुआ है।

पुरातनेषु तन्त्रेषु किञ्चित्सूत्रसमुच्चितम् ।
किञ्चित्प्रयोगसंसिद्धं किञ्चित्कर्मान्तरस्थितम् ॥६॥
मलकाण्डगतं किञ्चित् किञ्चित्तन्त्रान्तरोदितम् ।
इत्येवं विप्रकीर्णं तल्लक्ष्म नैकत्र सञ्चितम् ॥७॥
अवगम्य तदेकत्र नेयं प्रकृतकर्मणे ।
सिद्धयर्थं प्रौढसाध्यं यन्मन्दानां नैव गोचरं ॥८॥
अतो मन्दावबोधार्थं लक्ष्म यद्यत्र योजितम् ।
तन्नैव नियतेऽस्मीति सफलो मे परिश्रमः ॥९॥
श्लोकाः पुरातनाः केचिद्विहिताश्च लक्ष्मबोधकाः ।
प्रायस्तदनुसारेण मत्कृताश्च क्वचित्क्वचित् ॥१०॥
यत्साक्षात्पाद्य लक्ष्मैतच्छात्र्यस्थानेऽप्यपेक्षितम् ।
सगृह्यते तदेवात्र न पारम्पर्याश्रितम् ॥११॥
पारम्पर्याविवेकात्तत्संहिता शास्त्रभाषितम् ।
प्रोच्यते किन्तु तद्वैव (?) यच्छास्त्रान्तरगोचरं ॥१२॥
तथाहीह प्रतिष्ठांगक्रियानिर्वहणाय हि ।
तत्कर्तुर्नियमेनात्रोपासकाध्ययनागमे ॥१३॥
पुराणाध्यात्मशास्त्रवास्तुज्योतिषशास्त्रगम् ।
सामान्येऽपि पराज्ञानं महामुकुटशोभिभिः ॥१४॥
ज्ञानमावश्यकं तत्तु सत्क्या व्याकरणादिना ।
न भवेदिति तल्लक्ष्म येय तन्नैव नात्र तु ॥१५॥
× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ११, पंक्ति ६)—

अथैवमङ्कुरारोपस्तत्रासौ होमकर्म च ।
इत्युक्तं प्राक् ततोऽत्रैव तद्विधानं निरूप्यते ॥
मण्डपस्य च वेद्याश्च कुण्डानां चापि लक्षणम् ।
वक्ष्यतेऽग्रे प्रपञ्चेन यागशालाप्रवेशने ॥
अत्र कर्मानुपूर्वी च तल्लक्ष्म च केवलम् ।
पूर्वसूरिवचो दृष्ट्वा कथ्यते साधु तद्यथा ॥
होमकर्मणि पूर्वांगत्वेन पुण्याहवाचना ।
कर्तव्या सापि संकल्पपूर्विका प्रथमेऽपरा ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०, पंक्ति ८)—

कैवर्तीगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् (?) ॥१०४॥
उर्वशीगर्भसंभूतो वशिष्ठस्तु महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०५॥
चाण्डालीगर्भसंभूतो विश्वामित्रमहामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०६॥
शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं
कुलेन किं शीलविवर्जितेन।
बहो (?) नरा नीचकुलेषु जाताः
स्वर्गं गताः शीलगुणस्य धारिणः ॥१०७॥

इति मार्कण्डेयपुराणे, भविष्यपुराणे, विष्णुपुराणे, पद्मपुराणे (च) ऋषिकुलाधिकारः।

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां व्रतधारिणाम्।
ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु सर्वं व्रतं (व्रतं सर्वं) निरर्थकम् ॥१०८॥
सुखशय्यासनं वस्त्रं तांबूलं स्नानमण्डनम्।
दन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१०९॥
एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यन्तु एकतः।
एकतः सर्वपापानि मद्यं मांसं च एकतः ॥११०॥
आरंभे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठिर।
गृहस्थस्य कुतः शौचं मैथुनाभिरतस्य च ॥१११॥
मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारि(चर्य)दृढव्रताः।
ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति मानवाः ॥११२॥

इति शिवपुराणे ब्रह्मचर्याधिकारः।

× × ×

अन्तिम भाग—

मूर्खास्तपोभिः कृशयन्ति देहं।
बुधा मनोदेहविकारहेतुम् ॥
श्वा क्षिप्तमस्त्रं ग्रसते हि कोपात्।
क्षेप्तारमस्त्रस्य च हन्ति सिंहः ॥१९०॥

मुख्तार साहब ने अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिये भगवज्जिनसेन (वि० ९वीं शताब्दी)-प्रणीत आदिपुराण, आचार्य शुभचन्द्र (लगभग वि० ११वीं शताब्दी)-कृत ज्ञानार्णव, भट्टारक एकसन्धि (वि० १३वीं शताब्दी)-रचित एकसंधि संहिता, पण्डित आशाधर (वि० १३वीं शताब्दी)-प्रणीत जिनयज्ञकल्प, श्रीब्रह्मसूरि (लगभग वि० १५वीं शताब्दी)-विरचित प्रतिष्ठापाठ, श्रीनेमिचन्द्र (लगभग वि० १६वीं शताब्दी) अङ्कित प्रतिष्ठातिलक, श्रीसोमसेन (वि० १७वीं शताब्दी)-प्रणीत त्रिवर्णाचार के पद्यों को उद्धृत किया है। इन पद्यों में मंगलाचरण भी गर्भित है। पं० जुगल किशोर जी के ख़याल से इसकी रचना विक्रम की १६ वीं या १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है और यह अकलंक या अकलंकदेव नाम के किसी भट्टारक या विद्वान् की रचना है। मालूम होता है कि इन्होंने अपने नाम के साथ स्वयं ही 'भट्ट' की महत्त्वसूचक उपाधि को धारण करना पसन्द किया है। [illegible] सम्बन्ध में विशेष बात जानने के लिये 'ग्रन्थ-परीक्षा' भाग ३य का अवलोकन करना चाहिए।

---

(४५) ग्रन्थ नं०—$\frac{५७}{क}$

परसमय ग्रन्थ

कर्त्ता—(संगृहीत)

विषय—जैनाचारमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इञ्च चौड़ाई ६॥। इञ्च पत्र-संख्या २०

प्रारम्भिक भाग—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्द्धते।
कथं संस्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति॥
सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्द्धते।
क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभाद्विनश्यति॥
अहिंसासत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्।
पञ्चस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०, पंक्ति ८)—

कैवर्तीगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् (?) ॥१०४॥
उर्वशीगर्भसंभूतो वशिष्ठस्तु महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०५॥
चाण्डालीगर्भसंभूतो विश्वामित्रमहामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०६॥
शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं
कुलेन किं शीलविवर्जितेन।
बहो (?) नरा नीचकुलेषु जाताः
स्वर्गं गताः शीलगुणस्य धारिणः ॥१०७॥

इति मार्कण्डेयपुराणे, भविष्यपुराणे, विष्णुपुराणे, पद्मपुराणे (च) ऋषिकुलाधिकारः।

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां व्रतधारिणाम्।
ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु सर्वं व्रतं (व्रतं सर्वं) निरर्थकम् ॥१०८॥
सुखशय्यासनं वस्त्रं तांबूलं स्नानमण्डनम्।
दन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१०९॥
एकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यन्तु एकतः।
एकतः सर्वपापानि मद्यं मांसं च एकतः ॥११०॥
आरंभे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठर।
गृहस्थस्य कुतः शौचं मैथुनाभिरतस्य च ॥१११॥
मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारि(चर्य)दृढव्रताः।
ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति मानवाः ॥११२॥

इति शिवपुराणे ब्रह्मचर्याधिकारः।

× × ×

अन्तिम भाग—

मूर्खास्तपोभिः कृशयन्ति देहं।
बुधा मनोदेहविकारहेतुम् ॥
श्वा क्षिप्तमस्त्रं ग्रसते हि कोपात्।
क्षेप्तारमस्त्रस्य च हन्ति सिंहः ॥१९०॥

मुख्तार साहब ने अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिये भगवज्जिनसेन (वि० ९ शताब्दी) प्रणीत आदिपुराण आचार्य शुभचन्द्र (लगभग वि० ११वीं शताब्दी)-कृत ज्ञानार्णव भट्टारक एकसन्धि (वि० १३वीं शताब्दी)-रचित एकसंधि संहिता, पण्डित आशाधर (वि० १३वीं शताब्दी)-प्रणीत जिनयज्ञकल्प, श्रीब्रह्मसूरि (लगभग वि० १५वीं शताब्दी)-विरचित प्रतिष्ठापाठ, श्रीनेमिचन्द्र (लगभग वि० १६वीं शताब्दी) अङ्कित प्रतिष्ठातिलक, श्रीसोमसेन (वि० १७वीं शताब्दी)-प्रणीत त्रिवर्णाचार के पद्यों को उद्धृत किया है। इन पद्यों मंगलाचरण भी गर्भित है। प० जुगलकिशोर जी के ख्याल से इसकी रचना विक्रम १६ वीं या १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है और यह अकलङ्क या अकलङ्कदेव नाम किसी भट्टारक या विद्वान् की रचना है। मालूम होता है कि इन्होंने अपने नाम के सा स्वयं ही 'भट्ट' की महत्त्वसूचक उपाधि को धारण करना पसन्द किया है। इस सम्ब में विशेष बात जानने के लिये 'ग्रन्थ परीक्षा' भाग ३ का अवलोकन करना चाहिए।

---

(४५) ग्रन्थ नं० ५७/क

परसमय ग्रन्थ

कर्ता—(संगृहीत)

विषय—जैनाचारमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इञ्च   चौड़ाई ६॥। इञ्च   पत्र-संख्या २०

प्रारम्भिक भाग—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विवर्धते।
कथं संस्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति॥
सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्धते।
क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभाद्विनश्यति॥
अहिंसासत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्।
पञ्चस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः॥

के साथ मिलते हैं। फिर भी परसमयग्रन्थ के कर्त्ता वेदाङ्कुश के कर्त्ता से भिन्न ज्ञात होते हैं। प्रतिपादित विषयों का क्रम भी दोनों का भिन्न भिन्न है। बल्कि वेदाङ्कुश में परसमयग्रन्थ की अपेक्षा विषय का बाहुल्य है। वेदाङ्कुश में जहां क्रमशः परोपकार, धर्म, सत्य, निन्दा, दया आदि २५ विषयों पर प्रकाश डाला गया है, वहां परसमयग्रन्थ में उपर्युक्त कतिपय परिमित विषयों पर ही प्रकाश डाला गया है। वेदाङ्कुश में सर्वप्रथम परोपकार पर प्रकाश डाला गया है और परसमयग्रन्थ में अहिंसा पर। हां, जैसे मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग, रात्रिभोजनत्याग और ब्राह्मणत्व आदि कतिपय विषयों के पद्य दोनों में एक से मिलते हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि इस परसमयग्रन्थ को किसी दिगम्बर विद्वान् ने संग्रह किया हो। सुदूरवर्त्ती दक्षिण भारत में प्राप्त इस ग्रन्थ की प्रति भी इसी बात की ओर संकेत करती है। क्योंकि दक्षिण भारत में कल तक दिगम्बर जैनों का ही बोलबाला रहा है। हां, उपलब्ध प्रति अधूरी मालूम होती है। समग्र प्रति मिलने पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जा सकता है। जिन्हें इसकी समग्र प्रति उपलब्ध हो उन्हें इस पर अवश्य विशेष प्रकाश डालना चाहिये।

---

(४६) ग्रन्थ नं० ५८/क

कषायजयभावना या कषायजयचत्वारिंशत्

कर्त्ता—कनककीर्ति मुनि

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च चौड़ाई ६।।। इञ्च पत्रसंख्या ६

प्रारम्भिक भाग—

येन कषायचतुष्कं ध्वस्तं संसारदुःखतरुबीजम्।
प्रणिपत्य तं जिनेन्द्रं कषायजयभावनां वक्ष्ये ॥१॥
कोपी नाशयति क्षणेन विपुलां संसंचितं (?) संपदं।
कोपी च त्यजति द्रुतं प्रणयिनीं भार्यां स्वकीयामपि ॥
कोपी पुण्यजनोचितान् सुखकरान्........ ... ।
....॥२॥

कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते ।
ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं पदम् ॥१९१॥

मार्गे पदान्तरमपि व्रजति त्वदीयो
ध्यायन्नपि त्रिभुवनाथ न (च) मनुष्यः ॥
तीर्थे पथि प्रयततो भवतस्तवैकं ।
पुण्यं भविष्यति ततः क्रियतां तदेव ॥१९२॥

मन्ये वस्तूनि शोभनेऽपि हि तथा शोकः समारभ्यते ।
तत्रारम्भोऽस्य पापोऽस्य सौख्यमथवा धर्मोऽथवा स्याद्यदि ॥
यद्येकोऽपि न जायते कथमपि स्फारैः प्रयत्नैरपि ।
प्रायस्तत्र सुधीर्मृषा भवति कः शोकोमरत्सोरिपु (?) ॥१९३॥

त्वं शुद्धात्मा शरीरं सकलमलयुतं त्वं सदानन्दमूर्तिः ।
देहो दुःखैकगेहं त्वमसि कलाचित्कायमज्ञानपुञ्जम् ॥
त्वं नित्यः भङ्गनिवासः क्षणरुचिसदृशः शाश्वतैकाङ्गमङ्गं ।
मा गा जीवाऽत्र रागं वपुषि भज निजानन्दसौख्योदयं त्वम् ॥१९४॥

निश्चेष्टानां वधो राजन् कुत्सितो जगतीपते ।
जन्तुमध्योपनीतानां पशूनामिव तद्वध ॥१९५॥

यह 'परसमयग्रन्थ' एक संग्रहग्रन्थ है। इसे मैंने राजकीय प्राच्यपुस्तकागार मैसूर से लिखवाया था। वहाँ की मुद्रित ग्रन्थनामावलि में यह इसी नाम से अङ्कित है। इस ग्रन्थ में संग्रहकर्त्ता ने जैनधर्म में प्रतिपादित मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग, नवनीतत्याग, कन्दमूलत्याग, रात्रिभोजनत्याग, जलगालन, आहारदान, ब्रह्मचर्य और अहिंसा आदि मान्यताओं को हिन्दुओं के पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण भगवद्गीता और महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रमाणोद्धरणपूर्वक पुष्ट किया है। हाँ एक बात है। वह यह है कि इस ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों का हवाला दिया गया है उनके नाम और पद्य मात्र दिये गये हैं, अध्याय, प्रकरण, पृष्ठ आदि का इसमें कुछ भी निर्देश नहीं मिलता है। अतः मूलग्रन्थों से अगर कोई इन प्रमाणों को मिलान करना चाहे यह सहज नहीं है।

अस्तु सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्रजी के द्वारा रचित 'वेदाङ्कुश' नामक एक लघुकलेवर ग्रन्थ वि० संवत् १९७१ में अहमदाबाद में छपा है। यह 'श्रीहेमचन्द्राचार्य-ग्रन्थावली' का पाँचवाँ ग्रन्थ है। वेदाङ्कुश और परसमयग्रन्थ ये दोनों ग्रन्थ एक ही विषय के हैं। बल्कि वेदाङ्कुश के बहुत से पद्य परसमयग्रन्थ में यथावत् और बहुत से पाठभेद

के साथ मिलते हैं। फिर भी परसमयग्रन्थ के कर्त्ता धेराङ्कुश के कर्त्ता से भिन्न ज्ञात होते हैं। प्रतिपादित विषयों का क्रम भी दोनों का भिन्न भिन्न है। बल्कि धेराङ्कुश में परसमयग्रन्थ की अपेक्षा विषय का बाहुल्य है। धेराङ्कुश में जहां क्रमशः परोपकार, धर्म, सत्य, निन्दा, दया आदि २५ विषयों पर प्रकाश डाला गया है, वहां परसमयग्रन्थ में उपर्युक्त कतिपय परिमित विषयों पर ही प्रकाश डाला गया है। धेराङ्कुश में सर्वप्रथम परोपकार पर प्रकाश डाला गया है और परसमयग्रन्थ में अहिंसा पर। हां, जैसे मैं ऊपर लिख चुका हूं कि मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग रात्रिभोजनत्याग और ब्राह्मणशल्य आदि कतिपय विषयों के पद्य दोनों में एक से मिलते हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि इस परसमयग्रन्थ को किसी दिगम्बर विद्वान् ने संग्रह किया हो। सुदूरवर्त्ती दक्षिण भारत में प्राप्त इस ग्रन्थ की प्रति भी इसी बात की ओर संकेत करती है। क्योंकि दक्षिण भारत में कल तक दिगम्बर जैनों का ही बोलबाला रहा है। हां, उपलब्ध प्रति अधूरी मालूम होती है। समग्र प्रति मिलने पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जा सकता है। जिन्हें इसकी समग्र प्रति उपलब्ध हो उन्हें इस पर अवश्य विशेष प्रकाश डालना चाहिये।

---

(४६) ग्रन्थ नं० $\frac{५८}{क}$

कषायजयभावना या कषायजयचत्वारिंशत्

कर्त्ता—कनककीर्ति मुनि

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८।इञ्च   चौड़ाई ६।।। इञ्च   पत्रसंख्या ९

प्रारम्भिक भाग—

येन कषायचतुष्कं ध्वस्तं संसारदुःखतरुबीजम्।
प्रणिपत्य तं जिनेन्द्रं कषायजयभावनां वक्ष्ये ।।१।।
कोपी नाशयति क्षणेन विपुलां संसंचितं (?) संपदं।
कोपी च त्यजति द्रुतं प्रणयिनीं भार्यां स्वकीयामपि ॥
कोपी पुण्यजनोचितान् सुखकरान्........ ... ।
....।।२।।

भ्रूभंगभंगुरितभीमललाटपट्टं । रक्तं विरूपमपि कम्पितसर्वगात्रम् ।
प्र(?)स्खलद्वचनमुद्गतलोलदृष्टि । कोपं करोति मदिरेव जनं विसंज्ञम् ॥
नो संवृणोति परिधानमपि स्वकीयं । भाण्डानि चूर्णयति हन्ति शिशूनदुष्ट
स्वात्म(?) पर परिभवत्यपि मुक्तकेश । कोपी ।
कोपेन कश्चिदपर ननु हन्तुकामस्तत्रायस स परिगृह्य करेण मूढ ॥
स्व निर्दहत्यपरमत्र विकल्पनीयं । किंवा विडम्बनमसौ न करोति कोप ॥

× × × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ५, पंक्ति ४)—

व्याघ्री नो कुपिता न चापि उरगी नैवान्तकी राक्षसी ।
शस्त्रौघापि तथा न पावकशिखा नो शाकिनी डाकिनी ॥
नो वज्राशनिरुत्तमांगपतितो सर्वस्य हानि तथा ।
दु ख भूरि यथा करोति भविना माया भृशां संततौ ॥२१॥
त्यक्ताशेषपरिग्रहा अपि सदा विज्ञाततत्त्वा अपि ।
शश्वद्ध्यानसमीरितप्रतपसा संपीडितांगा अपि ॥
केचिद्गौरव(?)गौरवाद्विहितया दुर्लक्ष्यया मायया ।
मृत्वा यान्ति कुदेवयोनिमवशा माया न किं दु खदा ॥२३॥
छिद्रावलोकनपर सततं परेषां जिह्वाद्वयेन सदृश न विधानदक्षम् ॥
न तद्विपाकहृदय च खलस्वभाव । माया करोति हि नर स भुजंगवेदम् ॥२३॥
धीरोऽपि चारुचरितोऽपि विचक्षणोऽपि ॥
शीलाढ्योऽपि सतत विनयान्वितोऽपि ॥
शुद्धोऽपि वृद्धजनतानपि धार्मिकोऽपि ।
मायासख सदसि याति लघुत्वमेव ॥२४॥
आराध्यमानस्य च दैववृन्दं । प्रपूज्यमानस्य हि साधुवृन्दम् ॥
निषेव्यमानस्य ▪ राजलोकं । न मायिन सिद्ध्यति कार्यजात(ऌ)म् ॥२५॥

× × × × ×

प्रारम्भिक भाग—

इमे कषाया सुखसिद्धिबाधका इमे कषाया भववृद्धिसाधका ॥
इमे कषाया नरकादिदु खदा इमे कषाया बहुकल्मषप्रदा ॥२८॥
कषायवान्नो लभते सुदर्शन कषायवान् ज्ञानमवैति नोज्ज्वलम् ॥
कषायवान् चारुचरित्रमुत्थाति (?) कषायवान् मुञ्चति शोभनं तप ॥२९॥

यतः कषायैरिह जन्मवासे समाप्यते दुःखमनन्तपारम् ॥
हिताहितप्राप्तविचारदक्षैरतः कषायाः खलु वर्जनीयाः ॥४०॥
इति कनककीर्तिमुनिना कषायजयभावना प्रयत्नेन।
भव्यचित्तशुद्ध्यै (?) विनयेन समासतो रचिता।
इति कषायजयचत्वारिंशत्समाप्तः।

यह कषायजयभावना या कषायजयचत्वारिंशत् ४० पद्यों की एक छोटी सी रचना है। रचना छोटी होने पर भी साहित्यिकदृष्टि से भी इसके पद्य सुन्दर हैं। इसमें क्रोध, मान आदि कषायों से होने वाली अवस्था एवं हानि का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके कर्त्ता कनककीर्ति मुनि हैं। मालूम नहीं होता है कि यह कनककीर्ति मुनि कौन हैं? क्योंकि इस रचना में कहीं भी आप की गुरुपरम्परा आदि का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भव है कि 'अष्टाह्निकोद्यापन' आदि के कर्त्ता कनककीर्ति भट्टारक ही इसके रचयिता हों।

---

(४७) ग्रन्थ नं०—६१/क

प्राकृतव्याकरण

कर्त्ता—श्रुतसागर

विषय—व्याकरण
भाषा—संस्कृत एवं प्राकृत

लम्बाई ८॥। इञ्च चौड़ाई ४॥। इञ्च पत्रसंख्या १५२

प्रारम्भिक भाग —

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्दास्पदप्रदम्।
पूज्यपादं प्रवक्ष्यामि प्राकृतव्याकृतं सताम् ॥

तदार्षं च बहुलं तत्प्राकृतमृषिप्रणीतमार्षमनार्षं च बहुलमित्यधिकृतं वेदितव्यं। तत्र ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ ङ ञ श ष प्लुतविसर्गौ स्वरव्यञ्जनद्विवचनचतुर्थीबहुवचनानि

× × × × ×

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ७३, पंक्ति २)—

श्रीकुंदकुंदसूरिविद्यानन्दिप्रभोश्च पादकंजम्।
नत्वा च पूज्यपादं संयुक्तमतः परं वक्ष्ये ॥

घ्नं भंगभंगुरितभीमश्लाद्यहं । स्वं विकरमपि करितसंगमम् ।
म(?)मस्तस्वच्छवचनमुद्गलोग्रहिं । कोपः करोति मदिरेव जन विनष्ट(?)
मो संवृणोति परिधानमपि स्वकीयं । भाण्डानि चूर्णयति हन्ति निजं सुदं
स्वात्मं(?) परं परिभवत्यपि मुक्तकेशः । कोपी पिशाचवदहो सदनान्ते
कोपेन कश्चिदपरं ननु हन्तुकामस्तत्रायसं स परिगृह्य करोति मूढः ॥
स्वं निर्दहत्यपरमत्र विकल्पनीयं । किया विदग्धमनसो न करोति कोपं(?)

× × × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ५, पंक्ति ४)—

व्याघ्री नो कुपिता न चापि सुरमी नैवान्तकी राक्षसी ।
शस्त्रैश्चापि तथा न पावकशिखा नो शाकिनी डाकिनी ॥
नो स्मशाननिकाममागतविता सर्वस्व हानिं तथा ।
दुःखं भूरि यथा करोति नचिता माया भुवां सद्ववौ ॥२१॥
व्यक्ताशेषपरिग्रहा अपि सदा विज्ञातशास्त्रा अपि ।
शश्वत्कृतकायवधेद्धतपसा सपीडितांगा अपि ॥
केचिद्गौरव(?)गौरवाद्विहितया दुर्लक्ष्यामायया ।
मृत्वा यान्ति कुदेवयोनिमथवा माया न किं दु यशा ॥२२॥
विश्वासलोकनपरं सततं परेषां विज्ञापयंत भयदा न विधानदम् ॥
अन्तर्विपाककटुकं च खलस्वभावं । माया करोति हि नरं स भुजगवेषम् ॥२३॥
धीरोऽपि चारुचरितोऽपि विचक्षणोऽपि ॥
शीलान्वितोऽपि सततं विनयान्वितोऽपि ॥
शुद्धोऽपि वृद्धधनवानपि धीधनोऽपि ।
मायावशः स्तरसि याति लघुत्वमेव ॥२४॥
आराध्यमानस्य च देवतुल्यं । अपूज्यमानस्य हि साधुवृत्तम् ॥
निषेव्यमाणस्य तु राजलोकं । न मायिनः सिद्धयति कार्यजात(ल)म् ॥२५॥

× × × × ×

प्रारम्भिक भाग—

इमे कषाया सुखसिद्धिबाधका इमे कषाया भववृद्धिसाधका ॥
इमे कषाया नरकादिदुःखदा इमे कषाया बहुकल्मषप्रदा ॥२८॥
कषायवान्नो लभते सुदर्शनं कषायवान् ज्ञानमवैति नोज्ज्वलम् ॥
कषायवान् चारुचरित्रमुत्थानि (?) कषायवान् मुञ्चति शोभनं तप ॥२९॥

की किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। क्योंकि पूर्व में ईडर, सूरत, सोजित्रा आदि कई स्थानों में भट्टारकों की गद्दियां रहीं हैं। हां, यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनन्दी भट्टारक थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्रुतसागरजी ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। वैराग्यमणिमाला के रचयिता श्रीचन्द्र आप ही के शिष्य हैं। आराधनाकथाकोष, नेमिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी श्रुतसागर को गुरुभाव से स्मरण किया है।* नेमिदत्त ने भी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। श्रुतसागर की यशस्तिलक-चन्द्रिका, महाभिषेकटीका, तत्वार्थटीका, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका आदि अनेक रचनायें मिलती हैं। इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कंधावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, वृहत्कथाकोष आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुये कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने उपलब्ध किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है। पं० नाथूरामजी प्रेमी का कहना है कि आप विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। प्रेमीजी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हेतु उपस्थित करते हैं—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिये दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोष के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुये हैं और ये श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्दजी की सं० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सं० १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीका में जगह जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

अस्तु, श्रुतसागरजी के इस प्राकृतव्याकरण की यह भवन की प्रति अधूरी है। इस प्रति में द्वितीय अध्याय के बाद केवल एक पत्र है। अतः समग्र प्रति को खोजने की जरूरत है।

* देखें—'आराधनाकथाकोष' की प्रशस्ति।

को वा मृदुत्वरुग्णदष्टमुक्तशक्तेषु । मृदुत्वादिषु पञ्चसु शब्देषु यः संयुक्तो वर्णस्तस्य ककारो भवति वा । मृदुत्व माउत्तण माउक्कण । कथ्यतेऽस्म रुग्ण भुग्नपर्याये (?) रोगादिना वक्रीभूते लुग्गो लुक्को रुग्ण । दष्ट दट्ठो डक्को । मुक्त मुत्ता मुक्को । शक्त सक्ता सक्को ॥१॥ क्ष खः छझौ च क्वचित् क्षकारस्य खकारो भवति छझौ वा क्वचिद्भवत । लक्षण लक्खणं । क्षय खउ क्षीयते । छिज्जइ छिज्जइ झिज्जइ । क्षीण खीणं छीणं झीणं ॥२॥

× × × × × ×

अन्तिम भाग—

इत्युभयभाषाकविचक्रवर्तिव्याकरणकमलमार्तण्डतार्किकशिरोमणिपरमागमप्रवीणसूरिश्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रशिष्यमुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिभट्टारकान्तेवासिश्रीमूलसंघपरमात्मविदुस्थसूरिश्रीश्रुतसागरविरचिते औदार्यचिन्तामणिनाम्नि स्वोपज्ञवृत्तिनि प्राकृतव्याकरणे संयुक्ताव्ययनिरूपणो नाम द्वितीयोऽध्याय ।

इसके कर्ता आचार्य श्रुतसागर एक बहुश्रुत विद्वान् थे। षट्प्राभृत की टीका से एवं यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से ज्ञात होता है कि यह कलिकालसर्वज्ञ, कलिकालगौतम स्वामी उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि उपाधियों से विभूषित थे। इन्होंने ९९ महावादियों को पराजित किया था। श्रुतसागर जी मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण आचार्य एवं विद्यानन्दिभट्टारक के शिष्य थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—पद्मनन्दी-देवेन्द्रकीर्ति-विद्यानन्दी।

पं० नाथूरामजी प्रेमी का अनुमान है कि विद्यानन्दी भट्टारक के पट्ट पर आपकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि पं० आशाधर के महाभिषेक नामक ग्रन्थ की इनकी टीका के अन्त में विद्यानन्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार है—विद्यानन्दी मल्लिभूषण लक्ष्मीचन्द्र*। इससे विदित होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिभूषण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीका में श्रुतसागर ने मल्लिभूषण को अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी सिद्ध होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए हैं।

यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देश के पट्ट पर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र विराजमान थे और मल्लिभूषण का प्राय स्वर्गवास हो चुका था। लक्ष्मीचन्द्र के बाद भी श्रीश्रुतसागर के पट्टाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भव है कि यह सिंहासनासीन हुये ही नहीं। उल्लिखित पद्मनन्दी, विद्यानन्दी आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुये हैं। परन्तु यह मालूम नहीं होता है कि गुजरात

* देखें—'षट्प्राभृतादिसंग्रह' की भूमिका पृष्ठ ६—७।

की किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। क्योंकि पूर्व में ईडर, सूरत, सोजित्रा आदि कई स्थानों में भट्टारकों की गद्दियां रहीं हैं। हां, यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनन्दी भट्टारक थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्रुतसागरजी ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। वैराग्यमणिमाला के रचयिता श्रीचन्द्र आप ही के शिष्य हैं। आराधनाकथाकोष, नेमिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी श्रुतसागर को गुरुभाव से स्मरण किया है।* नेमिदत्त ने भी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। श्रुतसागर की यशस्तिलकचन्द्रिका, महाभिषेकटीका, तत्वार्थटीका, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका आदि अनेक रचनायें मिलती हैं। इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कंधावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, वृहत्कथाकोष आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुये कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने उपलब्ध किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है। पं० नाथूरामजी प्रेमी का कहना है कि आप विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। प्रेमीजी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हेतु उपस्थित करते हैं—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिये दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोष के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुये हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्दजी की सं० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सं० १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीका में जगह जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

अस्तु, श्रुतसागरजी के इस प्राकृतव्याकरण की यह भवन की प्रति अधूरी है। इस प्रति में द्वितीय अध्याय के बाद केवल एक पत्र है। अतः समग्र प्रति को खोजने की जरूरत है।

* देखें—'आराधनाकथाकोष' की प्रशस्ति।

(४८) ग्रन्थ नं०-६२/क

तत्त्वार्थवृत्ति

कर्ता—भास्करनन्दी

विषय—दर्शनादि

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३। इन्च चौड़ाई ८।। इन्च पत्रसंख्या १२४

प्रारम्भिक भाग—

जयन्ति कुमतध्वान्तपाटने पटुभास्कराः।
विद्यानन्दास्सतां मान्याः पूज्यपादा जिनेश्वराः॥

अथातिविस्तारमन्तरेण विमतिपतिबोधनायेष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरं तत्त्वार्थसूत्रपर विवरणं क्रियते तत्रादौ नमस्कारश्लोकः—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

× × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ८३, पंक्ति ६)—

"स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः"

टीका—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्रं स्पर्शः, स च मूलभेदापेक्षयाष्टविधो मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षविकल्पात्। रस्यते रसनमात्रं वा रसः, स हि पञ्चविधः तिक्ताम्लकटुकषायमधुरभेदात्। गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः, स द्विधा सुरभिरसुरभिभेदात्। वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः, स पञ्चधा कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात्। त एते भेदा उत्तरभेदोत्तरोत्तरभेदापेक्षया सङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तविकल्पाश्च जायन्ते।

स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्ते सन्ति येषां पुद्गलानां ते स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त इति नित्ययोगेऽत्र मत्वर्थीयस्य विधानं यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति। ननु 'रूपिणः पुद्गलाः' इत्यत्र रूपाविनाभाविनां रसादीनामपि ग्रहणात्तेनैव सूत्रेण पुद्गलानां रूपादिमत्त्वे सिद्धे अनर्थकमिदं सूत्रमिति। नैष दोषः। 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इत्यत्र सूत्रे धर्मादीनां नित्यत्वादिप्ररूप(णा)या पुद्गलानामरूपत्वे प्राप्ते तन्निरासार्थं रूपिणः पुद्गला

इत्युक्तम्। इदं तु सूत्रं परमतनिराकरणाचिकीर्षया पृथिव्यादीनां सर्वेषां पुद्गलादि-जातिविशेषाणां प्रत्येकं रूपादिचतुष्टयं साधारणं स्वरूपमित्येतस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थं कृतम्। परमते हि स्पर्शरसगन्धवर्णवती पृथिवी। स्पर्शरसवर्णवत्यः आपः। स्पर्शवर्णवत्तेजः। स्पर्शवानेव वायुरिति चत्वारश्चैक्यगुणाः जात्यन्तरेण स्थिताः पृथिव्यादय इत्युक्तम्। तच्च युक्त्यानुपपन्नमिति स्वपक्षसाधनद्वारेण निराक्रियते। तथा ह्यापो गन्धवत्यः। तेजोगन्ध-रसवत्। वायुर्गन्धरसवर्णवान् स्पर्शनत्वात्पृथिवीपर्यायवदिति। एवमुक्तं तावद् युक्तिबला-त्पृथिव्यादीनां पुद्गलपर्यायत्वं पुद्गलानां च स्पर्शादिसाधारणगुणत्वमिदानीमसाधारण-पर्याययोगिनः पुद्गलानाह।

× × × × × ×

अन्तिम भाग—

इति यः सुखबोधाख्यां वृत्तिं तत्त्वार्थसङ्गिनीम्।
षट्सहस्रां सहस्रोनां विद्यात्संमोक्षमार्गवित् ॥१॥
यदत्र स्खलितं वात्र विद्वांसो देशशास्त्रयोः।
तद्विचार्यैव धीमन्तश्शोधयन्तु विमत्सराः ॥२॥
नो निष्ठीव्येन्न शेते वदति च न परं ह्येहि पाहि तु याहि
नो कण्डूयेत गात्रं व्रजति न नाशिनोद्धृ हयेद्वानस्ते (?)
नावष्टभ्नाति रेणुं निधिरिति ······यो बद्धपर्यंकयोगः।
कृत्वा संन्यासमन्ते शुभगतिरभवन् सर्वसाधुस्सपूज्यः ॥३॥
तस्यासीत्सुविशुद्धदृष्टिविभवः सिद्धान्तपारङ्गतः।
शिष्यः श्रीजिनचन्द्रनामकलितश्चारित्रभूषान्वितः॥
शिष्यो भास्करनन्दिनामविबुधस्तस्याभवत्तत्त्ववित्।
तेनाकारि सुखादिबोधविषया तत्त्वार्थवृत्तिः स्फुटम् ॥४॥

शशधरकरनिकरतारनिस्तलतरतलमुक्ताफलहारस्फुरत्तारालिकुरम्बबिम्बनिर्मलतर-परमौदारशरीरशुद्धध्यानानलोज्ज्वलज्वालाज्वलितघनघाति घनसंधौतसकलविमलकेवलाव-लोकितसकललोकालोकस्वभावश्रीमत्परमेश्वरजिनपतिमतविततमतिचिदचित्स्वभावभावा-भिधानसाधितस्वभावपरमतमहासैद्धान्तजिनचन्द्रभट्टारकस्तच्छिष्यपण्डितश्रीभास्करनन्दि-विरचितमहाशास्त्रतत्त्वार्थवृत्तौ सुखबोधायां दशमोऽध्यायः समाप्तः।

वृत्तिगत प्रशस्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वृत्तिकार, पण्डितवर भास्करनन्दी के श्रद्धेय गुरु श्रीजिनचन्द्र भट्टारक हैं। परन्तु इस नाम के कई आचार्य और भट्टारक हो

गये हैं, इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करनन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। श्रद्धेय पं० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवतः श्रवणबेलगोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करनन्दी के गुरु हैं।* किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात को प्रेमी जी ने २२-१-४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं, जो 'धर्मसंग्रहश्रावकाचार' के कर्ता पं० मेधावी के गुरु और शुभचन्द्राचार्य के शिष्य थे। यह शुभचन्द्राचार्य पद्मनन्दि आचार्य के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभचन्द्र से पहले हो गये हैं। पं० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' ग्रन्थ की दानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।† इसी प्रकार एक भास्करनन्दी और हुए हैं, जिनका उल्लेख 'न्यायकुमुदचन्द्र' की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिसंघ के आचार्य देवनन्दी के शिष्य एवं सौरव्यनन्दी के प्रशिष्य हैं।‡ इस समय मेरे सामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करनन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि से भी यह वृत्ति प्रौढ है। वास्तव में इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाँच हजार श्लोकों में है। इसकी प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य, फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, ज्ञात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेन्ट ओरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् पं० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर हैं। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भट्टाकलंक का 'कर्णाटकशब्दानुशासन,' कविमार्गभौम पंप का 'आदिपुराण', नयसेन का 'धर्मामृत', जन्न का 'अनन्तनाथपुराण' आदि कई महत्त्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के संबंध में मैसूर-सरकार जो उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन समाज मैसूर-सरकार का अवश्य आभारी रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन कार्य और द्रुत गति से चलेगा। अब मेरे मन में आशा

---

* देखें—'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' में 'ग्रन्थकर्ताओं का परिचय'।

† यह 'प्रशस्ति भवन में मौजूद है।

‡ देखें—'अनेकान्त' वर्ष १ पृ० १३३।

का संचार हो रहा है कि, मैसूर-ओरियन्टल-लायब्रेरी की उदार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्त्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें (प्रभाचन्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति, विद्यानुशासन, एकसंधिसंहिता, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की दि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी।

---

(४९) ग्रन्थ नं० ६३/म

हरिवंशपुराण

कर्त्ता—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १३॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च पत्रसंख्या १२१

प्रारम्भिक भाग—

पयडियजयहंसहो कुणयविहंसहो।
भवियकमलसरहंसहो पणविविजयहंसहो॥
मुणयणहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो॥
जय विसह विसंकियविसययास।
जय अजिय अजिय हयकम्मपयास॥
जय संभव भवतरुवरकुठार।
जय लोकनंदन परिसेसियकुणारि॥
सुमइं सुमयपयडियपयत्थ।
जय पउमहिप्पहि णासियकुतित्थ॥
जय जय सुपास हयकम्मपास।
जय चंदप्पह ससितास तास॥
जय सुविहि सुविहिपयडणपवीण।
जय सीयल जिनवाणिपवीण॥

गये हैं; इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करनन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। श्रीयुत पं० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवतः श्रवणबेल्गोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करनन्दी के गुरु हैं।* किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात को प्रेमी जी ने २२-१-४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं, जो 'धर्मसंग्रहश्रावकाचार' के कर्ता पं० मेधावी के गुरु और शुभचन्द्राचार्य के शिष्य थे। यह शुभचन्द्राचार्य पद्मनन्दी आचार्य के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभचन्द्र से पहले हो गये हैं। पं० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' ग्रन्थ की दानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।† इसी प्रकार एक भास्करनन्दी और हुए हैं, जिनका उल्लेख 'न्यायकुमुदचन्द्र' की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिसंघ के आचार्य देवनन्दी के शिष्य एवं सौख्यनन्दी के प्रशिष्य हैं।‡ इस समय मेरे सामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करनन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि से भी यह वृत्ति प्रौढ है। वास्तव में इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाँच हजार श्लोकों में है। इसकी प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य, फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, ज्ञात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेन्ट-ओरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् पं० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर हैं। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भट्टाकलंक का 'कर्णाटकशब्दानुशासन,' कविसार्वभौम पंप का 'आदिपुराण', नयसेन का 'धर्मामृत', जन्न का 'अनन्तनाथपुराण' आदि कई महत्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के संबंध में मैसूर-सरकार जो उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन समाज मैसूर-सरकार का अवश्य ऋणी रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन-कार्य और द्रुत गति से चलेगा। अब मेरे मन में आशा

* देखें—'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' में 'ग्रन्थकर्ताओं का परिचय'।

† यह 'प्रशस्ति' स्वत्न में मौजूद है।

‡ देखे—'अनेकान्त' वर्ष १ पृ० १३३।

का संचार हो रहा है कि, मैसूर-ओरियन्टल-लायब्रेरी की उदार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्त्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें (प्रभाचन्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति, विद्यानुशासन, एकसंधिसंहिता, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की दि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी।

---

(४६) ग्रन्थ नं० ६३/क

हरिवंशपुराण

कर्त्ता—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १२॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च पत्रसंख्या १२१

प्रारम्भिक भाग—

पयडियजयहंसहो कुणयविहंसहो।
भवियकमलसरहंसहो पणविविजयहंसहो॥
मुणयणहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो॥
जय विसह विसंकियविसयवास।
जय अजिय अजिय हयकम्मपयास॥
जय संभव भवतरुवरकुठार।
जय लोकनंदन परिसेसियकुणारि॥
सुमइं सुमयपयडियपयत्थ।
जय पउमहिप्पहि णासियकुतित्थ॥
जय जय सुपास हयकम्मपास।
जय चंदप्पह ससितास ताम॥
जय सुविहि सुविहिपयडणपवीण।
जय सीयल जिनवाणिपवीण॥

गये हैं; इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करनन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। श्रीयुत पं० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवतः श्रवणबेलगोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करनन्दी के गुरु हैं।* किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात को प्रेमी जी ने २२-१-४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं, जो 'धर्मसंग्रहश्रावकाचार' के कर्ता पं० मेधावी के गुरु और शुभचन्द्राचार्य के शिष्य थे। यह शुभचन्द्राचार्य पद्मनन्दी आचार्य के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभचन्द्र से पहले हो गये हैं। पं० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति' ग्रन्थ की दानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।† इसी प्रकार एक भास्करनन्दी और हुए हैं, जिनका उल्लेख 'न्यायकुमुदचन्द्र' की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह मन्दिमय के आचार्य देवनन्दी के शिष्य एवं सौख्यनन्दी के प्रशिष्य हैं।‡ इस समय मेरे सामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करनन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु; इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि से भी यह वृत्ति प्रौढ है। वास्तव में इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाँच हजार श्लोकों में है। इसकी प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य, फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, ज्ञात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेन्ट-ओरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् पं० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर हैं। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भट्टाकलंक का 'कर्णाटकशब्दानुशासन,' कविसार्वभौम पंप का 'आदिपुराण', नयसेन का 'धर्मामृत', जन्न का 'अनंतनाथपुराण' आदि कई महत्त्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु संस्कृत ग्रन्थों में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के संबंध में मैसूर सरकार जो उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन-समाज मैसूर-सरकार का अवश्य ऋणी रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन कार्य और द्रुत गति से चलेगा। अब मेरे मन में आशा

* देखो—'सिद्धान्तसारादिसंग्रह' में 'ग्रन्थकर्त्ताओं का परिचय'।

† यह प्रशस्ति भवन में मौजूद है।

‡ देखो—'अनेकान्त' वर्ष १ पृ० १३३।

का संचार हो रहा है कि, मैसूर-ओरियन्टल-लायब्रेरी को उदार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्त्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें (प्रभाचन्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति, विद्यानुशासन, एकसंधिसंहिता, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की दि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी।

---

(४६)ग्रन्थ नं० ६३/क

हरिवंशपुराण

कर्त्ता—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १२॥ इञ्च चौड़ाई ८॥ इञ्च

प्रारम्भिक भाग—

पयडियजयहंसहो कुणयविहंसहो।
भवियकमलसरहंसहो पणविविजयहंसहो।
मुणियणहंसहो कहु पयडमि हरिवंसहो॥
जय विसह विसंकियविसयपास।
जय अजिय अजिय हयकम्मपयास॥
जय संभव भवतरुवरकुठार।
जय लोकनंदन परिसेसियकुणारि॥
सुमइं सुमयपयडियपयत्थ।
जय पउमहिप्पहि णामियकुतित्थ॥
जय जय सुपास हयकम्मपास।
जय चंदप्पह ससितास ताम॥
जय सुविहि सुविहिपयडणपवीण।
जय सीयल जिनवाणिपवीण॥

जय सेय सेयंकिय णियमेय।
जय वासुपुज्ज तरजलहिसेय॥
जय विमल विमलगुणगण महंत।
जय सत कंत जिणवर अणंत॥
जय धम्म धम्मविसअरिह सार।॰
जय संति समियसंसारताव॥
जय कुंथु सुरकियसुकुमयाणि।
जय अरि जिणचक्की सयलणाणि॥
जय मल्लि णिहयतिल्लोकमल्ल।
जय मुणिसुव्वय चूरिय तिमल्ल॥
जय णमि जिण णिसरहुयकरणोमि।
जय अहियराय धायमहणोमि॥
जय पास पावरजभयरवाल।
कुल णयणि दियोसग सुरणियसहियमाया॥
जय वीर णिहालियणयपमाण।
× × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ४४, पंक्ति ४)—

मकरंदस्य पद्मभाजे सर्वदा भ्रमरायते।
भाट् पुर्मम साधु (?) घोहाख्यो नंदतां चिरं॥
स भणहि वाम्मरे उवाइयो सरे।
पडु सहाउरविहुउ ता पक्के दूर्णं सणिणयभूयं॥
करमउलेप्पुणु दिट्ठउ विणवय सो जि भो णिसुणि देव।
मङ्गलिगार वाहहि विहिय सेव भाय त्रियवरि
पहु दुमहु राउ पिय सुन्दरि।
देजहि वद्धराउ हं पेसिउ तुम्हह पासु तेण॥
णिसुणहु आयउ कज्जो ण जेण।
दुमयहो सुय दोरइ भय त्रिणीय
रुवेण पीइ मोल्लेण सीय वाणहं वहुहं अयणगणहं इह
सिंगारु करंति ण्वेम दिट्ठि
ओलयगरति य आयो विराउ

परिणावमि यद्देह बहु भाउ
णोमितिय वयणो गाउ चलेइ
जोपहावे हुए तासु देइ
अमंतिय णारवइ सव्व आय
तुम्हइ आपसिय अम्हि राय
णिय णंदणु लेप्पिणु येह चलहु
पहु अणुमतु मा किंपि करहु
वद्धाहरणाहि पुज्जियउ दूउ
दुमयहे सहाए जो सारभूउ
पुणु पंडवियरु सग्गुह विचरकु
चल्लिय कुंतियणो सिय सपरकु
पंडय कुमारिंदि पाइं संपता सम्माणियल ताइं

× × ×

अन्तिम भाग—

दिवढा जसमुणि पत्थय विणुवि।
फाणविउ हरिवंस चरित्तु वि॥
जामहियाहु सायरु चंदु दिवायरु।
ताणंदउ दिवढाहु कुलु जे विराहु हि चरियउ कुरुवं सहंसहियउ
फाराविउ हयपावमालु ॥२२॥

इय हरिवंस पुराणे कुरुवंसाहिट्ठिए विबुहचित्ताणुरंजणे।
सिरि गुणकित्तिसीसमुणिजसकित्तिविरइये॥
साहु दिवढा णाम किए णेम णाह जुधिट्ठर भीमज्जुण णिव्वाण गमणं।
णिकुल सहदेव सव्वट्ठ सिद्धिगमणवण्णणोते रह सो सग्गो
समत्तो॥ संधि॥

इस हरिवंशपुराण के रचयिता, गुणकीर्ति के शिष्य यशःकीर्ति हैं। श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में गुणकीर्ति नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख उपलब्ध है अवश्य, परन्तु उन लेखों में इनका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। इस नाम के और भी कई व्यक्ति हो गये है, किन्तु हरिवंश-पुराण के कर्त्ता इन यश.कीर्ति से उनका सम्बन्ध देखने में नहीं आता। ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रस्तुत गुणकीर्ति ही हरिवंश-

जय सेय सेयंकिय विगयमेय।
जय वासुपुज्ज तवलच्छिमेय॥
जय विमल विमलगुणगण महंत।
जय संत दंत जिणवर अनंत॥
जय धम्म धम्मविनिहरिय तात्र।
जय संति समियससारताव॥
जय कुंथ सुरकियकुसुमवासि।
जय अरि जिणचक्की सयलणासि॥
जय मल्लि णिहयतिलोकमल्ल।
जय मुणिसुव्वय चूरिय तिसल्ल॥
जय णमि जिण विसरहचक्कणेमि।
जय अहियराय रायमइणेमि॥
जय पास पायरजमयरवाल।
कुल गयणि दिणेसरा सुरणिम्महियमाणा॥
जय वीर विहासियणयपमाण।

× × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ५४, पंक्ति ४)—

मध्यंदेशस्य पर्दाभाजे सर्वश्रा समरायने।
भाग पुर्मम साधु (?) घोद्वारभ्यो नश्वतां चिर॥
स भणाहे वामर उभाइयो सरे।
पहु सहाउवयिट्ठउ ता वक्के दूष्य सविणयभूयं॥
करमउलेप्पुणु विट्ठउ जिणवय सो जि भो णिसुणि देव।
भडरिमयार णाहहि विहिय मेव माय विमयरि
पहु तुमहु राउ पिय सुन्दरि।
देवहि वड्ढराउ ह पेसिउ तुम्हह पासु तेयए॥
णिसुणहुं आयउ कज्जा ण जेण।
तुमयहो सुय होयह सय विणोय
हवेसा पीइ सोलेण सीय पायणह वसइ अयणमणह॥
सिवाह करति सुवेय दिढि
जोवणचति य जाओ चिराउ

अजितं जितकन्दर्पं तं नमामि जगद्धितम् ।
यो जितो नैव पूतात्मा रागद्वेषादिशत्रुभिः ॥७॥
सम्भवं भवसन्तापसन्दोहक्षयकारकम् ।
वन्देऽभिनन्दनं देवं देवदेवाधिनायकम् ॥८॥
संस्तुवे सुमतिं देवं भव्यानां सुमतिप्रदम् ।
पद्मप्रभं प्रभाधीशं प्रसिद्धमहिमास्पदम् ॥९॥
श्रीसुपार्श्वं जगत्सारं सम्पदां शर्मसाधनम् ।
चन्द्रप्रभं प्रभासारं सर्वसंक्लेशनाशनम् ॥१०॥
पुष्पदन्तं लसत्कुन्दपुष्पसत्कान्तिसुन्दरम् ।
वन्देऽहं शीतलं देवं शीतलोत्तमवाग्भरम ॥११॥
श्रेयोजिनं नमाम्युच्चैः सारश्रेयोनिबन्धनम् ।
वासुपूज्यं जगत्पूज्यं प्रबुद्धकमलाननम् ॥१२॥
नमामि विमलाधीशं केवलज्ञानभास्करम् ।
वन्देऽनन्तजिनं भक्त्यानन्तानन्तसुखाकरम् ॥१३॥
धर्मं सद्धर्मतीर्थेशं सुरासुरसमर्चितम् ।
शान्तिनाथं भजाम्येतं सर्वभव्यैकसम्मतम् ॥१४॥
वन्दे कुन्थुजिनाधीशं कुंथ्वादौ च दयास्पदम् ।
अरं देवं सदा वन्दे सारं साररमाप्रदम् ॥१५॥
मल्लिं मोहारिसन्मल्लं वन्दे निःशल्यधामकम् ।
सुव्रतं तं नमाम्येतं मुनिसुव्रतनायकम् ॥१६॥
श्रीनेमिं संस्तुवे देवं नमद्देवेन्द्रसंस्तुतम् ।
नेमिनाथं जगन्नाथं वन्दे सर्वामरार्चितम् ॥१७॥
प्रसिद्धमहिमासारं पार्श्वनाथं जिनेश्वरम् ।
वन्दे श्रीवीरतीर्थेशं वीरवीरं सुखाकरम् ॥१८॥
एते तीर्थकराधीशाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः ।
सन्तु मे शान्तिकर्त्तारश्चान्ये कालत्रयोद्भवाः ॥१९॥
त्रैलोक्यशिखरारूढाः सिद्धाः संसारपारगाः ।
ते मे नित्यं समाराध्याः सन्तु सत्कार्यसिद्धिदाः ॥२०॥
वन्देऽहं भारतीं जैनीं जगद्ध्वान्तविनाशिनीम् ।
भासिनीं सर्वतत्त्वानां भानुभामिव निर्मलाम् ॥२१॥

पुराण के प्रणेता यशःकीर्त्ति के गुरु हैं। इसी प्रकार यशःकीर्त्ति नाम के भी अनेक विद्वान् हो गये हैं, जैसे—एक गोपनन्दी के शिष्य * दूसरे धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार ललितकीर्त्ति के शिष्य। सारांश यह है कि इस हरिवंश पुराण के रचयिता यशःकीर्ति का और उनके गुरु गुणकीर्त्ति का विशेष परिचय मुझे प्राप्त नहीं हो सका, इसलिये उनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका।

---

(५०) ग्रन्थ नं० ६६/क

नेमिपुराण

कर्त्ता—ब्रह्मचारी नेमिदत्त

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च — चौड़ाई ६॥ इञ्च — पत्रसंख्या ११

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमन्नेमिजिनं नत्वा लोकालोकप्रकाशकम् ।
तत्पुराणमहं वक्ष्ये भव्यानां सौख्यदायकम् ॥१॥
नमद्देवेन्द्रमौलीनां रत्नकान्तिसरोजले ।
यस्य पादद्वयं प्राप प्रोल्लसत्कमलश्रियम् ॥२॥
सर्वसौभाग्यसन्दोहं सर्वशर्मसमर्थितं ।
योऽभवत्स्वर्गमोक्षाणां कारणं भव्यदेहिनाम् ॥३॥
यस्य नामस्मृतिश्चापि करोति परमं सुखम् ।
यथा वा भास्करस्योच्चैर्विकाशं कमलाकरे ॥४॥
तं नमामि जगत्सारं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ।
नेमिनाथं महाभक्त्या तत्पुराणप्रसिद्धये ॥५॥
वन्दे श्रीवृषभादीन् सुरार्च्याञ्जिनसत्तमान् ।
येनाप्यधापि सद्धर्मो विनेयानां हितावहम् ॥६॥

* देखें—'जैनहितैषी'।

अजितं जितकन्दर्पं तं नमामि जगद्धितम् ।
यो जितो नैव पूतात्मा रागद्वेषादिशत्रुभिः ॥७॥
सम्भवं भवसन्तापसन्दोहक्षयकारकम् ।
वन्देऽभिनन्दनं देवं देवदेवाधिनायकम् ॥८॥
संस्तुवे सुमतिं देवं भव्यानां सुमतिप्रदम् ।
पद्मप्रभं प्रभाधीशं प्रसिद्धमहिमास्पदम् ॥९॥
श्रीसुपार्श्वं जगत्सारं सम्पदां शर्मसाधनम् ।
चन्द्रप्रभं प्रभासारं सर्वसंक्लेशनाशनम् ॥१०॥
पुष्पदन्तं लसत्कुन्दपुष्पसत्कान्तिसुन्दरम् ।
वन्देऽहं शीतलं देवं शीतलोत्तमवाग्भरम् ॥११॥
श्रेयोजिनं नमाम्युच्चैः सारश्रेयोनिबन्धनम् ।
वासुपूज्यं जगत्पूज्यं प्रबुद्धकमलाननम् ॥१२॥
नमामि विमलाधीशं केवलज्ञानभास्करम् ।
वन्देऽनन्तजिनं भक्त्यानन्तानन्तसुखाकरम् ॥१३॥
धर्मं सद्धर्मतीर्थेशं सुरासुरसमर्चितम् ।
शान्तिनाथं भजाम्येतं सर्वभव्यैकसम्मतम् ॥१४॥
वन्दे कुन्थुजिनाधीशं कुंथ्वादौ च दयास्पदम् ।
अरं देवं सदा वन्दे सारं साररमाप्रदम् ॥१५॥
मल्लिं मोहारिसन्मल्लं वन्दे निःशल्यधामकम् ।
सुव्रतं तं नमाम्येतं मुनिसुव्रतनायकम् ॥१६॥
श्रीनेमिं संस्तुवे देवं नमद्देवेन्द्रसंस्तुतम् ।
नेमिनाथं जगन्नाथं वन्दे सर्वामरार्चितम् ॥१७॥
प्रसिद्धमहिमासारं पार्श्वनाथं जिनेश्वरम् ।
वन्दे श्रीवीरतीर्थेशं वीरवीरं सुखाकरम् ॥१८॥
एते तीर्थकराधीशाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः ।
सन्तु मे शान्तिकर्त्तारश्चान्ये कालत्रयोद्भवाः ॥१९॥
त्रैलोक्यशिखरारूढाः सिद्धाः संसारपारगाः ।
ते मे नित्यं समाराध्याः सन्तु सत्कार्यसिद्धिदाः ॥२०॥
वन्देऽहं भारतीं जैनीं जगद्भ्रान्तिविनाशिनीम् ।

रत्नत्रयपवित्राणां मुनीनां शर्मकारिणाम् ।
पादाम्भोजद्वयं वन्दे संसाराम्बुधितारणम् ॥२२॥
शुद्धश्रीमूलसङ्घस्य प्रोत्तुङ्गोदयभूधरे ।
भानुर्भट्टारकः स्वामी जीयात्स मल्लिभूषण ॥२३॥
× × × ×

मध्यभाग—(पूर्व पृष्ठ ७१, पंक्ति ११)*

गाङ्गेयपत्रौघैः प्रसूनैः पद्मरागजैः ।
बभौ चैत्यद्रुमो नित्यं भव्यानां चित्तरञ्जकः ॥
सत्पुष्पप्रचुरामोदसंसक्तभ्रमरारवैः ।
मत्तावल्यैरयं वृक्षोऽसौ चक्रे वा संस्तुतिं प्रभोः ॥
महाघनानिनादेन घोषयन्निव निर्मलम् ।
मोहारातिजयाज्जातं यशो नेमिजिनेशिनः ॥
ध्वजांशुकैरशोकोऽसौ पवनान्दोलितैर्मुदा ।
स्फेटयन् वा बभौ गाढं जनानां पापसञ्चयम् ॥
× × × ×

अन्तिम भाग—

गच्छे श्रीमतिमूलसङ्घतिलके सारस्वतीये शुभे
विद्यानन्दिमपट्टशुभ्रकमलोल्लासप्रदो भास्करः ।
ज्ञानध्यानरतः प्रसिद्धमहिमा चारित्रचूडामणि
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुर्जीयात् सतां भूतले ॥
प्रोद्यत्सम्यक्त्वरत्नो जिनकथितमहासप्तभङ्गीतरङ्गै-
र्निर्धूतैकान्तमिथ्यामतमलनिकरः क्रोधनत्वादिदूरः ।
श्रीमज्जैनेन्द्रवाक्यामृतविशदरसः श्रीजिनेन्द्रप्रबुद्धि
जीयात्सो सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपण्यः श्रुताब्धि ॥
मिथ्यावादान्धकारच्चयकरणरवि श्रीजिनेन्द्राङ्घ्रिपद्म
द्वन्द्वे निर्द्वन्द्वभक्तिर्जिनगदितमहाज्ञानविज्ञानसिन्धु ।
चारित्रोत्कृष्टभारो भवभयहरणो भव्यलोकैकबन्धु
जीयादाचार्यवर्यो विशदगुणनिधि सिंहनन्दी मुनीन्द्र ॥

* मध्य भाग और अन्तिम भाग अलग की १११/ख नं० वाली प्रति से ली गई है, क्योंकि प्रस्तुत प्रति बहुत अशुद्ध है ।

यस्योपदेशवशतो जिनपुंगवस्य
नेमेः पुराणमतुलं शिवसौख्यकारि
चक्रे मयापि अतितुच्छतयाव भक्त्या
कुर्यादिदं शुभमतं मम मङ्गलानि ॥
शान्ति कान्ति सुकीर्त्ति सकलसुखयुतां सम्पदाञ्चायुरुच्चैः
सौभाग्यं साधुसंगं सुरपतिमहितं सारजैनेन्द्रधर्म्मम् ।
विद्यां गोत्रं पवित्रं सुजनजन······ ················
श्रीनेमेः सत्पुराणम्································· ॥

भुवनैकचूडामणिश्रीनेमिजिनपुराणे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्यश्रीसिंहनन्दि-नामाङ्किते ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते श्रीनेमितीर्थङ्करपरमदेवपञ्चमकल्याणकव्यावर्णनो नाम पद्मनामनवमबलदेवकृष्णनामनवमनारायणजरासन्धनामप्रतिनारायणचरित्रव्यावर्णनो नाम षोडशोऽधिकारः समाप्तः ।

यह ब्रह्मचारी नेमिदत्त वि० सं० १५७५ के हैं। इन्होंने वर्धमानपुराण, धर्मपीयूषवर्षण-श्रावकाचार, आराधनाकथाकोष, श्रीपालचरित्र, प्रियंकरचरित्र आदि कई ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से एक-दो ग्रन्थ छप भी चुके हैं। मूलसंघ एवं सरस्वती गच्छवाले श्रीभट्टारक मल्लिभूषण के यह शिष्य हैं। प्रशस्ति में इन्होंने सिंहनन्दी जी की बड़ी प्रशंसा की है और लिखा है कि इन्हीं की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का मैंने प्रणयन किया है। नेमिदत्त जी ने आराधनाकथाकोष की प्रशस्ति में 'यशस्तिलकचन्द्रिका' आदि के कर्त्ता, श्रीश्रुतसागरसूरि को गुरुभावना से स्मरण किया है और इन्होंने इस ग्रन्थ में मल्लिभूषण की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। नेमिदत्त जी की रचनायें साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर एवं सरल हैं।

(५१) ग्रन्थ नं० $\frac{६८}{क}$

वर्द्धमानकाव्य

कर्त्ता—जयमित्र

विषय—काव्य
भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १२। इञ्च | चौड़ाई ६॥ इञ्च | पत्रसंख्या ५६

प्रारम्भिक भाग—

सिरि परमप्पयभायणु सुहगुणथायणु ।
णियणिय जम्मजरामरणु ॥
सासयसिरसुहयरु पणयपुरंदरु ।
रिसहु णविवि तिहुयणसरणु ॥
पणवेप्पिणु पुणु अरहंताण दुक्कम्ममहारिक्कियताण ।
वसुगुणसंजोयसमिद्धाण सिद्धाण तिजयपसिद्धाण ॥
सूराण सुद्धमचित्ताण यायच्चमभारियचित्ताण ।
पयडियसममासस्सायाण भवियणहो सिरुउज्झायाण ॥
साहुण साहिय मोक्खाण सुविसुद्ध अणिदिं दुक्खाण ।
समत्तणाणसुचरित्ताण मति सुद्धए णवमि पवित्ताण ॥
धसहाइसुगतमणा माण सुणयाण सअम धामाण ।

भरहारियकेवल्लणाणा ॥ पुह जिरय विसाल महत्ताण ॥घत्ता॥ जरलोयहो मंडणा कुणायविहडणा ॥ तिहिसमयहि पयडिय सम्मय ॥ अवतरि सिच्छंकर तित्थसुहंकर ॥ तिय सुर सिर णयरिणया ॥१॥ पणयपाविति यच्छा दुम्मेहह चिंतामणि वम्महस समीहई ॥ दंसि दिस्त धवलभवणि णासिण जम्म णिर वड्डिय सुर कुळमालिणि ॥ सम महिय गुरसच्छ विहसिया गिरिभूयविभारहिकुलहिसमासिय ॥ भोर घराय हंस गयमामिणी कोमुइंव कुवलय सिरिदायिणी ॥ पक्खियसिय सुहय सासण देविउ णामेसउ जिणवर पयसेविउ ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २७, पंक्ति ५)—

तुं सुणिवि पयंपइ मगहराउ किं साहुलपियकह वहु पलाउ ॥ मुणि किं अयाणु अहि कि असंक्कु जं दुख सहेसइ तजि थक्कु ॥१०॥ ता चेलणाह जंपिउ णरिंदु णउ तज्जइ वाणडिउ मुणिंदु ॥ जहि रगु वक्कुगुरुवतगजेम कुडिव्व दिविस गुरुण जाइ तेम ॥ उवसग्गु होंतुमणे विलाहु दुक्खवि सुक्खागमुमुणइ साउ ॥ णउ णिंदइ मव्रु मणि धरेइ सुपसंसण इंतो सुणा करेइ ॥ तिणु कुचणि अरिसुहिसम गिणंतु तव तवइ घोरु कम्मइ हणंतु ॥ वावीस परीसह सहणमल्लु वंभ-चय धारउ मुणणिसल्लु ॥ णाणे परियाग इणेय मम्मु णविरो कारिणी उवलंतहु महुपहु ॥

× × × ×

अन्तिम भाग—

अथ संवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यराज्यसंवत्सर १६०० तत्र वर्षे फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां तिथौ शुक्रवासरे श्रीतिजारास्थानवास्तव्यो साहि आलमुराज्यप्रवर्त्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भट्टारकश्रीमलयकीर्त्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्र-देवाः तदाम्नाये अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे साहु तोल्हा भार्या राणी तस्य पुत्रः जिनदासः तस्य भार्या शोभा तत्पुत्राः पञ्च प्रथमपुत्रः साधुमहादासुः द्वितीयपुत्र. साधुगेल्हा तृतीयपुत्रः साधनुगराजुः चतुर्थपुत्रः जगराजुः पञ्चमपुत्रः साधुसिंहः जिनदासप्रथमपुत्रः महादासुः तस्य भार्या दोदासही तस्य पुत्रः तेजनुः तस्य भार्या लाडो जिनदासद्वितीयपुत्रः गेल्हा तस्य भार्या खोमाहो तस्य पुत्रो द्रोमानुः तस्य भार्या भागो तस्य पुत्र नगराजः तस्य भार्या धणपालही पुत्राः चत्वारः प्रथमपुत्रो जीवन्दुः तस्य भार्या भीख्यो द्वितीयपुत्रः अमियपाल. तृतीयपुत्र. गजः चतुर्थो दरगहमलुः जिणदासपुत्रः चतुर्थः जगराज्यः तस्य भार्या धोनाही तस्य तृतीयः वुच्छा तस्य भार्या चादिणी द्वितोयपुत्रः मसक् तृतीय तोतू जिनदासपञ्चमपुत्रः सोदू तस्य भार्या दूतस्य भार्या लणमणही तस्य ······चतुर्थभार्या कपूरी एतासां मध्ये साधुसोनून इन्द्रश्रीश्रेणिक तासु नानीवरणीकर्मक्षयिणी तेन (तेषां ज्ञाना-वरणकर्मक्षयार्थं) आत्मपठनार्थं कर्मक्षयनिमित्तं लिख्यते।

इस अपभ्रंश काव्य के रचयिता पण्डित जयमित्र मालूम होते हैं। क्योंकि इसमें एक जगह सर्ग के अन्त में 'इय पंडिया सिरी जयमितह हलवि (?) विरइये वड्ढमाणकाव्ये' यों स्पष्ट अङ्कित है। परन्तु यह जयमित्र कौन हैं, यह पता नहीं लगता। ग्रन्थ में रचयिता की प्रशस्ति आदि कुछ भी नहीं है। हां, प्रतिकराने वाले की वि० सं० १६०० की एक प्रशस्ति लगी हुई अवश्य। भवन की यह प्रति बहुत अशुद्ध है। इसकी दूसरी शुद्ध प्रति की प्राप्ति से संभवतः ग्रन्थकर्त्ता जयमित्र का कुछ विशेष हाल मालूम हो सकता है।

(५२) ग्रन्थ नं० $\frac{७९}{क}$ +

जिनसहस्रनामटीका

कर्ता—आचार्य श्रुतसागर

विषय—स्तोत्रविषयिणी टीका

भाषा—संस्कृत

लंबाई ? इंच | चौड़ाई ७ इंच | पत्रसंख्या १२७

प्रारम्भिक भाग—

ध्यात्वा विद्यानंदं समन्तभद्रं मुनीन्द्रमर्हन्तम् ।
श्रीमत्सहस्रनाम्नां विवरणमहं वच्मि सत्सिद्ध्यै ॥

अथ श्रीमदाशाधरसूरिर्गृहस्थाचार्यवर्यो विनयचन्द्रादिमुनिभक्त्यासक्तश्रीशास्त्रकर्ता व्याकरणछंदोऽलंकारसाहित्यसिद्धान्तस्वसमयपरसमयागमनिपुणबुद्धिः संसारपारावारपतनभयभीतो निर्ग्रन्थलक्षणमोक्षमार्गश्रद्धालुः प्रज्ञापुंज इति विद्वद्भिर्निगद्यमानो जिनसहस्रनामस्तवनं चिकीर्षुः 'प्रभो भवांगभोगेषु' इत्यादि स्वाभिप्रायसूचनपरं श्लोकमिममाह। श्रीविद्यानन्दसूरीणां शिष्याः श्रीश्रुतसागरसूरिनामानस्तु तद्विवरणं कुर्वन्तीति 'प्रभो भवांगभोगेषु निर्विण्णो दुःखभीरुकः। एष विज्ञापयामि त्वां शरण्यं करुणार्णवम् ॥'' हे प्रभो—भुवनैकनाथ, यः कोऽपि सार्वः परमदेवस्तस्य संबोधनम्। एष—प्रतिपत्तिभूतोऽहं आशाधरमहाकविः। त्वां—भवन्तम्। विज्ञापयामि—विज्ञप्तिं करोमि। कथंभूतोऽहं भवांगभोगेषु—संसारशरीरभोगेषु। निर्विण्णः—निर्वेदं प्राप्तः।

× × × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ६३, पंक्ति १)—

विमल—विनष्टा मलाः कर्ममलकलंका यस्य स विमलः अथवा विशिष्टा विशिष्टा या मा लक्ष्मीर्यस्य (?) विमाः इन्द्रादयो देवास्तान् लाति निजपादसेवकान् करोति विमलः, अथवा विगता दूरीकृता मा लक्ष्मीर्यैस्ते विमाः निर्ग्रन्थमुनयस्तान् लाति स्वीकरोति विमलः अथवा विगत विनष्टमलमूत्रादि प्रस्वेदादि यस्य जन्म स विमलः ॥३७॥ अनन्तजित् अनन्तसंसारं जितवान् अनन्तजित् अथवा अनन्तं अलोकाकाशं जितवान् केवलज्ञानेन तत्पारं गतवान् अनन्तजित् अथवा अनन्तजित्ः ॥३८॥ महावीर—महाश्चासौ वीरः महावीरः श्रेष्ठो महावीरः ॥३९॥ × × ×

+ इसकी $\frac{१५३}{ख}$ नं० वाली एक प्रति और है। पर वह बहुत जीर्ण है।

* मध्य भाग में कुछ पत्र नहीं हैं।

अन्तिम भाग—

अर्हंतः सिद्धनाथास्त्रिविधमुनिजना भारतीवार्हतीद्धा।
सद्वन्द्यः कुन्दकुन्दो विबुधजनहृदानन्दनः पूज्यपादः।
विद्यानन्दोऽकलङ्कः कलिमलहरणश्रीसमन्तादिभद्रो-
भूयान्मे भद्रबाहुर्भवभयमथनो मंगलं गौतमाद्यः॥
श्रीपद्मनन्दिपरमात्मपरः पवित्रो देवेन्द्रकीर्त्तिरथ साधुजनाभिवन्द्यः।
विद्यादिनन्दिवरसूरिरनल्पबोधः श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगलं मे ॥२॥

अदः (?) पट्टे भट्टादिकमतपुटीघट्टनपटुर्वरद्धर्मध्यानः स्फुटपरमभट्टारकपदः।
प्रभापुंजः संमाद्धिजितवरस्मरनरः सुधीर्लक्ष्मीश्चन्द्रश्चरणचतुरो मे विजयते ॥३॥

आतं (?) वनं विदुषां हृदयाम्बुजानाम्
आनन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतोः।
सट्टीकनं विविधशास्त्रविचारचारम्
चेतश्चमत्कृतिकृतं श्रुतसागरेण ॥४॥

श्रीश्रुतसागरकृतिवरवचनामृतमन्त्रैर्विहितम्।
जन्मजरामरणहरं निरन्तरैः शिवं लब्धम् ॥५॥

अस्ति स्वस्ति समस्तसर्वतिलकं श्रीमूलसंघोऽनघं
वृत्तं यत्र मुमुक्षुसर्वशिवदं संसेवितं साधुभिः।
विद्यानन्दिगुरुस्त्विहास्ति गुणवद्गच्छे गिरं साम्प्रतम्
तच्छिष्यश्रुतसागरेण रचिता टीका चिरं नन्दतु ॥६॥

श्रीइत्याचार्यश्रुतसागरविरचितायां जिनसहस्रनामटीकायामन्तकृच्छतविवरणो नाम दशमोऽध्यायः।

इस जिनसहस्रनामटीका के रचयिता श्रीश्रुतसागरसूरि हैं। माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित 'षट्प्राभृतादिसंग्रह' की भूमिका में श्रीयुत पं० नाथूराम जी प्रेमी ने इनका जो परिचय दिया है, वही यथावत् नीचे उद्धृत कर दिया जाता है—

षट्प्राभृत या षट्पाहुड के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे। इस टीका से और यशस्तिलक-चन्द्रिका टीका से मालूम होता है कि वे कलिकालसर्वज्ञ, कलिकाल गौतमस्वामी, उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि महती पदवियों से अलंकृत थे। उन्होंने

वे मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण के आचार्य और विद्यानन्दी भट्टारक के शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दी—देवेन्द्रकीर्ति—विद्यानन्दी।

परन्तु विद्यानन्दी भट्टारक के पट्ट पर जान पडता है उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दी—मल्लिभूषण—लक्ष्मीचन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द जी के ग्रन्थभाण्डार में पं० आशाधर के महाभिषेक नामक ग्रन्थ की टीका है। उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है —

"श्रीविद्यानंदिगुरोर्बुद्धिगुरो पादपंकजभ्रमर ।
श्रीश्रुतसागर इति देशव्रती तिलकटीकते स्मेदं ॥
इति ब्रह्मश्रीश्रुतसागरकृता महाभिषेकटीका समाप्ता ॥
श्रीरस्तु लेखकपाठकयो ॥ शुभ भवतु ॥श्री

सवत् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्ष पचम्यां तिथौ रवौ श्रीआदिजिनचैत्यालये श्रीमूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं ॥ आर्या श्रीविमलश्री चेली भट्टारक श्रीलक्ष्मीचन्द्रदीक्षिता विनयश्रिया स्वय लिखित्वा प्रदत्त महाभिषेकभाष्य ॥ शुभ भवतु ॥ कल्याण भूयात् ॥ श्रीरस्तु ॥

इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिषेण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीका म श्रुतसागर ने मल्लिभूषण को अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीका के तीसरे आश्वास के अन्त म लिखा है—

"इति श्रीपद्मनन्दिदेवेन्द्रकीर्तिविद्यानन्दिमल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारकश्रीमल्लिभूषणगुरुपरमाभीष्टगुरुभ्राता गुर्जरदेशसिंहासनभट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन मालवदेशभट्टारकश्रीसिंहनन्दिप्रार्थनया यतिश्रीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्त नवनवतिमहामहावादिस्याद्वादलब्धविजयेन तर्कव्याकरणछन्दोऽलंकारसिद्धान्तसाहित्यादिशास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्रचञ्चुना सूरिश्रीश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलकचन्द्रिकाभिधानायां यशोधरमहाराजचरितचम्पुमहाकाव्यटीकायां यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम तृतीयाश्वासचन्द्रिका परिसमाप्ता।"

इससे मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देश के पट्ट पर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और मल्लिभूषण का शायद स्वर्गवास हो चुका था।

लक्ष्मीचंद्र के बाद भी श्रीश्रुतसागर के पदाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। जान पड़ता है ये कभी सिंहासनासीन हुए ही नहीं।

ये पद्मनंदी, विद्यानंदी, आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुए हैं। परन्तु यह मालूम न हो सका कि गुजरात के किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। ईडर, सूरत, सोजित्रा आदि कई स्थानों में भट्टारकों के पट्ट रहे हैं। यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनंदी भट्टारक थे। इन्हींकी प्रेरणा से श्रुतसागरसूरि ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की भी टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। इसी ग्रन्थमाला के तत्वानुशासनादि-संग्रह में इनके एक श्रीचन्द्र नामक शिष्य की रची हुई वैराग्यमणिमाला प्रकाशित हुई है। आराधनाकथाकोश, नेमिपुराण, आदि अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी—जो मल्लिभूषण के शिष्य थे—श्रुतसागर को गुरुभावना से स्मरण किया है*। नेमिदत्त ने भी मल्लिभूषण की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। उन्होंने सिंहनन्दी का भी उल्लेख किया है।

श्रुतसागर का अभी तक टीकाग्रन्थों के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

उनके बनाये हुए ग्रन्थों का परिचय आगे दिया जाता है :—

१ *यशस्तिलकचन्द्रिका*। यह निर्णयसागर प्रेस की 'काव्यमाला' में प्रकाशित हो चुकी है। यह टीका अपूर्ण है—५वें आश्वास के कुछ अंश की और छठे आश्वास की टीका नहीं है। जान पड़ता है, यही उनकी अन्तिम रचना है। यह टीका अनेक स्थानों के ग्रन्थभाण्डारों में मिलती है, परन्तु सर्वत्र ही अपूर्ण है।

२ *महाभिषेकटीका*। सुप्रसिद्ध पंडित आशाधर जी के बनाये हुए नित्यमहोद्योत या महाभिषेक नामक ग्रन्थ की यह टीका है। इसका अन्तिम अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उससे मालूम होता है कि उस समय श्रुतसागर देशव्रती या ब्रह्मचारी थे, सूरि या आचार्य नहीं हुए थे।

३ *तत्त्वार्थटीका*। यह श्रुतसागरी टीका के नाम से प्रसिद्ध है। इस लेख के लिखते समय हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। परन्तु यह दुष्प्राप्य नहीं है—इसका भाषानुवाद भी हो चुका है।

४ *तत्वत्रयप्रकाशिका*। आचार्य शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णव के अन्तर्गत जो गद्यभाग है,

*आराधनाकथाकोश की प्रशस्ति देखें।

वे मूलसंघ सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण के आचार्य और विद्यानन्दी भट्टारक के शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दी—देवेन्द्रकीर्ति—विद्यानन्दी।

परन्तु विद्यानन्दी भट्टारक के पट्ट पर जान पड़ता है उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दी—मल्लिभूषण—लक्ष्मीचन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्र जी के ग्रन्थभाण्डार में पं० आशाधर के महाभिषक नामक ग्रन्थ की टीका है। उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है —

"श्रीविद्यानन्दिगुरोर्बुद्धिगुरोः पादपंकजभ्रमरः।
श्रीश्रुतसागर इति देशव्रती तिलकष्टीकते स्मेदं॥
इति ब्रह्मश्रीश्रुतसागरकृता महाभिषेकटीका समाप्ता॥
श्रीरस्तु लेखकपाठकयोः॥ शुभं भवतु ॥श्री।

संवत् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ रवौ श्रीआदिजिनचैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं॥ आर्या श्रीविमलश्री चेली भट्टारक श्रीलक्ष्मीचन्द्रदीक्षिता विनयश्रिया स्वयं लिखित्वा प्रदत्तं महाभिषेकभाष्यं॥ शुभं भवतु॥ कल्याणं भूयात्॥ श्रीरस्तु॥

इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिषेण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीका में श्रुतसागर ने मल्लिभूषण को अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीका के तीसरे आश्वास के अन्त में लिखा है—

"इति श्रीपद्मनन्दिदेवेन्द्रकीर्तिविद्यानन्दिमल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारकश्रीमल्लिभूषणगुरुपरमाभीष्टगुरुभ्राता गुर्जरदेशसिंहासनभट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन मालवदेशभट्टारकश्रीसिंहनन्दिप्रार्थनया यतिश्रीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्तं नवनवतिमहामहावादिस्याद्वादलब्धविजयेन तर्कव्याकरणछन्दोऽलंकारसिद्धान्तसाहित्यादिशास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्रचञ्चुना सूरिश्रीश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलकचन्द्रिकाभिधानायां यशोधरमहाराजचरितचम्पूमहाकाव्यटीकायां यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम तृतीयाश्वासचन्द्रिका परिसमाप्ता।"

इससे मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देश के पट्ट पर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और मल्लिभूषण का शायद स्वर्गवास हो चुका था।

६ प्राकृतव्याकरण। यह ग्रन्थ हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यशस्तिलकटीका में एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—"प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्र-रचनाचञ्चुना" इससे और षट्पाहुडटीका में जो जगह-जगह प्राकृतव्याकरण के सूत्र दिये हैं, उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृतव्याकरण अवश्य है। इस ग्रन्थ का पता लगाने की बहुत आवश्यकता है।

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रवन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रवन्ध की टीका, बृहत्कथाकोश आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है; परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रम की १६ वीं शताब्दि में हुए हैं। क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है, वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचंद्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोश के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिषेण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द जी के सं० १९५४ के बनाए हुए हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० संवत् १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीका में जगह-जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बरसम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो चालीस-पचास वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० सेठ माणिकचन्द्र जी के ग्रंथ संग्रह में[1] मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिये —

आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभिः श्रीसिंहनन्द्याह्वयैः
सम्प्रार्थ्य श्रुतसागर [रा] द [कि] तरर भाष्य शुभं कारितं।
गद्यानां गुणवत्प्रियं विनयतो ज्ञानार्णवस्यांतरं
विद्यानन्दिगुरुप्रसादजनितं देयादमेयं सुखम् ॥

इति श्रीज्ञानार्णवस्य (?) स्थितगद्यटीका तत्त्वत्रयप्रकाशिका [का] समाप्त [ता] ॥ शुभमस्तु ॥"

५ जिनसहस्रनाम टीका। यह पं० आशाधरकृत जिनसहस्रनाम की विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठ जी के ग्रंथ संग्रह में मौजूद है। शब्दबोध और व्युत्पत्ति बोध के अभिलाषियों के लिए बड़े काम की चीज है। इसकी भी प्रशस्ति देखिये —

'श्रीपद्मनंदिपरमात्मपरः पवित्रो देवेंद्रकीर्तिरथ साधुजनाभिवंद्यः।
विद्यादिनंदिवरसूरिरनल्पबोधः श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगलं मे ॥२॥
अदः (?) पट्टः भट्टारकमतघटाभट्टनपटु-
र्घटद्ध्यान स्फुर्जत्परममहारकपद।
प्रभापुंजः संयत्त्रिभुवनशरीरस्मरनरः
सुधीलक्ष्मीचन्द्रश्चरणचतुरोऽसौ विजयते ॥३॥
आत (?) वन सुविदुषां हृदयांबुजाना
मानन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतोः
सट्टीकनं विविधशास्त्रविचारचारु
चेतश्चमत्कृतिकृत श्रुतसागरेण ॥४॥
श्रुतसागरकृतिवरवचनामृतपानमत्रये(?)विहितं।
जन्मजरामरणहर निरतर ते शिवं लब्ध ॥५॥
अस्ति स्वस्ति समस्तसंघतिलकं श्रीमूलसंघोऽनघं
वृत्तं यत्र मुमुक्षुवर्गशिवदं संसेवितं साधुभिः।
विद्यानन्दिगुरुस्त्विहास्तिगुणवद्गच्छे गिरः सांप्रतं,
तच्छिष्य श्रुतसागरेण रचिता टीका चिरं नंदतु ॥६॥

इतिसूरिश्रीश्रुतसागरविरचितायां जिननामसहस्रटीकायामतकृच्छतविवरणो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥ श्रीविद्यानन्दिगुरुभ्यो नमः।"

---

[1] ग्रन्थ नं० ३।

६ प्राकृतव्याकरण। यह ग्रन्थ हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यशस्तिलकटीका में एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—"प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्र-रचनाचञ्चुना" इससे और षट्पाहुडटीका में जो जगह-जगह प्राकृतव्याकरण के सूत्र दिये हैं, उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृतव्याकरण अवश्य है। इस ग्रन्थ का पता लगाने की बहुत आवश्यकता है।

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोश आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है; परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रम की १६ वीं शताब्दि में हुए हैं। क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है, वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचंद्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोश के कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिषेण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द जी के सं० १९५४ के बनाए हुए हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० संवत् १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीका में जगह-जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बरसम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो चालीस-पचास वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० सेठ माणिकचन्द्र जी के ग्रंथ संग्रह में[†] मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिये —

आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभिः श्रीसिंहनन्द्याह्वयैः,
सम्प्राथ्य श्रुतसागर [रा] कृ [कि] वरं भाष्यं शुभं कारितं।
गद्यानां गुणवत्प्रियं विनयतो ज्ञानार्णवस्यान्तरे,
विद्यानन्दिगुरुप्रसादजनितं देयादमेयं सुखम् ॥

इति श्रीज्ञानार्णवस्य (?) स्थितगद्यटीका तत्त्वत्रयप्रकाशिका [का] समाप्त [ता] ॥ शुभमस्तु ॥"

५ *जिनसहस्रनाम टीका* । यह प० आशाधरकृत जिनसहस्रनाम की विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठ जी के ग्रन्थ संग्रह में मौजूद है। शब्दबोध और व्युत्पत्ति बोध के अभिलाषियों के लिये बड़े काम की चीज़ है। इसकी भी प्रशस्ति देखिये —

'श्रीपद्मनन्दिपरमात्मपरः पवित्रो, देवेन्द्रकीर्तिरथ साधुजनाभिवंद्यः ।
विद्यादिनन्दिवरसूरिरनल्पबोधः, श्रीमल्लिभूषण इतोऽस्तु च मंगलं मे ॥२॥

अद (?) पट्टे भट्टारिकमतघटाघट्टनपटुः,
घनध्वान्तध्वान्तस्फुरत्परमभट्टारकपदः ।
प्रमापुंजः स्याद्विजितवरवीरस्मरनरः,
सुधीर्लक्ष्मीचन्द्रश्चरणचतुरोऽसौ विजयते ॥३॥

भात (?) धन मुनिद्युमणिर्हृदयानुगानां
आनन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतोः
सटीकनं विविधशास्त्रविचारचारु
चेतश्चमत्कृतिकृतं श्रुतसागरेण ॥४॥

श्रुतसागरकृतिवरवचनामृतपानमत्र्यै(?)र्विहितं ।
जन्मजरामरणहरं निरन्तरं तैः शिवं लब्धं ॥५॥

अस्ति स्वस्ति समस्तसंघतिलकः श्रीमूलसंघोऽनघः,
वृत्तं यत्र मुमुक्षुवर्गशिवदं संसेवितं साधुभिः ।
विद्यानन्दिगुरुस्त्विहास्ति गुणवद्गच्छे गिरः साम्प्रतं,
तच्छिष्य श्रुतसागरेण रचिता टीका चिरं नन्दतु ॥६॥

इतिसूरिश्रीश्रुतसागरविरचितायां जिननामसहस्रटीकायामन्तकृच्छतविवरणो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥ श्रीविद्यानन्दिगुरुभ्यो नमः ।"

---

† ग्रन्थ नं० ३ ।

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ४८, पंक्ति १)—

नमः श्रीमुक्तिकान्ताय काममल्लविनाशिने।
श्रीपार्श्वस्वामिने सिद्ध्यै जगद्भर्त्रे चिदात्मने ॥१॥
दिग्भिः सार्द्धं नभोऽप्यासीन्निर्मलं जिनजन्मतः।
अम्लानकुसुमैश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं सुरद्रुमाः ॥२॥
अनाहता महाध्वाना दध्वनुर्दिविजानकाः।
ववौ तदा मन्दमन्दं सुगंधिः शिशिरः स्वयम् ॥३॥
अभूद्घंटारवोऽतीव गम्भीरो निर्जरान्प्रति।
वदतीव जिनेन्द्रस्य जन्म नाकालये स्वयम् ॥४॥
आसनानि सुरेशानामकस्मात्प्रचकम्पिरे।
देवानुच्चासनेभ्योऽधः पातयन्तीव भक्तये ॥५॥
शिरांसि प्रचलन्मौलिमणीनि प्रणतिं दधुः।
कुर्वन्तीव नमस्कारं भक्त्या तीर्थेशपादयोः ॥६॥
दृष्ट्वेत्यादिमहाश्चर्यं ज्ञात्वा तीर्थेशजन्म ते।
कल्पेशावधिज्ञानाज्जन्मस्नाने मतिं दधुः ॥७॥

× × ×

अंतिम भाग—

न कीर्त्तिपूजादिसुलाभलोभान्न वा कवित्वाद्यभिमानतोऽयम्।
ग्रन्थः कृतः किन्तु परार्थबुद्ध्या स्वस्यापरेषाञ्च हिताय नूनम् ॥९२॥
अक्षरस्वरसुसंधिसुमात्रादिच्युतं यदपि किञ्चिदपीह।
ज्ञानहीनचलचित्तप्रमादात्तत्क्षमस्व जिनवाणि समस्तम् ॥९३॥
अवगमजलधिश्रीपार्श्वनाथस्य दिव्यं
सकलविशदकीर्त्तेः प्रादुरासीन्मुनीन्द्रात्।
यदिह वरचरित्रं तद्धि दक्षैः ननंतु (?) [दक्षाः स्मरन्तु]
यतिसुजन(सु)सेव्यं जैनधर्मोऽस्ति यावत् ॥९४॥
सर्वे तीर्थकरा महातिशयिनः सिद्धार्हकर्मातिगाः
दिव्याद्भुतसद्गुणाश्च सहिताः श्रीसाधवश्च त्रिधा।
शुक्लध्यानसुयोगसाधनपरा विद्याम्बुधेः पारगाः
ये ते विश्वगुणाकराश्च शिवदं कुर्वन्तु मे मङ्गलम् ॥९५॥

(५३) ग्रन्थ नं० ७६/क

पार्श्वपुराण

कर्ता—सकलकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इन्च चौड़ाई ७ इन्च पत्रसंख्या ६१

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीपार्श्वनाथाय विश्वविघ्नौघनाशिने ।
त्रिजगत्स्वामिने मूर्ध्ना ह्यनन्तमहिमात्मने ॥१॥
जित्वा महोपसर्गान्यो ज्यातिर्दैवकृता भुवि ।
स्वकीयं केवलं व्यक्तं चक्रे वंदे तमद्भुतम् ॥२॥
यन्नामस्मृतिमात्रेण विघ्नाः कार्यविनाशिनः ।
विलयन्तेऽखिला नूनं शुभमंत्रैर्विषाणि वा ॥३॥
भयो दुर्निवारा हि त्यक्त्वा वैरं भजन्त्यहो ।
बन्धुभावं सतां नूनं यन्नामजपनेन हि ॥४॥
क्षुद्रा देवा दुराचाराः पीडयन्ति न जातुचित् ।
व्याहिंसिंहादयोऽहीशच्छरण्याश्रितचेतसाम् ॥५॥
असाध्या दुष्करा रोगाः सर्वे यान्ति क्षणात्क्षयम् ।
यन्नामभेषजेनाऽपि तमांसि भानुना यथा ॥६॥
यद्ध्यानेन प्रणश्यन्त्यत्रानन्ता कर्मराशयः ।
यद्यतो परविघ्नादिनाशे को विस्मयः सताम् ॥७॥
इत्यादि महिमोपेतं जगन्नाथं जगद्गुरुम् ।
तं श्रीपार्श्वं स्तुवे वन्दे प्रारब्धविघ्नशान्तये ॥८॥
दिव्याकृतियौवनौ रागद्वेषौ तमश्चयम् ।
उच्छिद्य सत्कारयोच्चैर्मोक्षमार्गं सतां चयम् ॥९॥

× × ×

आद्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्थः। नाम्नो च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थः समाससंज्ञो भवति। यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थाभिधानाय कार्यः। संज्ञेति युक्तार्थस्तु नरसिंहवदखण्डः तदभिधायिवाक्याद्भिन्नः। समासराशिः सिद्धः। तस्यालोप्या देर्भिर्विभक्तिलोपविधानादर्थाद्वाक्यमेव वा समासीभवति। नीलोत्पलं। पञ्चगुः। कष्टश्रितः। चित्रगुः। देवदत्तयज्ञदत्तौ। उपकुंभं। स पुनः समासः क्वचिन्नित्यः। कृष्णसर्पः। लोहितशालिः। ब्राह्मणार्थापूपाः। सक्तर्पयः। क्वचिद्विकल्पः। राज्ञः पुरुषः। राजपुरुषः। क्वचिन्न भवति। दीर्घश्चारायणः। रामो जामदग्न्यः। व्यासः पाराशर्यः। अर्जुनः कार्तवीर्यः। नाम्नामिति किं। कार्याणासमासान्तासमीपयोरिति (?)णत्वविकल्पो न स्यात्। युक्तार्थ इति किं। पश्य कष्टं श्रितश्चैत्रो राजकुलं। औद्धस्य [ऋद्धस्य] विशिष्टस्यापत्यमित्यत्रार्थे विशिष्टापत्यमिति न स्यात्।

× × × ×

अन्तिम भाग—

स्वार्थे अण्। तदन्तादिप्रत्ययः। स्वागतादीनां वृद्धिप्रतिषेधौ न भवतः। शोभनमागतं तदाह स्वागतिकः। सुष्ठु अध्वरः स्वध्वरः। तेन चरति स्वाध्वरिकः। शोभनानि तान्यंगानि यस्य स्वांगस्तस्यापत्यं स्वांगिकः। एवं व्यांगिः। व्याडिरिति केचित्। व्याडस्यापत्यं व्याडिः। विगतोऽवहारो विशेषेण वावहारः। तेन चरति व्यावहारिकः। व्यायामिकः। स्वागतः। स्वध्वरा। स्वंगा। व्यंगा। व्याडः। व्यवहारः। व्यायामः। स्वादेरिति श्वन्शब्दस्यैकारादौ तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति। श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः। श्वाशीर्षिः। शुनां गणस्थेन चरति श्वागणिकः। श्वायूथिकः। आदिग्रहणात्केवलस्य निषेधः। श्वभिश्चरति शौविकः। इकारादाविति किं। शौवादंष्ट्रो मणिः। इणश्चादेः। इण्प्रत्ययान्तस्य सणे तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति। श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रकं। श्वाकर्णेरिदं श्वाकर्णकं। अणि लुप्तेऽपि तत्कृतः प्रतिषेधो भवत्येवेति। अनर्थकमेतदिति चांद्राः। पदस्यानीति वा। श्वशब्दादेः पदशब्दस्यानिकारादौ वा वृद्धिर्न भवति। शुनः पदं श्वपदं। तस्येदमित्यण्। शौनपदं। श्वपदं। अनिनीति किं। श्वपदेन चरति श्वापदिकः। श्वन्शब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वान्नित्यं प्राप्ते विकल्पो विधीयते। न्यंकोश्च। सणे तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति। न्यंकोरिदं न्यांकवं।

इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते दशमप्रकरणं समाप्तम्।

(५४) ग्रन्थ नं० $\frac{७८}{क}$

कातंत्रविस्तर

कर्त्ता—वर्द्धमान

विषय—व्याकरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११। इन्च | चौड़ाई ७ इन्च | पत्रसंख्या २१०

प्रारम्भिक भाग—

जिनेश्वरं नमस्कृत्य गौतमं तदनन्तरम्।
सुगमः क्रियतेऽस्माभिरयं कातन्त्रविस्तरः॥
अभियोगपराः पूर्वं भाषायां पटुभाषिरे।
प्रायेण तदिहास्माभिः परित्यक्तं न किञ्चन॥

सिद्धो वर्णसमाम्नायः। सकललोकप्रसिद्धः प्रसिद्धसमासहित [illegible] शास्त्रे वर्णसमाम्नायो वेदितव्यः। वर्णा अकारादयः। तेषां समाम्नायः पाठक्रमः। तत्र चतुर्दशादौ स्वराः। तत्र सिद्धवर्णसमाम्नाये आदौ चतुर्दश वर्णाः स्वरसंज्ञा भवन्ति। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। ऌवर्णस्य स्वरसंज्ञया किं प्रयोजनं।* योऽपि ऌकारः पठति ऌव्याद्य इत्यादि। स्वरप्रदेशाः। स्वरोऽवर्णवर्जो नामि इत्येवमादयः। दश समानाः। तस्मिन् वर्णसमाम्नायविषये आदौ दश वर्णाः समानसंज्ञा भवन्ति। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ। ऌवर्णस्य समानसंज्ञया किं प्रयोजनं। गम इत्यादावगौगमदित्यादौ सन्वद्भावो न भवति। समानप्रदेशाः। समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् इत्येवमादयः। तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ। तेषामेव दशानां समानानां मध्ये यौ यौ द्वौ द्वौ वर्णौ तावन्योन्यस्य सवर्णसंज्ञौ भवतः। अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ। इत्यादिस्वरयोर्दीर्घयोरान्यर्यबलाद्धातिक्रमे च तेषां ग्रहणस्य न भविष्यत्यर्थत्वात्सवर्णसंज्ञा सिद्धेति। ऌवर्णस्य सवर्णसंज्ञया किं प्रयोजनं। ऌकार इति रूपं न भवति। सवर्णप्रदेशाः। समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् इत्यादयः। ऋकारलृकारौ च। अन्योन्यस्य सवर्णसंज्ञौ भवतः।

× × × ×

---

* अविरामे वा° मनन सूत्रेण परान्तो मकारोऽनुस्वारमापद्यते।

अपनी लीलामात्र से शास्त्रसमुद्र को भले प्रकार बढ़ाया है।* 'प्रश्नोत्तररत्नमाला' में सकलभूषण ने इन्हें 'पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी' विशेषण के साथ स्मरण किया है। जिनदास ब्रह्मचारी ने अपने 'पद्मपुराण' और 'हरिवंशपुराण' में इनका 'महाकवित्वादि-कलाप्रवीणः' ऐसा विशेषण दिया है। 'पाण्डवपुराण' में शुभचन्द्र भट्टारक ने इनकी प्रशंसा में यह वाक्य कहा है—'कीर्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा।' इसी प्रकार और भी बहुत से विद्वानों ने इनके महान् ग्रन्थकार होने का उल्लेख किया है। इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि जैन-समाज में सकलकीर्ति के नाम से जो बहुत से ग्रन्थ प्रचलित हैं और जिनपर उनके बनने का संवत् आदि नहीं दिया है उनका अधिकांश भाग इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक का बनाया हुआ है। १६ वीं शताब्दी में सकलकीर्ति भट्टारक नाम के दूसरे भी एक विद्वान् हुए हैं। परन्तु वे इतने अधिक प्रसिद्ध नहीं थे।†

कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में सकलकीर्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये हैं:—

आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यस्तस्मादनुक्रमादभूत्।
स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वरः ॥२॥
येनोद्धृतो गतो धर्मो गुर्जरे वाग्वरादिके।
निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा ॥३॥
तस्माद्भुवनकीर्तिः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट्।
विजयकीर्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥४॥

इनसे मालूम होता है कि इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक ने, जिनके पट्ट पर क्रमशः भुवन-कीर्ति और ज्ञानभूषण बैठे थे, गुजरात और वागड़ आदि देशों में जैनधर्म का प्रचार किया है।‡ 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थतालिका में भट्टारक सकलकीर्ति के निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम उपलब्ध होते हैं—

सिद्धान्तसार, तत्त्वार्थसारदीपक, सारचतुर्विंशतिका, धर्मप्रश्नोत्तर, मूलाचारप्रदीपक, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, यत्याचार, सद्भाषितावली, आदिपुराण, उत्तरपुराण, धर्मनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण, मल्लिनाथपुराण, पार्श्वनाथपुराण, वर्धमानपुराण, सिद्धान्तमुक्तावली, कर्मविपाक, देवसेनकृत तत्त्वार्थसारटीका, धन्यकुमारचरित्र, जम्बूस्वामिचरित्र, श्रीपाल-चरित्र, गजसुकुमालचरित्र, सुदर्शनचरित्र, यशोधरचरित्र, अष्टाह्निकासर्वतोभद्र, उपदेशरत्न-माला, सुकुमालचरित्र।

इनमें से प्रश्नोत्तरश्रावकाचार आदि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

* भट्टारकपदारूढः सकलाद्यन्तकीर्तिभाक्। येन शास्त्राम्बुधिः सम्यग् वर्धितो निजलीलया ॥१४॥

† देखें—'जैनहितैषी' भाग ११, अंक १२ ‡ देखें—'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ ६०—६१

विश्वार्थ्यो विश्ववन्द्याः सकलगुणधरा मुक्तिकान्ताप्रसक्ता
हन्तारः कर्मशत्रून् गुणजलधयो ज्ञानरूपेण नित्यम् ।
आराध्या भव्यलोकैरगतिसुखकरास्तीर्थनाथाश्च सिद्धा
ये तेऽनन्ता मुनीन्द्राः शुभसुखसदनं मङ्गलं च प्रदद्युः ॥९६॥
जिनवररुचिमूलो ज्ञानसत्पीठबन्धः
सकलचरणशाखो दानपात्रप्रसूनः ।
शिवसुखफलमग्नो धर्मकल्पद्रुमो वः
सुचिर(सु)फलकामैः सेव्यमेवेष्टसिद्ध्यै ॥९७॥
धर्मो विश्वसमीहितार्थजनको धर्मं श्रयन्तु धार्मिकाः ।
धर्मेणाशु शिवं भजन्ति मुनयो धर्माय मुक्त्यै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरोऽखिलार्थसुखदो धर्मस्य मूलं सुदृग्
धर्मे चित्तमहं दधेऽन्तकसुखाप्त्यै धर्म रक्षाशु माम् ॥९८॥
सर्वे श्रीजिनपुङ्गवाश्च विमलाः सिद्धा अमूर्ता विद
विश्वार्थ्या गुरवो जिनेन्द्रमुखजाः सिद्धान्तधर्मादय ।
कर्तारो जिनशासनस्य सहिताः सद्वन्दिताः संस्तुता
ये ते मेऽत्र दिशन्तु मुक्तिजनकं शुद्धिं च रत्नत्रये ॥९९॥
पञ्चाशदधिका येऽत्राष्टविंशतिशतान्यपि ।
श्लोकसंख्याऽस्य विज्ञेया सर्वग्रन्थस्य लेखकैः ॥१००॥

इति श्रीपार्श्वनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीपार्श्वनाथमोक्षगमनो
नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः समाप्तः ।

ज्ञानभूषण भट्टारक विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। ज्ञानभूषण भुवनकीर्ति के पट्ट पर, भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के पट्ट पर और सकलकीर्ति पद्मनन्दी के पट्ट पर बैठे थे। १६ वीं शताब्दी के पूर्व लिखे हुए बहुत से ग्रंथों में इस पट्टावली का उल्लेख पाया जाता है। इससे सहज ही में पद्मनन्दी के पट्ट पर प्रतिष्ठित होनेवाले तथा भुवनकीर्ति के गुरु सकलकीर्ति भट्टारक का समय विक्रम की १५ वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है। बल्कि डॉ० विन्टरनित्ज़ का कहना है कि यह सकलकीर्ति लगभग ई० सन् १४६४ में स्वर्गासीन हुए थे।*

'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक के संबंध में लिखा है कि इन्होंने

* See 'A History of Indian Literature,' Page 592

मध्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्थः। नाम्नो च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थः समास-संज्ञो भवति। यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थाभिधानाद्युक्तार्थः। संज्ञेति युक्तार्थस्तु नरसिंहवदखण्डः तदभिधायिवाक्याद्भिन्नः। समासराशिः सिद्धः। तस्यालोप्या दिभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थाद्वाक्यमेव वा समासीभवति। नीलोत्पलं। पञ्चगुः। कण्ठश्रितः। चित्रगुः। देवदत्तयज्ञदत्तौ। उपकुंभं। स पुनः समासः क्वचिन्नित्यः। कृष्णसर्पः। लोहित-शालिः। ब्राह्मणार्थापूपाः। सप्तपर्णः। क्वचिद्विकल्पः। राज्ञः पुरुषः। राजपुरुषः। क्वचिन्न-भवति। दीर्घश्चारायणः। रामो जामदग्न्यः। व्यासः पारासर्यः। अर्जुनः कार्तवीर्यः। नाम्नामिति किं। कार्याणासमासान्तासमीपयोरिति (?)णत्वविकल्पो न स्यात्। युक्तार्थ इति किं। पश्य कण्ठं श्रितश्चैत्रो राजकुलं। औद्धस्य [ऋद्धस्य] विशिष्टस्यापत्यमित्यत्रार्थे विशिष्टापत्य-मिति न स्यात्।

× × × ×

अन्तिम भाग —

स्वार्थे अण्। तदन्तादिप्रत्ययः। स्वागतादीनां वृद्धिप्रतिषेधौ न भवतः। शोभनमागतं तदाह स्वागतिकः। सुष्ठु अध्वरः स्वध्वरः। तेन चरति स्वाध्वरिकः। शोभनानि तान्यंगानि यस्य स्वांगस्तस्यापत्यं स्वांगिकः। एवं व्यांगिः। व्याडिरिति केचित्। व्याडस्यापत्यं व्याडिः। विगतोऽवहारो विशेषेण वावहारः। तेन चरति व्यावहारिकः। व्यायामिकः। स्वागतः। स्वध्वरा। स्वंगा। व्यंगा। व्याडः। व्यवहारः। व्यायामः। स्वादेरिति श्वन्शब्दस्यैकारादौ तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति। श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः। श्वाशीर्षिः। शुनां गणस्थेन चरति श्वागणिकः। श्वायूथिकः। आदिग्रहणात्केवलस्य निषेधः। श्वभिश्चरति शौविकः। इकारादाविति किं। शौवादंष्ट्रो मणिः। इणश्चादेः। इण्प्रत्ययान्तस्य सर्वे तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति। श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रकं। श्वाकर्णेरिदं श्वाकर्णकं। अणि लुप्तेऽपि तत्कृतः प्रतिषेधो भवत्येवेति। अनर्थकमेतदिति चान्द्राः। पदस्यानीति वा। श्वशब्दादेः पदशब्दस्यानिकारादौ वा वृद्धिर्न भवति। शुनः पदं श्वपदं। तस्येदमित्यण्। शौनपदं। श्वपदं। अनिनीति किं। श्वपदेन चरति श्वापदिकः। श्वन्शब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वान्नित्यं प्राप्ते विकल्पो विधीयते। न्यंकोश्च। सर्वे तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति। न्यंकोरिदं न्यांकवं।

इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते दशमप्रकरणं समाप्तम्।

(५४) ग्रन्थ नं० ७८/क

कातंत्रविस्तर

कर्ता—वर्द्धमान

विषय—व्याकरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२। इन्च चौड़ाई ७ इन्च पत्रसंख्या २१९

प्रारम्भिक भाग—

जिनेश्वरं नमस्कृत्य गौतमं गणनायकम्।
सुगमं क्रियतेऽस्माभिश्च कातन्त्रविस्तरं ॥
अभियोगपरा पूर्वे आचार्या बहुभाषिरे।
प्रायेण तद्विदास्मामि परिस्यक्त न किञ्चन ॥

सिद्धो वर्णसमाम्नाय । सकललोकप्रसिद्ध प्रसिद्धसज्ञासहित इह शास्त्रे वर्णसमाम्नायं वेदितव्य । वर्णा अकारादय । तेषां समाम्नाय पाठक्रम । तत्र चतुर्दशादौ स्वरा । तस्मिन् सिद्धवर्णसमाम्नाये आदौ चतुर्दश वर्णा स्वरसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ । लृवर्णस्य स्वरसंज्ञया किं प्रयोजन । योऽपि लृकार पठति लृच्छाय इत्यादि । स्वरप्रदेशा । स्वरोऽवर्णवर्जो नामि इत्येवमादय । दश समाना । तस्मिन् वर्णसमाम्नायविषये आदौ दश वर्णा समानसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ । लृवर्णस्य समानसंज्ञया किं प्रयोजन । मम इत्यागच्छन्नीगमदित्यादौ सन्ध्यभावो न भवति । समानप्रदेशा । समान सवर्णे दीर्घीभवति परश्चलोपम् इत्येवमादय । तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ । तेषामेव दशानां समानानां मध्ये यौ यौ द्वौ द्वौ वर्णौ तावन्योन्यस्य सवर्णसंज्ञौ भवत । अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ । ह्रस्वयोर्दीर्घयोश्चान्वयेबलाद्व्यतिक्रमे च तेषां ग्रहणस्य सर्वविस्तारार्थत्वात्सवर्णसंज्ञा सिद्धे ति । लृवर्णस्य सवर्णसंज्ञया किं प्रयोजनं । शक्लृकार इति रूपं न भवति । सवर्णप्रदेशा । समान सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् इत्यादय । ऋकारलृकारौ च । अन्योन्यस्य सवर्णसंज्ञौ भवत ।

× × × ×

१—'विरामे वा' इत्यनेन सूत्रेण पदान्ते मकारोऽनुस्वारमापद्यते।

मध्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्थः। नाम्नो च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थः समाससंज्ञो भवति। यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थाभिधानाद् युक्तार्थः। संज्ञेति युक्तार्थस्तु नरसिंहवदखण्डः तदभिधायिवाक्याद्भिन्नः। समासराशिः सिद्धः। तस्यालोप्या दिभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थाद्वाक्यमेव वा समासोभवति। नीलोत्पलं। पञ्चगुः। कण्ठेस्थितः। चित्रगुः। देवदत्तयज्ञदत्तौ। उपकुंभं। स पुनः समासः क्वचिन्नित्यः। कृष्णसर्पः। लोहितशालिः। ब्राह्मणार्थापूपाः। सतर्पयः। क्वचिद्विकल्पः। राज्ञः पुरुषः। राजपुरुषः। क्वचिन्न भवति। दीर्घश्चारायणः। रामो जामदग्न्यः। व्यासः पाराशर्यः। अर्जुनः कार्तवीर्यः। नाम्नामिति किं। कार्याणासमासान्तासमीपयोरिति (?)गाल्पविकल्पो न स्यात्। युक्तार्थ इति किं। पश्य कण्ठे स्थितश्चैतो राजकुलं। औद्धस्य [ऋद्धस्य] विशिष्टस्यापत्यमित्यत्रार्थे विशिष्टापत्यमिति न स्यात्।

× × × ×

अन्तिम भाग —

स्वार्थे अण्। तदन्तादिप्रत्ययः। स्वागतादीनां वृद्धिप्रतिषेधौ न भवतः। शोभनमागतं तदाह स्वागतिकः। सुष्ठु अध्वरः स्वध्वरः। तेन चरति स्वाध्वरिकः। शोभनानि तान्यंगानि यस्य स्वांगस्तस्यापत्यं स्वांगिकः। एवं व्यांगिः। व्याडिरिति केचित्। व्याडस्यापत्यं व्याडिः। विगतोऽवहारो विशेषेण वावहारः। तेन चरति व्यावहारिकः। व्यायामिकः। स्वागतः। स्वध्वरा। स्वंगा। व्यंगा। व्याडः। व्यवहारः। व्यायामः। स्वादेरिति श्वनशब्दस्यैकारादौ तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति। श्वभस्तस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः। श्वाशीर्षिः। शुनां गणस्थेन चरति श्वागणिकः। श्वायूथिकः। आदिग्रहणात्केवलस्य निषेधः। श्वभिश्चरति शौविकः। इकारादाविति किं। शौवादंष्ट्रो मणिः। इणश्चादेः। इणप्रत्ययान्तस्य सर्वो तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति। श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रकं। श्वाकर्णेरिदं श्वाकर्णकं। अणि लुप्तेऽपि तत्कृतः प्रतिषेधो भवत्येवेति। अनर्थकमेतदिति चांद्राः। पदस्यानीति वा। श्वशब्दादेः पदशब्दस्यानिकारादौ वा वृद्धिर्न भवति। शुनः पदं श्वपदं। तस्येदमित्यण्। शौनपदं। श्वपदं। अनिनीति किं। श्वपदेन चरति श्वापदिकः। श्वनशब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वान्नित्यं प्राप्ते विकल्पो विधीयते। न्यंकोश्च। सर्वो तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति। न्यंकोरिदं न्यांकवं।

इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते दशमप्रकरणं समाप्तम्।

इस 'कातन्त्रविस्तर' के मूल सूत्र के रचयिता शर्ववर्मा हैं। ये मूल सूत्र कातन्त्र, कौमार एवं कलाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। कातन्त्र में संस्कृत व्याकरण का विषय ऐसे सुन्दर ढंग से गुम्फित किया गया है जो अधिक विस्तृत न अधिक संक्षिप्त ही कहा जा सकता है। साथ ही साथ सरल भी है। हाँ, इसमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं। आख्यात, तद्धित आदि कुछ प्रत्ययों की सम्मिश्रता एवं सार्वधातुक आर्धधातुक का पार्थक्य आदि ही ये त्रुटियाँ हैं। फिर भी अल्पसमय में व्याकरण की शिक्षा पाने के लिये यह ग्रंथ बहुत ही उत्तम है। और और प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल में इसका अधिक प्रचार है। इसके प्रणेता शर्ववर्मा जैन थे या जैनेतर यह अभी विवादग्रस्त है। महाकवि सोमदेव भट्ट रचित कथा 'सरित्सागर' में इस ग्रन्थ की उत्पत्ति की एक कथा मिलती है। उससे इसके निर्माता शर्ववर्मा अजैन सिद्ध होते हैं। किन्तु दिगम्बराचार्य भावसेन त्रैविद्यदेव अपनी 'रूपमाला' नामक टीका में कातन्त्र को जैनग्रन्थ घोषित करते हैं। बल्कि 'कातन्त्रविस्तर' और 'रूपमाला' नामक दिगम्बरीय टीकाओं के अतिरिक्त कातन्त्र पर श्वेताम्बरों की भी कई टीकायें उपलब्ध होती हैं।† अस्तु, कातन्त्र के रचयिता के संबंध में विशेष खोज करने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त 'कातन्त्रविस्तर' के रचयिता वर्द्धमान हैं। 'भवन' की यह प्रति अपूर्ण है, इसलिये आपकी गुरुपरम्परा आदि का कुछ भी पता नहीं लगता। प्रस्तुत प्रति मूडबिद्री जैनमठ के ग्रन्थ-भाण्डार में वर्तमान एक ताडपत्रीय प्रति की नकल है। वहाँ की यह प्रति भी अधूरी है। स्वर्गीय बा० पूरणचन्द्रजी नाहर ने 'जैन सिद्धान्त-भास्कर' भाग २ किरण १ में प्रकाशित 'धार्मिक उदारता' शीर्षक अपने एक लेख में वर्द्धमानजी को श्वेताम्बर लिखा है। ज्ञात नहीं होता है कि आपके इस कथन का आधार क्या है। क्योंकि 'जैन साहित्यनो इतिहास' एवं 'जैनग्रन्थावली' आदि में इस बात का कुछ भी संकेत नहीं मिलता है। बल्कि नाहरजी ने उक्त लेख में इन्हें सूरि (आचार्य) के रूप में उल्लेख किया है। पर 'कातन्त्रविस्तर' की इस प्रति में उपलब्ध किसी भी प्रकरण के अन्त में वर्द्धमान इस नाम के साथ 'सूरि' शब्द नहीं मिलता है। हाँ, 'कर्मदेवोपाध्याय' यह विशेषण अवश्य मिलता है। पता नहीं लगता है कि वर्द्धमानजी के द्वारा प्रतिपादित यह कर्मदेव कौन हैं। इन सब बातों को हल करने के लिये ग्रंथ की अन्तिम प्रशस्ति अत्यधिक अपेक्षणीय है। आशा है कि किसी ग्रन्थालय में 'कातन्त्रविस्तर' की पूर्ण प्रति हो, वहाँ के उदार विद्वान् उस प्रशस्ति की अविकल नकल हमारे पास भेजने की कृपा अवश्य करेंगे।

---

† देखें—'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' भाग २, किरण १

अनुक्रमणिका

इस अनुक्रमणिका में 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित आचार्य, मुनि, आर्यिका, संघ, गण, गच्छ, श्रावक, श्राविका, शासक, शासिका, सचिव, सेनानायक, कोषाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी, ग्रन्थ एवं स्थल आदि के नाम समाविष्ट किये गये हैं। पृष्ठ-संख्या के बाद तीन संकेताक्षर दिये गये हैं। उनमें 'प्र' से प्रशस्ति, 'प' से परिचय तथा 'फु' से फुटनोट समझना चाहिये। प्रसंगवश परिचय के अन्दर जो पद्य आये हैं, उनके नामों के आगे भी 'प' संकेताक्षर ही रक्खा गया है।

च

छ

ज

य

ष

स

नोट : इस 'अनुक्रमणिका' को तैयार करने में श्री पं० फूलचन्द्र जैन, 'विशारद' से भी सहायता मिली है ; इसलिये मैं उनका भी आभारी हूँ ।